भ्रमरगीत-सार

[व्याख्या और विवेचन]

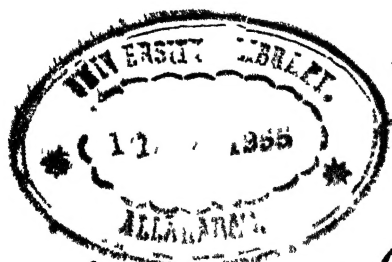
लेखक—

डा० नरेन्द्र देवसिंह शास्त्री

अध्यक्ष—हिन्दी संस्कृत विभाग,

बलवन्त राजपूत कॉलिज, आगरा।

प्रो० राजेन्द्र शर्मा एम० ए०



विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

812-H
H87

[सर्वाधिकार सुरक्षित हैं]
प्रथम संस्करण १९५५
मूल्य ५)

135787

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

दो शब्द !!

हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी का नाम एक साथ लिया जाता है। निर्विवाद रूप से ये दोनो हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि है किन्तु पठन पाठन का जहाँ तक सम्बन्ध है हिन्दी प्रेमियो को तुलसी काव्य के अध्ययन मे कोई असुविधा नही होती क्योकि उनकी प्रायः सभी कृतियों की टीका उपलब्ध है किन्तु अत्यंत दुख का विषय है कि सूर काव्य पर अब तक कोई टीका उपलब्ध नही है जिससे सूरकाव्य प्रेमी अपनी काव्य तृषा शांत कर सके। इस दिशा मे प्रथमतः पग उठाने का दुस्साहस हमने अपने काव्य-प्रेमी पाठकों के बल पर किया है और हमारी योजना हिन्दी के कतिपय काव्य ग्रन्थो की टीका प्रस्तुत करने की है। 'भ्रमरगीत' की आलोचना सहित टीका उसी माला का एक पुष्प है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखको से हिन्दी पाठक जगत—विशेष रूप से विद्यार्थी वर्ग—सुपरिचित है। अतः टीका की उत्कृष्टता के विषय मे कुछ कहना धृष्टता मात्र होगी। हिन्दी पाठक जगत उसका स्वयं निर्णय करेगा। यदि हिन्दी पाठकों का सहयोग बना रहा तो हम अन्य प्रसिद्ध काव्यग्रंथो की अधिकारी विद्वानो द्वारा कृत टीका लेकर हिन्दी जग के समक्ष उपस्थित होगे। किसी भी साहित्य मे टीका साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है यह कहने की आवश्यकता नही। भ्रमरगीत हिन्दी की अनेक उच्च परीक्षाओं मे विश्व विद्यालयो मे स्वीकृत है इसलिये टीका मे विद्यार्थियो की कठिनाइयो का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है और उनकी दृष्टि से ही प्रस्तुत टीका को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

विद्वान लेखकों के हम अत्यंत कृतज्ञ है जिन्होने टीका समय पर प्रस्तुत करने के कठिन कार्य मे अपनी अनेक कठिनाइयो के होते हुए भी हमसे सहयोग किया है।

प्रकाशक—

विषय-सूची

वि वे च न

भूमिका:--

महाकवि सूरदास

जीवन और साहित्य

—*()०()*—

भारत की यह विचित्र परम्परा रही है कि यहाँ कवि और दार्शनिक आदि कभी यश के लोभी नहीं रहे। यह प्रवृत्ति बहुत ही उच्च और प्रशसनीय हैं किन्तु आज के विद्यार्थी को इस प्रवृत्ति के कारण कठिनाई भी कम नहीं होती। आज हम अपने बड़े से बड़े कवि तथा दार्शनिक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में अधिक नहीं जानते उसका यही कारण है।

सूरदास भी हमारी इस प्राचीन परम्परा के अपवाद नहीं है उन्होने अपने विषय में अधिक कुछ नही लिखा हैं इसलिये निरन्तर उनके विषय मे शोध होते रहने पर भी आज उनका जीवन वृत्त रहस्य के आवरण से ढका ही है।

सूरदास जी के जन्म स्थान के विषय में आज भी विद्वानो में मतैक्य नहीं हैं। कोई तो उनका जन्म स्थान दिल्ली के निकट सीही ग्राम मानते है और कुछ रुनकता के पास गऊ घाट को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं। फिर भी लोक मत इसी पक्ष अधिक प्रतीत होता है कि उत्पन्न कहीं भी हुए हो किन्तु कालातर में वे रुनकता के पास गऊ घाट पर आकर ही बस गए।

कहते हैं आरम्भ में सूरदास जी गऊ घाट पर रह कर विनय के पद बनाया करते थे और दास्य भाव की भक्ति करते थे एकबार महाप्रभु वल्लभाचार्य वहाँ आये और उन्होंने सूर से विनय के पद सुने। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी सखा भाव की भक्ति के समर्थक थे उन्होंने सूरदास से कहाः—

"सूर है कै ऐसौ घिघियात काहे को है। कछु भगवल्लीला वर्णन करि। तब सूरदास ने कह्यो जो महाराज हों तो समझत नाहीं। तब श्री आचार्य जी मसाप्रभून ने कह्यौ जो जा स्नान करि आव हम तोकौ समझावेगे। तब सूरदास

जी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभून जी ने प्रथम सूरदास जी को नाम सुनायो पाछे समर्पण करवायौ ×× तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी।×× सो जैसो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने मार्ग प्रकाश कियौ हो ताके अनुसार सूर जी ने पद किये।"

उपरोक्त उद्धरण चौरासी वैष्णवों की वार्ता जिसके लेखक गोकुलनाथ जी है उद्धृत हैं।

इसी प्रकार नाभादास कृत 'भक्तमाल' एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है जिसमें सूरदास जी के विषय में निम्नांकित पद मिलता है—

उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
प्रतिविम्बित दिव दृष्टि हृदय हरिलीला भासी।
जनम करम गुन रूप सवै रसना परकासी।
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन श्रवनन धरै।
सूर कवित सुन कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥

उपरोक्त पद से सूर काव्य की भाव और कलापक्ष की विशेषतायें बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती हों।

कुछ लोग सूरदास को भाट वंश का बताते हैं और उनका सम्बन्ध चन्द-वरदाई भाट की वश परम्परा से जोड़ते हैं। इस विश्वास का कारण सूर का ही एक कूट पद है। उसके अनुसार सूर जन्माध थे, इनके छः और भाई थे जो सबके सब युद्ध मे खेत रहे। एक बार अन्धे सूर एक कुये में गिर पड़े कहते हैं कि स्वय भगवान श्रीकृष्ण ने इनको आकर निकाला। और जब सूर उनसे चिपट गए तो बड़ी मुश्किल से हाथ छुड़ाकर वे जा सके इस विषय मैं सूर की निम्नांकित पक्तियाँ प्रमाणार्थ प्रस्तुत की जाती हैं—

बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहि।
हृदय सौं जब जाइ हौ तब मर्द बदेगो तोहि॥

लेकिन कुछ विद्वान इस मान्यता को भ्रामक मानते हैं और सूर को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। आज विद्वानों का बहुमत सूर के ब्राह्मण होने के पक्ष में है।

भक्तमाल और चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अतिरिक्त कुछ और पुस्तकें मिलती हैं जिनमें सूरदास की चर्चा है जैसे—

१—आईने अकबरी

२—मुंशियात अबुल फजल

३—मुन्तखिबवउल तवारीख

४—गोसाईं चरित्र

उपरोक्त पुस्तको से पहली और दूसरी के आधार पर यह कहा जाता है कि सूरदास जी के पिता बाबा रामदास ग्वालेरी गोमन्दा (गवैया) थे जो कि अकबर के दरबार में नौकर थे उनकी मृत्यु के बाद सूरदास उसी स्थान पर नौकर हो गए। आईने अकबरी मैं चार गायकों के नाम दिये हुए हैं उनमें से एक नाम सूरदास जी का भी है। किन्तु हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक प० रामचन्द्र शुक्ल इससे सहमत नहीं है उनके विचार में अकबर के दरबार का गवैया सूरदास कोई दूसरा ही व्यक्ति रहा होगा।

सूरदास कृत साहित्य लहरी का एक पद उसके रचना काल पर कुछ प्रकाश डालता है:—

पुनि मुनि रसन के रस लेख।
रसन गौरीनन्द का लिखि सुवन संवत पेंख।

(मुनि = ७, रसन = जिसमें रस नहीं = ०, रस = ६, गौरीनन्द=१ चूंकि पद में अङ्क जोड़ने का क्रम बॉये से दाये को रहता है इसलिये उक्त पद मे से सम्वत १६०७ निकलता है।

सूर सारावली की निम्नाकित पक्तियों भी सूर के जीवन पर कुछ प्रकाश डालती हैं—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ वरस प्रवीन।
शिव विधान तब करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन॥"

उपर्युक्त पक्तियों से स्पष्ट हैं कि सूरदास जी की रचना करते समय सूरदास जी की आयु ६७ वर्ष की होगी। कुछ विद्वानो का कथन है कि यदि सूरसारा-वली और साहित्य लहरी का रचना काल एक ही है तो सूर का जन्म

सम्वत् १५४० या उसके आसपास ठहरता है। इस विषय मे डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—

"यदि इस सूरसारावली और साहित्य लहरी का रचनाकाल एक ही माने (जैसा कि बहुत सम्भव है क्योकि दोनो पुस्तके सूरसागर के बाद ही बनीं। तो सवत् १६०७ मे सूरदास की आयु ६७ वर्ष की रही होगी अर्थात् उनका जन्म सम्वत् १५४० या उसके आस पास ठहरता है।

सूरदास जी जन्माध थे अथवा नहीं यह एक बड़ा विवादास्पद विषय है। कुछ लोग उन्हे जन्माध मानते हैं और कुछ लोगो का विश्वास है कि वे जन्माध नहीं थे बाद मे अन्धे हो गए थे और इसी प्रसग मे, विल्ब मङ्गल की कथा जिसमे एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की स्त्री पर मोहित हो जाता है और प्रायश्चित स्वरूप अपनी आँखे स्वय फोड़ लेता है—सूरदास के साथ जोड़ी जाती है। इतना तो निश्चित है कि सूरदास जी अन्धे थे किन्तु जन्माध थे कि नहीं यह स्पष्ट नहीं होता। इनके अन्धेपन पर प्रकाश डालने वाली उनकी कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—

भरोसौ दृढ़ इन चरन केरौ।
श्री वल्लभ नखचद्र छटा बिनु सब जग माँझि अ धेरौ।
माधव और नहीं या कलि मे जासो होत निबेरौ॥
सूर कहा कहि दुविध आधरौ बिना मोल को चेरौ।

तथा

सागर की लहरि छाड़ि, खार कत अन्हाऊ।
सूर कूर आधरौं हो द्वार परयौ गाऊ॥

सूर के काव्य मे रगो के मिश्रण एव सुन्दर दृश्यो के जैसे विविध और मार्मिक वर्णन है उनको देखकर ऐसा नहीं लगता कि सूर जन्माध थे।

सूरदास', 'सूरजदास', 'सूरश्याम' आदि विविध नामो से सूरदास जी के पद अभिहित हैं। प्रश्न यह है कि क्या सूरदास ने अपने बहुत से उपनाम रख छोड़े थे? या विभिन्न कवियो के पद नाम साहश्य के कारण सूर के पदो में मिल गए है। वैसे निश्चय पूर्वक कुछ भी कहना इस विषय मे कठिन है किंतु इतनो सत्य है कि सूर के पदों की लोक प्रसिद्ध देखकर अन्य कवियो ने भी

उनके नाम पर पद गढ़े होगे जिससे उनके पद भी सूर के पदो के साथ अमर हो जाएँ। डा० सत्येन्द्र ने अपने एक निबन्ध मे एक वार्ता कुछ पक्तिया उद्धृत की हैं जिनमें उपर्युक्त बात का समर्थन होता है—

"पाछे देशाधिपति ने आगरे मे आपके सूरदास के पदन की तलास कीनी। जो कोऊ सूरदास जी के पद लावै तिनकूँ रुपैया और मोहर देय। सो वे पद फारसी मे लिखवाइ कै बाचै। सौ मोहर के लालच सौ पण्डित कवीश्वर हू सूरदास के पद बनाइ कै लाए।" सूर के विभिन्न नामो से लिखित पदो की एक पक्ति उद्धृत करना अनावश्यक न होगा—

सूरदास ब्रजवासी हरसे गनत न राजा राइ।

\+ + +

सूरस्याम मोहि गोधन की सौ हौ माता तू पूत।

\+ + +

सूरजदास चिरजीवौ दोऊ भैया हरिहलधर की जोड़ी।

यद्यपि सूर द्वारा लिखित पदो की सख्या के विषय मे निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता किन्तु सूर सारावली का निम्नाकित पद यदि प्रामाणिक है तो सूर के शब्दो मे ही उन्होने सवालख पद रचे।

"श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनाऔ लीला भेद बतायौ।
ता दिन ते हरिलीला गाई एक लक्ष पद बन्द॥
ताकौ सार सूरसारावलि भाखत अति आनद।

सूर के विषय में शिवसिह सरोज के लेखक शिवसिह सेगर का कथन है—

"इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है हमने इनके पद ६० हजार तक देखे है, समग्र ग्रन्थ कहीं नही देखा।"[१]

डा० सत्येन्द्र के कथानुसार अभी तक सूर के ८, १० हजार से अधिक पद उप लब्ध नहीं है वे लिखते है—

"सूरदास के लाख सवा लाख पदो की गणना में सम्भवतः ऐसे भी अन्य कवियो द्वारा रचे जाली पद भी सम्मिलित हो गये होंगे पर इतना होने पर भी अभी तक जो पद सूरदास कृत पाए गए हैं वे सब ८, १० हजार से अधिक नहीं हैं।

सूरदास जी ने कितने काव्य ग्रन्थों का प्रणयन किया इस विषय में भी विद्वानो का मतैक्य नहीं है । डा० ब्रजेश्वर वर्मा तो निश्चित रूप से उनका एक ही ग्रन्थ 'सूरसागर' मानते हैं सूर द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थो को सूर कृत मानने में उनका विश्वास नहीं है किन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की शोध रिपोर्ट के अनुसार सूरप्रणीत ग्रन्थो की संख्या १६ तक हैं—

१—सूरसागर ।
२—साहित्य लहरी ।
३—सूरसारावली ।
४—गोवर्धन लीला बड़ी ।
५—दशम स्कन्ध टीका ।
६—नागलीला ।
७—पद सग्रह ।
८—प्राण प्यारी ।
९—व्याहलो ।
१०-भागवत भाषा
११-सूर पच्चीसी ।
१२-सूरदास के स्फुट पद ।
१३—सूरसागर सार ।
१४-एकादशी महात्म्य ।
१५-राम जन्म ।
१६-नलदमयन्ती ।

वास्तव में उपर्युक्त सभी ग्र थ सूर के नहीं कहे जा सकते । सूर की भाषा उनका अभिव्यक्ति कौशल तथा तन्मयता आदि विशिष्टताये उन ग्रन्थो में नहीं है अतः स्पष्ट स्तर भेद के कारण हम उपर्युक्त सभी ग्रन्थों को सूर काव्य कोटि में नहीं रख सकते । अधिकाँश विद्वान सूर के तीन ग्रन्थ मानते हैं, १—सूर-सागर, २—सूरसारावली, ३—साहित्यलहरी । सच बात तो यह है कि ये तीनो ग्रन्थ भी अलग-अलग नहीं है अपितु सूरसागर के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

सूरसागर :—सूरसागर का आधार भागवत है। सूर ने एक स्थान पर स्वय कहा है :—

व्यास कहे सुखदेव सौ द्वादस स्कध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि सूरसागर भागवत का उल्था मात्र है। सूर भागवत से प्रभावित अवश्य है किन्तु उनकी पद योजना भावाभिव्यक्ति का ढग एवं विषय सयोजन मौलिकता से युक्त है।

विषय की दृष्टि से सूर सागर को निम्नाकित तीन भागो में विभाजित किया जा सकता है :—

१—विनय के पद।

२—पौराणिक कथाओ का वर्णन (भागवत के आधार पर)

३—कृष्ण लीला वर्णन।

सूर का 'सूरत्व' उनके लीला वर्णन में ही है कृष्ण लीलाओ का उनका वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य और अद्वितीय निधि है। सूरसागर में लग भग १२ स्कध हैं जिनमे भागवत की लगभग सभी कथा आ जाती हैं। किन्तु जिन पदो ने सूर को कवियो का सम्राट और साहित्य प्रेमियो का हृदय देवता बना दिया है वे उनके भ्रमरगीत प्रसग के पद हैं। भ्रमरगीत का काव्य सौंदर्य मार्मिकता एव प्रभविष्णुता हिन्दी मे अन्यत्र दिखाई नहीं देती। सूरसागर के काव्य एव रसके विषय में डा० सत्येन्द्र लिखते हैं—

"सूर सागर का समस्त काव्य वात्सल्य तथा शृङ्गार रस से युक्त है। इन रसो की क्रमशः स्थिति उपरोक्त विधि से ही है, वात्सल्य उसके उपरान्त सयोग शृंगार तदनन्तर वियोग। वात्सल्य में कृष्ण की बालक्रीड़ाये हैं जिनमें भक्ति की भाव सयोजना के साथ बालक के मानसिक विकास का सूत्र भी परिलक्षित होता है। इस वात्सल्य के यथार्थ मे आरम्भ से ही गोपियों के प्रेम का अवलम्बन दृष्टिगत होता है। पहले यह गोपी कृष्ण प्रेम अत्यन्त साधारण धरातल पर है। गोपियाँ कृष्ण को चाहती हैं, कृष्ण गोपियो के घर में घुसकर उपद्रव करते हैं, माखन चुराते हैं। कृष्ण इस समय बालक ही हैं किन्तु उनका कृष्ण पर प्रेम यशोदा के प्रेम से भिन्न प्रतीत होता है। यह प्रेम कुछ विक-

सित होते ही राधा सामने आ जाती है और गोपियो के प्रेम की पृष्ठ भूमि पर ही राधा कृष्ण के प्रेम की लीला होने लगती है। इसकी चरम परिणति रास मे होती है। तभी वियोग हो जाता है, इस वियोग का चरमोत्कर्ष भ्रमरगीत मे होता है। वात्सल्य मे भावतन्मयता है, कृष्ण की बाल-लीलाओ के अवलम्ब के साथ। सयोग में भावमाधुर्य है वयःसधि और अकुरित यौवन के साथ मुरली और रास का इस सयोग मे विशेष स्थान है। इन सब मे भाव का ही अस्तित्व प्रधान है। इस काल की क्रीड़ाओं में किसी का भी अवलम्बन यथार्थ नहीं, प्रत्येक यथार्थ के सकेत में शृङ्गारिक कल्पना से भावोद्रेक है जिसमे मधु और माधुर्य है—जिसमे गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण दोनो ही महकते हैं—तब वियोग में यह भावमुग्धता तो कम हो जाती है बौद्धिक पक्ष प्रवल हो उठता है। बौद्धिक होकर गोपिया अपने, प्रेम उन्माद के लिये युक्तियो तथा तर्कों का भी सहारा लेती है।"

सूरदास जी की मृत्यु सवत् १६४० के आसपास (सन् १५८३ ई० मे) पारसोली ग्राम मे गोस्वामी-विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई। मरते समय गुसाईं जी के सामने सूर ने निम्नॉकित पद कहा :—

✓खजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिजरा न समाते।
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट पलट नाटक फँदाते।
सूरदास अजन गुण अटके नातर अब उड़ि जाते॥

सूरदास पुष्टिमार्ग के जहाज के नाम से प्रसिद्ध थे और आज भी वे हिन्दी साहित्यकाश के सूर ही माने जाते हैं।

वात्सल्य और शृङ्गार के अश्रुत पूर्व कवि

सूरदास कृष्ण भक्त कवि थे वे कृष्ण को सखा मानकर पूजते थे गोस्वामी तुलसीदास की भॉति वे दास्य भाव की भक्ति नहीं करते थे इसीलिये सूर के काव्य मे चोज, खरापन मार्मिकता एव स्वाभाविकता अधिक है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के आदेशानुसार ही सूर ने कृष्ण को सखा के रूप मे ग्रहण किया था, आचार्य जी की भेट के पूर्व सूर भी दास्य भाव की भक्ति करते थे और विनय के पद बनाया करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनकी दास्यभाव पूर्ण

कवितायें सुनकर ही कहा था—"सूर है के घिघियात काहि है कछु भगवल्लीला वर्णन करि।" और तभी से उस महान कवि के जीवन का नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ। सूर ने बालकृष्ण की लीलाओ का जो मार्मिक वर्णन किया है वह हिन्दी साहित्य मे अद्वितीय एव अश्रुतपूर्व तो है ही साथ ही हिन्दी साहित्य की अमर सपत्ति भी है। हिन्दी के महानतम कवि भक्तप्रवर तुलसीदास ने भी राम के बालरूप का वर्णन किया है और इतना सुन्दर किया है कि हिंदी मे दो चार कवियो का नाम भी तुलना मे उपस्थित नहीं किया जा सकता किंतु सूर के मार्मिक एव स्वाभाविक वाल-वर्णन के आगे वह भी फीका सा लगता है। सूर का सूरत्व दिखाने के लिये उनके बाल-वर्णन की तुलसी के बाल-वर्णन से तुलना करना युक्ति युक्त ही होगा।

तुलसी के समक्ष राम का लोकरक्षक रूप प्रमुख था अतः उनके अन्य रूपो का वर्णन तुलसी ने गौण रूप से किया है किन्तु सूर के समक्ष तो बाल-कृष्ण ही उनके आराध्य थे इसलिये इस महाकवि ने अपनी सारी प्रतिभा और आत्मा के सम्पूर्ण रस से वालकृष्ण के रूप को सजाया और सरस बनाया है।

दोनो के चरित्र मे मौलिक अन्तर भी है। तुलसी के राम चक्रवर्ती राजा के पुत्र हैं जो वैभव की पृथ्वी पर ही चलते हैं और अधिकार की गम्भीरता के साथ ही क्रीड़ा करते है। उनकी मित्र मण्डली भी विशिष्ट है साधारण जनो को प्रवेश इसमे नही हैं। राम एक असाधारण बालक है इसीलिये उनकी सभी क्रियाये, क्रीड़ाये और बाते असाधारण हैं। राम जनता के श्रद्धा के अधिक पात्र हैं प्रेम और सहानुभूति के कम। तुलसी के बालराम का वर्णन पढ़ते समय भी पाठक उन्हे बालक न समझ कर त्रैलोक्य विजयी, विश्वनियंता एव विष्णु का अवतार समझता है इसके विपरीत सूर के वालकृष्ण है जिनमें राजसी ठाठ बाट, अधिकार गभीरता एव असाधारणता का नाम भी नही है उनकी मित्र मण्डली भी अत्यन्त साधारण जनो की है और ग्वालो के साथ खेलते हुए कभी वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि ग्वाल उनसे हीन है या वे उनसे उच्च हैं। बालक कृष्ण की सारी क्रीड़ाये इसी प्रकार स्वाभाविक और मनोमोहक है जैसी आज भी साधारणजनो की होती है। इसके अतिरिक्त

सूर के बाल मनोविज्ञान के गभीर निरीक्षण ने तो मानो उनके बाल-वर्णन में जान ही डालदी है वह सजीव और अत्यन्त आकर्षक हो उठा है। बच्चों की क्रीड़ाओं और क्रीड़ाओ के अन्तर्गत ऐसी अनेक स्थितियो की कल्पना सूर ने की है जो उन्हें बाल-वर्णन का भारत का ही नहीं विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित कर देती हैं। सूर का बाल-वर्णन उनकी उत्कट भक्ति अदम्य एव नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा तथा हृदयरस का युगपत् निचोड़ है।

ऐसी बात नहीं है कि तुलसी के राम बच्चों के साथ खेलते ही न थे किन्तु तुलसी उन्हें बच्चो के साथ खिलाकर भी बच्चों से अलग कर देते हैं वे अन्य बच्चों के साथ अपने राम को मिलने नहीं देते अलग रखकर उनकी असाधारणता एव अद्वितीय शोभा का वर्णन करते हैं। ऐसे स्थानो पर राम का वर्णन अन्य बालको की तुलना में ही किया गया है :—

"ललित ललित लघुलघु धनुसर कर,
तैसी तरकसी कटि कसे, पट पियरे।
ललित पनही पाँय पैजनीं किंकिनि धुनि;
मुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे ।। १
पहुँची अंगद चारु हृदय पदिक हास,
कुण्डल तिलक छवि गड़ी कवि जियरे।
सिरिसि टिपारो लाल, नीरज नयन विसाल,
सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे ।। २ ।।
सुभग सकल अ ग, अनुज बालक संग,
देखि नरनारी रहैं, ज्यो कुरंग दियरे।
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि;
मूरत मधुर वसै तुलसी के हियरे ।। ३ ।।

तुलसी के राम की अभिजात्यता उन्हें साधारण बच्चों से अलग कर देती है और पाठको के लिए उनके बालकोचित सहज आकर्षण को कम कर देती है।

सूर के बालक कृष्ण की बात ही दूसरी है वहाँ न दुराव है न अधिकार की संकीर्ण सीमाएँ, बालकृष्ण का क्रीड़ा क्षेत्र राम से सहस्रों गुना बड़ा

है। बालकृष्ण विश्व बालको का प्रतिनिधित्व करते हैं महलोका नहीं इसलिए उनमे आकर्षण और स्वाभाविकता का लावण्य भी राम से उसी अनुपात में अधिक है। बच्चो मे आपस में क्या भेद-भाव ? बच्चे बच्चे एक से। जहाँ बच्चे अपनेपन का अनुभव आपस में न कर सके वहाँ बालकोचित अबोधता का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। कृष्ण को तो अभिजात्यता की बू छूतक नहीं गई है। एक साधारण ग्वाला भी उन्हें फटकार सकता है। अगर कृष्ण हार गए हैं तो उन्हे दाँव चुकाना पड़ेगा। बालको मे जो बालक दाँव नहीं चुकाता उसका बड़ा अपवाद होता है। बालक उसे नीच बालक समझते हैं और अपनी मण्डली से ऐसे बालक को 'बेईमान' कहकर निकाल देते हैं। सूर को इतना लोभ भी न था कि वे कृष्ण को ऐसे बहिष्कृत बालक की स्थिति मे न रखते। वे तो कृष्ण को एक साधारण बालक के रूप में उसकी सभी स्वाभाविक कमियों के साथ रखते हैं जिससे वह जनसाधारण के हृदय का आलम्बन हो सके। इसमे सन्देह नहीं बालक कृष्ण की इन सहज कमजोरियों ने उनके क्षेत्र को अधिकाधिक विस्तृत ही बनाया है और इस दृष्टि से वे बालक राम से कई गुने बड़े क्षेत्र के अधिकारी हैं। कृष्ण के साथ खेलने वाले ग्वाले तो स्पष्ट कहते हैं कि "खेलत में को काकौ गुसैयाँ।" ऐसा प्रतीत होता है कि सूर की बाललीला का यह वाक्य ही मूल-मन्त्र है। सूर के लिए सभी बालक समान हैं इसलिये कृष्ण को विशिष्ट बालक के रूप में चित्रित करने का उन्हें कभी लोभ नहीं रहा। वे जानते थे कि ऐसा करने से उनके चरित्र का प्रभाव-क्षेत्र सकीर्ण और आभा अपेक्षाकृत मन्द पड़ जायेगी। सूर की निम्नांकित पक्तियाँ बालकों के मनोविज्ञान एव उनके सहज अधिकार-ज्ञान की दृष्टि से सचमुच अद्वितीय है—

खेलत में को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्री दामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ॥
जाति-पाँति हमते कछु नाहीं न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत याते अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ

इसके विपरीत तुलसी के बाल-वर्णन में भी मर्यादा का अकुश सर्वत्र लगा रहता है। खेल प्रारम्भ होता है तुलसी के राम और लक्ष्मण एक ओर हैं,

भरत और शत्रुघ्न दूसरी ओर। खेल भी साधारण बच्चो का साधारण खेल नहीं है अपितु विशिष्ट बालको का विशिष्ट खेल है, चौगान जो घोड़ो पर चढ़कर खेला जाता है। खेल मे भी भरत राम का ध्यान रखते हैं, अपने जीतने पर उन्हें दुःख होता और भरत के जीतने पर प्रसन्नता! आदर्श की दृष्टि से हो सकता है यह अच्छा हो पर स्वाभाविकता की कसौटी पर यह सब कुछ खरा नहीं उतरता। देखिए राम के क्रीड़ागन मे याचक और देवताओ की भी भीड़ है—

राम लखन इक ओर भरत रिपुसूदन लाल इक ओर भए।
सरजु तीर सम सुखद भूमिथल, गनिगनि गोइयाँ बाँटि लए
कन्दुक केलि कुसल हय चढि-चढ़ि मनकसिघसि ठोकि २ खये
कर कमलनि विचित्र चौगनि खेलन लगे खेल रिझए॥
व्योम विमानन विबुध विलोकत, खेलत पेखत छाँह छुए।
सहित समाज सराहिं दसरथहि बरसत निजतस कुसुम चए॥
एक लै बढ़त एक फेरत सब, प्रेम - प्रमोद, विनोद गए।
एक कहत भइ हार रामजू की, एक कहत भैया भरत जए॥
प्रभु वकसत गज वाजि, वसन मनि जयधुनि गगन निसान हए
पाइ सखा सेवक जाचक भरि, जनम न दूसरे हार गए॥
नभपुर परति निछावर जहँ - तहँ, सुरसिद्धनि वरदान हए।
भूरि भाग अनुराग उमगि जे गावत सुनत चरित्र नितए॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए।
तुलसी सुभरि सुभाव सील सुकृती तेइ जे एहिं रग रए॥

जिस बालक को अपनी जीत अच्छी नहीं लगती जो इतने उदार हृदय और उच्च विचार वाला है कि आदर्श ही सदा जिसके समक्ष रहता है वह तो वृद्धो से भी अधिक वृद्ध है उसे बालक कैसे कहें? बालक होने के लिए शरीर ही नहीं बालकपन की भी आवश्यकता होती है जो अबोधता का घर है। तुलसी इसे विस्मृत कर गए हैं और राम को इस रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं कि एक वृद्ध भी उससे सीख ले सके। यही बाते उनके बाल चरित्र की सीमायें

बन कर रह गई हैं। इन बातों से बचकर ही सूर का चरित्र असीम क्षेत्र का अधिकारी हो गया है।

सूर के कृष्ण राम की भाति आदर्शवादी और प्रौढ़ विचारों के नहीं हैं वे तो अपने भाई बलराम की भी शिकायत यशोदा मा से करते हैं। बलराम कृष्ण को चिढ़ाते हैं, कृष्ण क्रोध और अपमान से लाल हुए रुआसे होकर मा के पास जाकर अपने उद्‌गार प्रकट करते हैं, मा बड़े ढङ्ग से उन्हे चुप करती है तथा सान्त्वना देती है। सूर के ये बाल कृष्ण अद्भुत हैं, अद्वितीय हैं और सूर इसी कारण निश्चित रूप से इस क्षेत्र के सम्राट है।—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मो सो कहत मोल कौ लीन्हो, तू जसुमति कब जायो॥
कहा कहौ या रिस के मारे खेलन हौ नहिं जात।
पुनि - पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तात॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै॥

× × ×

सुनहु कान्ह बलभद्र चदाई जनमत ही कौ धूत।
सूर श्याम मो गोधन की सो, हौ माता तू पूत॥

तुलसी के राम की भाँति सूर के कृष्ण न किसी को उपदेश देते हैं और न उनसे कोई आतंकित ही रहता है उनके बड़े भाई बलराम उन्हें चिड़ाते हैं, बेचारे कृष्ण एक साधारण बालक की भाति ही रोकर मा के पास भागते हैं। सूर का यह बाल चित्रण इतना मार्मिक, स्वाभाविक और सप्राण है कि हजारों वर्ष बाद भी वह पुराना नहीं होगा, सैकड़ो वर्ष बीतने पर भी वह उतना ही ताजा और मार्मिक लगता है जैसे आज की परिस्थितियों मे ही अभी ही लिखा गया हो। अपनी इन्हीं विशेषताओ के कारण सूर हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषी जनता में आज भी एक जीवित शक्ति हैं।

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।

\+ + +

बीचहि बोलि उठे तब हलधर, इनके माय न बाप ।
हार जीत कछु नेक न जानत, लरिकन लावत पाप ॥

+ + × +

सूर स्याम उठि चले रोइकै जननी पूछति धाई ।

तुलसी के राम तो पता नहीं कभी बालकों की भाँति खेलते भी हैं या नहीं जब देखिए वे आपको एक योद्धा के वेश में मार्च करते दिखाई देंगे। तुलसी बालक राम में भगवान राम या प्रबुद्ध राम का चित्र देखने को उत्सुक रहते हैं—

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं, रघुवीर सखा अरु वीर सवै ।
धनुहीं कर तीर निसग कसे कटि पीत दुकूल नवीन फवै ।
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सवै ।
मति भारत पगु भईजु निहारि विचारि फिरी उपमा न पवै ।

इसकी तुलना में सूर के वालकृष्ण का एक चित्र देखिए। कृष्ण ने चोरी से मक्खन खाया है, लेकिन वह मुख पर लिपटा रह गया है यशोदा अपराधी को रँगे हाथ पकड़ लेती है पर बालक कृष्ण का बहाना बड़ा अद्‌भुत है :—

मैया मैं नहिं माखन खायो ।
वैर परे ये ग्वाल बाल सब मेरे मुँह लपटायो ॥
हौं बालक वहियनु को छोटो छींको केहि विधि पायो ।

बालक कृष्ण अधिक दूध नहीं पीता वैसे ही जैसे आज भी बच्चे अधिक दूध नहीं पीते और उनकी माता उन्हें यह कहकर मनाती हैं कि बेटा चुटिया बढ़ जायगी पीले। यशोदा जी कृष्ण को चुटिया बढ़ने का लोभ देकर दूध पिलाना चाहती हैं। बाल मनोविज्ञान के साथ साथ सूर को लोक परम्पराओं का कितना ज्ञान और ध्यान था यह भी इस पद से स्पष्ट हो जाता है।

मैया कवहिं बढ़ेगी चोटी ।
किती वार मोहि दूध पियत भयो यह अजहुं है छोटी ॥

कभी-कभी वच्चा खीझ जाता है, वह कोई चीज नही लेता केवल रोता है, मचलता है और गोद मे से नीचे सरकता है, मा परेशान हो जाती है आखिर ऐसे बिगड़ैल बच्चे को कैसे मनाया जाय, हर सौभाग्यवती मा के जीवन में ऐसे अनेक सुअवसर आते हैं। आज कृष्ण ने भी ऐसी ही हठ की है

मा यशोदा परेशान हैं, वे आँगन में लोटे-लोटे फिरते हैं, कुछ लेते भी नहीं हैं केवल रोते हैं देखिए या यशोदा के स्वर में कितना ममत्व कितनी चिन्ता और कितनी पुत्र वत्सलता है हिन्दी मे तो प्रेम विह्वलता से भरे ऐसे मार्मिक पद केवल सूर ही लिख सके हैं :—

कत हौ आरि करत मेरे मोहन यौं तुम आँगन लोटी।
जो मागहु सो देहुँ मनोहर यहै बात तेरी खोटी।

तुलसी राम जैसे अयोध्या की गलियो में निकलते हे सूर के कृष्ण भी वैसे ही निकलते हैं पर उस ठाठ बाट और साज सज्जा तथा रौवदाव के साथ नहीं अपितु एक नटखट बालक की भाँति जो सब को छोड़ कर चलता है और परेशान होते हुये भी लोग ऐसे बच्चे को प्यार करते हैं, अधिक देर तक बिना देखे नहीं रह सकते :—

खेलन हरि निकसे व्रज खोरी
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विशाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगौरी।

कृष्ण और राधा के प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर भी सूर दोनों की बालकोचित्त भावना एव अबोधिता की रक्षा करने में पूर्ण सफल रहे हैं। कृष्ण को तो सभी प्रेम करते थे किन्तु आज कृष्ण को भी कोई ऐसा प्राणी मिल गया जिसके सौन्दर्य ने उसके बाल हृदय को अभिभूत कर लिया। कृष्ण नटखट ठहरे, बिना परिचय जाने वे भला राधा को कैसे जाने दे, पूछते हैं—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी,
देखी नाहिं कबहुँ व्रजखोरी।

राधा का उत्तर भी बालकोचित स्पष्टता और अवोधता से युक्त हैं—

"काहे को हम व्रजतन आवति।
खेलति रहित आपनी पोरी॥"

बालक कृष्ण चोर के रूप मे दूर दूर प्रसिद्ध हो गया है राधा शायद इस चोर से थोड़ा परहेज मानती है इसीलिए इधर नहीं आती—

सुनत रहत स्रवनन नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।"

कृष्ण ने देखा यह तो कोई अच्छी ख्याति नहीं है। मामला बिगड़ता देख बड़ी मुश्किल से सँभाला, बड़ी दीनता और अकिंचनता के साथ बोले—

तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।

इस प्रकार सूर केवल बालको का ही नही बालिकाओ के भी मनोहर चित्र प्रस्तुत कर सके हैं—

वात्सल्य के दो पक्ष होते हैं—

१—बच्चो का पक्ष (इसके अन्तर्गत बाल क्रीड़ाएँ आती है।)

२—माता पिता का पक्ष (पुत्र या सतान के प्रति मातृ पितृ प्रेम की गरिमा तीव्रता और मृदुता इसके अन्तर्गत आती है।

माता पिता के पक्ष का अधूरा ज्ञान कवि को पूर्ण वात्सल्य रस का अधिकारी नहीं बनने देता। सूर की पैनी दृष्टि अबोध बालको के हृदय में जिस आसानी से पैठ सकी उसी आसानी से प्रेम सिक्त माता-पिता के मानस रहस्यों का भी भेद कर सकी। यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सूर तुलसी से बाललीलाओ के वर्णन में बहुत आगे हैं उसी प्रकार माता-पिता के हृदय मे स्थित बच्चो के प्रति प्रेम की कोमल भावना की अनुभूति उन्हे तुलसी से अधिक है। यशोदा की और नन्द की पुत्र प्रेम विह्वलता कौशल्या और दशरथ से कहीं अधिक है क्योकि मर्यादा का अकुश तुलसी काव्य में वहा भी है।

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेने आए हैं कौशिल्या इसी शोच में डूबी हुई हैं कि अब उनकी देख भाल कौन करेगा इनको न जाने कितने कष्ट होगे, मेरी तरह उनकी देखभाल कोई नहीं कर सकता तुलसी का इस स्थिति का एक चित्र देखिऐ—

मेरे बालक कैसे धो मग निवहैंगे ?
भूख प्यास सीत स्रम सकुचनि क्यो कौसिकहि कहेगे ?
को भोर ही उवटि अन्हवैहै, काढि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन सुख लैहैं ?
नयन निमेषनि ज्यों जोगवे नित पितु परिजन महतारी।
ते पाए ऋषि साथ निशाचर मारन मख रखनारी ॥

सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल, काक पक्ष धर दोऊ ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौ, विधि ह्वै है दिन सोऊ

राम-लक्ष्मण और जानकी बन चले गए हैं किन्तु कौशल्या सदैव शोच मग्न रहती हैं कि वे बन में भयकर बरसात के दिनो में कैसे रहते होंगे—

बन को निकरि गये दोऊ दोऊ भाई ।
सावन गरजै भादो बरसै पवन चलै पुरवाई ।
कोइ विरछतर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी ने मा के हृदय की वेदना और युग के प्रति इसके वात्सल्य को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है किन्तु यह तभी तक है जब तक सूर के तद्विषयक पद न पढ़े जाँय । सूर तो सचमुच इस रस के सम्राट हैं तुलसी इस दिशा में तो उनसे पीछे ही हैं यह निस्सकोच कहा जा सकता है सूर के निम्न तद से तुलना करने से भेद स्वयमेव स्पष्ट हो जायगा ।

सँदेसौ देवकी सो कहियो ।
हौं तो धाइ तिहारे सुतकी कृपा करत ही रहियो ।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करिके न्हाते ।
तुम तौ टेव जान तिहि ह्वै हौ तऊ मोहि कहि आवै ।।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भाव ।।
अब यह सूर मोहि निसिवासर बड़ो रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वै है करत सँकोच ।।

बात चाहे सूर तुलसी एक ही कहते हो किन्तु सूर अपने वात्सल्य रस के पदो को ऐसे वातावरण में ऐसे शब्दो के साथ प्रस्तुत करते हैं कि उसका एक-एक अक्षर सजीव होकर स्वयं बोलने लगता है । सूर के बालक कृष्ण की क्रीड़ाओ को असीम क्षेत्र उनके माता-पिता की भावनाओ को भी अधिक लोक सामान्य एवं असीम-स्थल व्याप्त बना देता है । कृष्ण वास्तव में जन-नायक प्रतीत होते हैं, राम एक सम्राट पुत्र हैं जिन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में सम्पूर्ण वैभव प्राप्त है । इसीलिए नन्द और यशोदा के हृदय का शोच एक राजा या रानी

का शोच न होकर प्रत्येक पिता और माता का शोच है। यशोदा का यह शोच कितना लोक सामान्य, मार्मिक और हृदयग्राही है—

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन माँगे दैहै।
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन-छिन आगो लैहै

कृष्ण घर में नहीं हैं तो वे वस्तुयें जिनसे कृष्ण खेला करते थे अब यशोदा के दुःख को दूना कर देती हैं। एक-एक वस्तु से कृष्ण की स्मृतियाँ चिपकी हुई हैं। यशोदा की दिनचर्या में कृष्ण के उपद्रव भी सम्मिलित थे। तब चाहे डाँटती रहती हों किन्तु अब तो वे उपद्रवी बातें ही उनकी दम घोटे दे रही हैं। पुत्र की उछल कूद मा यशोदा के जीवन मे छा गई है। वे उदास बैठी रहती हैं और पुरानी बातें याद करती रहती हैं—

मेरे कुँवर कान्ह विन सब कछु वैसेहि धरयौ रहै।
को उठि प्रातकाल लै माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन जसोदा सुत के गुन - गुन सूल सहै।

यशोदा मा से यह व्यथा नहीं सही जाती आखिर वे एक दिन नन्द बाबा से साफ-साफ कह देती हैं—

नद ब्रज लीजै ठोकि बजाय।
देहु बिदा मिलि जायँ मधुपुरी जहँ गोकुल के राय॥

किन्तु नन्द यशोदा से कम कष्ट में नहीं हैं यह दूसरी बात है कि पुरुष होने के नाते अपने कष्ट का विज्ञापन नहीं करते और उस पर गम्भीरता का आवरण डाले रहते हैं। किन्तु यशोदा की दीनता और प्रेम कातरता उनके सयम के बाँध को तोड़ देती हैं यशोदा को जो उत्तर वे देते हैं उसमे अतीत स्मृतियाँ पश्चात्ताप, क्रोध, क्षोभ, मोह न जाने कितनी भावनाये एक साथ फूटी पड़ रही हैं। वात्सल्य की ये पक्तियाँ हिन्दी में अद्वितीय हैं—

तब तू मारिबोई करत।
रोस कै करि दाँवरी लै फिरति घर-घर धरति॥
कठिन हियकरि तबजु बाँध्यो अब वृथा करिमरति

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि तुलसी हिन्दी के सर्व महान कवि हैं किन्तु जहाँ तक वात्सल्य रस का सम्बन्ध है वे सूर से पीछे हैं

और सूर निश्चय ही इस क्षेत्र के एकच्छत्र सम्राट हैं।

जो बात सूर के लिए वात्सल्य रस के विषय में कही जा सकती है वही शृङ्गार रस के विषय में भी ठीक है। यद्यपि सूर भक्त कवि थे फिर भी शृङ्गार का जैसा विषद और सांगोपाग वर्णन उन्होने किया है हिन्दी मे कोई दूसरा कवि वैसा नहीं कर सका यहाँ तक कि भक्त प्रवर तुलसीदास भी इस विषय में सूर की प्रतिद्वन्द्विता में नहीं ठहरते।

भक्त होते भी यदि सूर ने शृङ्गार का इतना विशद् और मार्मिक वर्णन किया है उसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। हमारी समझ में इसके दो ही कारण सम्भव हैं—

१—दार्शनिक दृष्टि से रास में कृष्ण के चतुर्दिक नृत्य करने वाला गोपिका मण्डल वास्तव में गोपिका मण्डल नहीं है अपितु सिद्ध सन्तों की जीवात्माये हैं। सूर भी उसी मण्डल में सम्मिलित होना चाहते हैं इसलिए शृङ्गार वर्णन आवश्यक हो गया।

२—गोपियो के विरह वर्णन के द्वारा वे निराकारोपासना की निस्सारता दिखाना चाहते थे इसीलिए उनका वियोग वर्णन जितना मार्मिक और उत्कट है उतना अन्य किसी कवि का नहीं।

रसों में शृङ्गार रसराज माना जाता है। जीवन के जितने विस्तृत क्षेत्र को यह ढँकता है उतना दूसरा रस नहीं। जीवन के प्रमुखतः दो पक्ष होते है। १—सुख पक्ष, २—दुख पक्ष। शृङ्गार रस में भी वियोग शृङ्गार और संयोग शृङ्गार के रूप में दुख और सुख के दोनो पक्षो का अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिए स्पष्ट है कि शृङ्गार रस में जीवन अपने सम्पूर्ण विस्तार के साथ समाहित रहता है। इसका स्थाई भाव है रति। रति भी कई प्रकार की मानी गई है; दाम्पत्य रति (शृङ्गार), सतान विषयक रति (वात्सल्य) और देव विषयक रति (भक्ति)। जितने अधिक सचारी भाव शृङ्गार रस में होते है अन्य किसी रस मे नहीं। शास्त्रीय दृष्टि से अधिकाँश रस शृङ्गार के अविरोधी होते हैं। साराश यह है कि शृङ्गार रस अपनी असीम परिधि में सम्पूर्ण जीवन को समेट लेता है इसलिए शृ गार का दूसरा नाम रसराज उपयुक्त ही है।

सूर शृंगार के अद्भुत कवि है। उनके काव्य में दाम्पत्य रति (शृ गार)

पुत्र विषयक रति (वात्सल्य) और देव विषयक रति (भक्ति) सभी का विशद एवं मार्मिक वर्णन हुआ है। किन्तु हम यहाँ विशेष रूप से सूर के दाम्पत्य शृंगार का ही विवेचन करेंगे।

१—सँयोग शृंगार—कृष्ण का बचपन ब्रज में ही बीतता है वे अपने अद्भुत सौंदर्य के कारण सभी के प्रेम के आलम्बन है। सारा ब्रज उनके पीछे पागल है। क्या गोपियाँ क्या ग्वाल, क्या युवक क्या वृद्ध कृष्ण सभी के आँखों के तारे हैं। लेकिन ब्रज में कोई ऐसा भी व्यक्तित्व है जो कृष्ण को अपनी ओर खींच लेता है और कृष्ण जिसे देखकर अपने आपको भूल जाते हैं वह व्यक्तित्व राधा का है। एक दिन वे ब्रज की गलियो मे उन्हें अचानक दिखाई पड़ गई। मानो कोई युगो से भूली उनकी अपनी वस्तु मिल गई हो। प्रथम साक्षात्कार में ही एक दूसरे के हो गए—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विशाल भाल दिए रोरी।
सूर श्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगौरी ॥

आखिर कृष्ण बिना परिचय पूँछे नहीं रह सके क्योकि यहाँ तो परिचय बनाने का प्रश्न भी था—

बूझत स्याम "कौन तू गोरी।
कहाँ रहत काकी तू बेटी।
देखी नाहिं कबहुँ ब्रजखोरी।"

राधा सक्षिप्त सा उत्तर देती हैं—

"काहे को हम ब्रजतन आवति
खेलति रहति आपनी पौरी।"

राधा के इधर न आने का एक कारण यह भी है कि उसने सुन रखा है कि इधर कृष्ण नामक एक चोर रहता है—

"सुनत रहन स्रवनन नँद ढोठा, करत रहत माखन दधि चोरी।"

लेकिन कृष्ण कम अनुभवी नही है, वे राधा को बना लेते है—

"तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ सग मिलि जोरी।"

एक तो अलौकिक सौन्दर्य की साकार प्रतिमा, फिर इतने वाक्पटु और

विनय की इस मधुरता से तो राधा पिघल ही गईं—

"सूर स्याम प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी ।"

सूर का शृ गार रस राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के प्रेम से स्निग्ध है। गोपिया कृष्ण का जप करती हैं और कृष्ण राधा का । राधा भी कृष्ण की ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट है और उसी आकर्षण के प्रवाह में बहकर वे नित्य कृष्ण-गृह मे आ जाती है, मा यशोदा को कुछ शका होती है यह लड़की यहां नित्य प्रति क्यो आती है, वे उससे साफ कह देती हैं , राधा तुम बार-बार इधर मत आया करो—

"बार-बार तू ह्या जिनि आवै ।"

रूप-गर्विता और प्रेम-गर्विता राधा तो इस प्रकार के वाक्य सुनने की आदी नहीं है। राधा से यह अपमान नही सहा जाता वह मा यशोदा को बड़ा खरा उत्तर देती है और उनसे वास्तविक अपराधी को फटकारने के लिए कहती है । उसका कहना है कि यहा आने मे वह स्वय दोषी नहीं है, दोषी हैं कृष्ण जो बिना उसके रह नहीं सकता । राधा उत्तर देती है—

"मै कहा करौं सुतहि नहि वरजै, घरते मोहि बुलावै ।
मोसों कहत तोहि बिन देखे रहत न मेरो प्राण ॥
छोह लगत मोको सुनि बानी महरि तिहारी आन ॥"

अपनी तो अपनी कृष्ण को दूसरों की गायें भी दुहनी पड़ती हैं कृष्ण राधा की गाय दुह रहे हैं अचानक राधा दिखाई पड़ जाती है फिर धार का ध्यान भूल जाता है और केवल राधा का ध्यान ही रह जाता है। कम्प सात्विक का इससे सुन्दर उदाहरण और कहा मिलेगा—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।
मोहन करते धार चलत पय, मोहनि मुख अतिही छबि बाढ़ी

राधा कृष्ण की इस स्थिति को भाप लेती है और मधुर व्यग्य करती हुई कहती हैं—

"तुम पै कौन दुहावै गैया ।
इत चितवत उत धार चलावत, ऐहि सिखायो है मैया ॥"

कृष्ण बहुत देर तक वहीं रहते हैं अन्त में राधा उनका ध्यान विलम्ब की ओर आकृष्ट करती है कि अब घर जाने का समय आ गया है लेकिन घर कौन जाय मन तो राधा के पास से जाना नही चाहता और अकेला तन घर जाकर करेगा क्या ? देखिए सूर सयोग शृंगार का कितना मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते है—

घर तनु मनहि बिना नहि जात ।
आपु हँसि-हँसि कहत हौ जू, चतुराई की बात ॥
तनहि पर है मनहि राजा, जोई करै सो होइ ।
कहौ घर हम जायँ कैसे मन धरयौ तुम गोइ ॥

केवल यही नही सूर ने सयोग शृंगार के ऐसे न जाने कितने अमरचित्र प्रस्तुत किए है जो हिन्दी साहित्य की अमर निधि हैं । राधा कृष्ण के जल-बिहार का चित्र लीजिए—

विहरत है जमुना जल स्याम ।
राजत है दोऊ बाहा जोरी, दम्पति अरु व्रज वाम ॥
कोइ ठाड़ी जल जानु जघ लो, कोइ करि हृदय ग्रीव ।
यह सुख वरनि सकै को ऐसो सुन्दरता की सीव ॥

सूर के सयोग शृंगार मे मुरली का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । रीतिकालीन काव्य में जो कार्य दूती करती है बहुत कुछ वही कार्य सूर काव्य मे मुरली करती है । मुरली गोपियो को कृष्ण के निकट आकृष्ट करके ले जाती है मुरली की ध्वनि कर्णगोचर होते ही गोपिया आत्म-विस्मृत हो जाती हैं और ससार के सभी बन्धनो को अमान्य करके वे अवाध कृष्ण की ओर दौड़ने लगती हैं । इसके अतिरिक्त सूर ने मुरली को लेकर गोपियो के मन में एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक भावना का क्रमिक विकास दिखाया है । यह बिलकुल स्वाभाविक है कि हम जिसे प्रेम करते हैं उस व्यक्ति की प्रत्येक वस्तु हमारे लिए आकर्षण का विषय बन जाती है । प्रिय के भेजे पत्र ही कौन सजीव वस्तु है किन्तु अपने प्रिय के साहचर्य और निकटता के प्रकरण में वे सजीव से भी अधिक हो उठते है । यही बात मुरली के विषय मे भी है । मुरली कृष्ण से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है उनकी वह चिरसहवर्तिनी है । इसलिए गोपिया

मुरली को भी प्रेम करने लगती है और धीरे-धीरे प्रेम इस कोटि तक पहुँच जाता है कि वे मुरली से कभी प्रसन्न और कृतज्ञ रहती हैं तो कभी उससे मान भी कर बैठती है कारण मुरली कृष्ण के साथ हर समय रहती है और उन्हें इतना अवसर भी नहीं देती कि गोपियो से प्रेमालाप भी कर सके। गोपियो का वर्ग एक है उनके स्वार्थ एक हैं आकाक्षाये एक है इसलिये वे सब मिलकर मुरली के विरुद्ध एक अच्छा खासा मोर्चा बना लेती है और उसे पराजित करने की बात सोचती है। वे एक स्थान पर मिलकर बैठती हैं और मुरली चर्चा छिड़ जाती है।

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दन, नाना भाति नचावति।
राखत एक पॉय ठाड़ो करि अति अधिकार जनावति ॥

× × × ×

आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोपि नासापुट, हम पर कोप कुपावति ॥

मुरली को क्या अधिकार कि वह कृष्ण और गोपियो के बीच में आए यह तो सचमुच असहनीय है। थोड़ी बहुत देर की तो कोई बात नहीं पर यह तो बड़ी समय भक्षक है कृष्ण से अलग ही नहीं होती और कृष्ण की कृपा भी तो इस पर कम नहीं। वे भी इसे अत्यधिक प्रेम करते हैं, वह निसस्कोच उनके अधरामृत का पान करती है जो अधर रस बड़े बड़ों को दुर्लभ है वह इस मुरली को सहज प्राप्य है। क्या किया जाय कैसे इस वाधा को मार्ग से हटाया जाय यह तो एक नई सौत पैदा हो गई हैं। निर्जीव वस्तु को सजीवता देना और फिर गोपियो की विभिन्न भावनाओं का, इसे मधुर आलम्बन बनाना यह सूर ही कर सकते थे देखिये—

अधर रस मुरली लूटन लागी।
जा रस को सटरितु तप कीन्हो, सो रस पियत सभागी।
कहाँ रही कहँ ते आई कोने याहि बुलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताको कीनी सौति बजाई ॥

कोई तरकीव नहीं सूझ रही कि इसे मार्ग से हटाया जाय लेकिन प्रसिद्ध

है जहाँ चाह तहाँ राह आखिर एक तरकीब गोपियों को सूझ ही गई क्यो न इस दुष्टा का अपहरण कर लिया जाय न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरीः—

सखी री मुरली लीजे चोरि।
छिन इक घर भीतर निसि बासर, धरतन कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर कबहू अधरनि कबहू कटि खोसत जोरि॥

इस प्रकार सूर का सयोग शृङ्गार इतना मार्मिक और आकर्षक है कि हिन्दी में इसकी तुलना सभव नहीं है। लेकिन सूर वियोग शृ गार के वर्णन में भी उतने ही सफल है जितने संयोग-शृङ्गार वर्णन में और इसीलिये शृङ्गार रस के ये अद्वितीय कवि है इस क्षेत्र के प्रत्येक कोने को वे झाँक आए हैं।

२—वियोग शृङ्गार—कृष्ण ब्रज को छोड़कर एक दिन मथुरा चले जाते है और इस प्रकार सयोग की कहानी पर सदा के लिये पटाक्षेप हो जाता है। ब्रज रहते कृष्ण वहाँ के कण-कण में विध गये थे वे ब्रज के लिये सचमुच अपरिहार्य थे। जिनकी उपस्थिति से ही ब्रजभूमि आलोकित पुलकित रहती थी उनकी अनुपस्थिति मे उस ब्रज भूमि की कल्पना बड़ी ही रोमाचक है। कृष्ण का वियोग यदि एक व्यक्ति का ही वियोग होता तो बात दूसरी थी पर उनका वियोग तो ब्रज के प्राणो का ही वियोग था जिसके अभाव मे सम्पूर्ण ब्रज निर्जीव एब निष्प्राण हो गया। सूर को यह अद्भुत सुविधा प्राप्त थी कि जिनको लेकर उनका सयोग शृङ्गार आनन्द और केलि से जितना ही अधिक सुवासित या उन्हीं कृष्ण की अनुपस्थिति ने उनके वियोग शृङ्गार को उतना ही तीव्र और मार्मिक बना दिया।

मथुरा पहुँचने पर कृष्ण ब्रजबालाओं को और सर्वोपरि राधा को भूल नहीं जाते वे उनकी विरह व्यथा की सहज ही कल्पना करने की स्थिति में थे वे जानते थे कि ब्रज आज असहनीय दुःख मे लिप्त है। इसलिए उसे क्षाम करने की इच्छा से उन्होने अपने ज्ञान मार्गी सखा उद्धव को ब्रज भेजने का निश्चय किया जिससे वे गोपियों को ज्ञान का सदेश देकर उन्हें स्वस्थ चित्त बना सके और उनकी विरह व्यथा को कुछ कम कर सके, यद्यपि इस उद्देश्य सिद्धि के परिणाम से वे पहले ही अवगत थे लेकिन यह सोचकर कि उद्धव के

ज्ञानदंभ का ही कुछ परिहार हो जायगा उन्होंने उद्धव को ब्रज भेजने का निश्चय कर लिया।

उद्धव अपनी ज्ञान गठरी लेकर ब्रज पहुँचे और उन्होने गोपियो को समझाया कि जिस कृष्ण को तुम प्रेम करती हो वह कोई व्यक्ति नहीं है अपितु साक्षात् ब्रह्म है वह काल और स्थान के बन्धन में बँधने वाला सामान्य प्राणी नहीं है अपितु इन सबका नियन्त्रण करने वाला सर्वेश्वर है, इसलिये वे गोपियो को अपने जाने सत्परामर्श देते हैं कि कृष्ण का लोभ छोडकर तुम परब्रह्म का ही ध्यान करो उसीसे तुम्हे शान्ति मिलेगी परन्तु गोपियाँ अत्यन्त अबोधता के साथ उद्धव से प्रश्न करती हैं—

"लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटै।"

गोपियो का कृष्ण के प्रति प्रेम ऐसा नहीं है जो प्रथमदर्शन मात्र का है उसके पीछे तो सतत साहचर्य की सुविस्तृत पृष्ठ भूमि है उसकी उपेक्षा कैसे की जाय? इस प्रेम की जड़े इतनी गहरी हैं कि उद्धव की ज्ञान वायु मे प्रेम का यह पौधा निर्मूल नही हो सकता।

उद्धब फिर भी थकते नहीं हैं उन्हे अपने ज्ञान पर आवश्यकता से अधिक विश्वास है उसे दभ की सज्ञा भी दी जा सकती है। उद्धव अध्यापक की भांति ज्ञान के महत्व पर अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं किन्तु श्रोता मण्डली उससे बिलकुल प्रभावित नहीं होती। गोपिया समझती हैं यह कोई विक्षिप्त मनुष्य है किसी की कुछ सुनता ही नहीं अपनी ही कहे जा रहा है। अत्यन्त सकोच के साथ आखिर गोपियाँ उद्धव से कह ही देती हैं, उद्धव आप अपनी चिकित्सा कराइये आपकी मनःस्थिति अच्छी नहीं प्रतीत होती आपको तो अच्छे बुरे का विवेक भी नहीं रहा है—

ऊधौ तुम अपनौ जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागत, कत बेकाज करौ।
जाइ करौ उपचार आपनो हम जो कहत हैं जी की।
कछू कहत कछुए कहि डारत धुनि देखियत नहि नीकी।

गोपियो की दशा कृष्ण वियोग में चिंतनीय हो गई है। कृष्ण की उपस्थिति में प्रकृति की जो वस्तुयें जितनी मादक और सुख पूर्ण प्रतीत होती थीं

अब वे उतनी ही दाहक और दुखपूर्ण प्रतीत होती हैं।

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजै।
तव ये लगति लता अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुजैं।
वृथा बहति यमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै अलि गु जैं ॥
पवम पानि घनसार सजीवन दधिसुत किरन भानु भई भुंजैं।
कहियो पथिक जाइ माघव सो मदन मारि कीन्हीं हम लु जैं ॥
सूरदास प्रभु तुमरे दास कौ मग जोवत अखियाँ भई धु जैं ॥

जागते हुए सुख की कल्पना भी गोपिया नहीं कर सकतीं परन्तु अब तो स्थिति इतनी विषम हो गई है कि स्वप्न मे भी विरह उनका पीछा नहीं छोड़ता और अत्यन्त कष्ट देता है देखिए सूर ने निम्नाकित पक्तियो में विरह का अगाध समुद्र भर दिया है :—

हमकौ सपनेऊ में सोच।
जा दिन ते विछुरे नदनन्दन ता दिनते ये पोच।
मनु गुपाल आए मेरे गृह हँसि करि भुजा गही।
कहा करौ वैरिन भई निदिया निमिष न और रही।
ज्यौ चकई प्रतिबिम्ब देखिकै आनन्दी प्रिय जानि।
सूर पवन मिस निठुर विधाता, चपल कियो जल आनि।

कृष्ण जब से मथुरा गए हैं गोपियो के आसू बन्द नहीं हुए हैं बरसात की की भाति वे निरन्तर झरते रहते हैं :—

नितदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस ऋतु हमपै, जबतैं स्याम सिधारे।
दृग अ जन लागत नहि कबहूँ उर कपोल भए कारे।
कचुकि नहिं सूखति सुनि सजनी उरविच बहत पनारे।

विरह की दश दशाये मानी गई हैं, १—अभिलाषा, २—चिन्ता, ३—स्मरण, ४—उद्वेग, ५—प्रलाप, ६—उन्माद, ७—व्याधि, ८—जड़ता, ९—मूर्च्छा, १०—मरण।

इन सभी अवस्थाओ को सूर ने गोपी विरह मे दिखाया है इसलिये शास्त्रीय दृष्टि से भी सूर का वियोग शृङ्गार निर्दोष है। प्रत्येक स्थिति का

एक-एक उद्धरण यहा प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा :—

१—अभिलाषा—

निरखत अङ्ग स्याम सुन्दर के बार बार लखति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।

२—चिन्ता—

मधुकर ये नैना पै हारे।
निरखि निरखि मग कमल नयन को प्रेम मगन भए भारे।

३—स्मरण—

मेरे मन इतनी सूल रही।
बे बतियाँ छतिया लिखि राखीं जे नदलाल कहीं।

४—उद्वेग—

तिहारी प्रीति किधौ तरवारि।
दृष्टिधार करि मार साँवरे, घायल सब व्रज नारि।

५—प्रलाप—

कैसे पनघट जाउँ सखीरी, डोलो सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चली है, इन नैनन के नीर।।
इन नैनन के नीर सखी री सेज गई घर नाँउ।
चाहति हो याही पै चढ़ि कै स्याम मिलन को जाँउ।।

६—उन्माद—

माधव यह ब्रज को व्यौहार
मेरो कह्यौ पवन को भुस भयौ गावत नन्द कुमार।
एक ग्वालि गोधन लै रेंगति, एक लकुट करि लेति।
एक मडली कर बैठारति छाक बाटि कै देति।

७—व्याधि—

ऊधौ जू मै तिहारे चरन लागौं, वारक या ब्रज करवि भाँवरी।
निसि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै, मग जोवत भइ दृष्टि झाँवरी।।

८—जड़ता—

बालक सग लिये दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर सीस सुनि चौकत नावहि, अब काहे न मुख बोलत ।।

६—मूर्च्छा—

सोचति अति पछितातति राधिका मूर्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरेतें बिथा न जाति सही।

१०—मरण—

जब हरि गवन कियौ पूरब लौं, तब लिखि जोग पठायो।
यह तन जरिके भस्म ह्वै निवरयौ बहुरि मसान जगायो।
मेरे मनोहर आनि मिलाओ कै लै चलु हम साथे।
सूरदास अब मरन बन्यौ है पाप तिहारे माथे।

इतना अवश्य है कि सूर ने जितने विस्तार से गोपियो के विरह का वर्णन किया है उतने विस्तार से कृष्ण के विरह का नहीं। इसका दार्शनिक कारण ही सभव है। कृष्ण पर ब्रह्म हैं वे जीवात्मा का विरह क्या अनुभव करेंगे? गोपियाँ जीवात्माओं की प्रतीक हैं अतः उनका विरह दार्शनिक दृष्टि से भी न्याय संगत है। लेकिन सूर ने जहाँ कहीं कृष्ण के हृदय को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

कृष्ण यद्यपि मथुरा आगए हैं राजसी ठाटबाट में रहते हैं और राजनैतिक घटना वाहुल्य के कारण अब उन्हें इतना समय नहीं हैं कि एक बार ब्रज जाकर वहा के निवासियो की दशा देख आये किन्तु उनके हृदय मे गोप-गोपियों के प्रति अपार प्रेम है वे इसका स्पष्टीकरण उद्धव के समक्ष करते भी हैं—

ऊधौ मोहि ब्रज विसरत नाहीं।
हस सुता की सुन्दर कगरी, अरु कु जन की छाही।
वै सुरभी कै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि वाहीं।
यह मथुरा कचन की नगरी मनि मुकताहल जाहीं।
जबहि सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तन नाहीं ।।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सूरका वियोग शृंगार

तथा संयोग शृंगार का वर्णन साङ्गोपॉग एव मार्मिक है और सूर इस क्षेत्र के एकछत्र अधिपति हैं।

भ्रमरगीत और सूरदास

सूर काव्य में भ्रमरगीत का अपना विशिष्ट स्थान है। वह सूर के काव्य में भी सर्वश्रेष्ठ है यह निस्सकोच कहा जा सकता है। भ्रमरगीत नौसखिए सूर की रचना नहीं है अपितु एक अनुभवी महात्मा और महान प्रतिभाशाली कवि की रचना है। अनेक वर्षों तक भक्ति सागर में गोता लगाने एव विस्तृत संसार का सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात्, सॉसारिक लोगों को निर्गुण के कटकाकीर्ण मार्ग से बचाकर उन्हें भक्ति का विषद राजमार्ग दिखाने के लिये ही भ्रमरगीत की रचना की गई है।

यों तो सम्पूर्ण सूर साहित्य पर भागवत की स्पष्ट छाया है। किन्तु एक महान कवि के अनुरूप उन्होंने प्रत्येक स्थल को अपनी प्रतिभा के रग में रँग कर मौलिक बना डाला है। यह प्रसग यो तो भागवत में भी आया है किन्तु अत्यन्त संक्षेप में है और उसका उद्देश्य भी सूर के भ्रमरगीत से भिन्न है। भागवत के अनुसार कृष्ण राजनैतिक कारणों से जो एक बार मथुरा जाते हैं तो फिर वहॉ की राजनीति में इतने विध जाते हैं कि फिर लौट नहीं पाते। कृष्ण के ब्रज आने की अवधि जब समाप्त हो जाती है तो सम्पूर्ण ब्रज उनके विरह में आकुल व्याकुल होने लगता है। गोपियॉ विशेष रूप से विरह व्यथित हैं। गोपियों की विरह व्यथा को शॉत करने या कम करने कृष्ण अपने ज्ञानी सखा उद्धव को ब्रज भेजते हैं। उद्धव वहॉ जाकर अपने ज्ञानमार्ग का प्रचार करते हैं और ब्रजवासियो को समझाते हैं कि कृष्ण परब्रह्म के अवतार हैं वे व्यक्ति नहीं है इसलिये कृष्ण का मोह छोड़कर सबको निराकार ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए क्योंकि वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, और सर्वान्तरयामी हैं। भागवत में गोपियाँ उद्धव के ज्ञान सदेश से प्रभावित होती हैं और निराकारोपासना के लिये तैयार हो जाती है भागवत में यह ज्ञान मार्ग की विजय है। इसी बीच में एक भ्रमर आजाता है और गोपियॉ उसके माध्यम से कृष्ण पर कुछ व्यंग्य करती हैं।

भागवत में तो भ्रमरगीत का प्रसंग बस इतने हीं सक्षेप में हैं किन्तु काव्य

के लिये उसका प्रयोग यह सूर की प्रतिभा की अपनी विशेषता है और फिर भ्रमरगीत से सूर ने अपने उद्देश्य की सिद्धि भी की है उन्होने भ्रमरगीत के द्वारा निर्गुण का खडन किया है और साकारोपासना का समर्थन या प्रचार किया है। भ्रमरगीत में उद्धव की पराजय ज्ञानमार्ग की पराजय और सगुणोपासना की विजय दुंदुभी ही है।

यह स्मरणीय है कि सूर ने तीन भ्रमर गीतो की रचना की है:—

१—पहला भ्रमर गीत भागवत का उल्था मात्र है। जिसमें ज्ञान वैराग्य आदि की ही अधिक चर्चा है। किन्तु जहाँ भी सूर को अवसर मिला है उन्होंने ज्ञान की महत्ता बढ़ाने का प्रयत्न किया है। यह भ्रमर गीत चौपाई छन्द में लिखा गयां है। इस भ्रमर गीत से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ से ही सूर का दृष्टिकोण भागवत से भिन्न है।

२—दूसरा भ्रमर गीत पदो मे रचा गया है। पहले भ्रमर गीत और इसमें भ्रमर के आने की चर्चा नहीं है। मधुकर नाम से ही उद्धव पर व्यग्य किये गए हैं।

३—तीसरे भ्रमर गीत की रचना भी पदो में हुई है किन्तु वह अन्य दो भ्रमर गीतों से अधिक विस्तृत अधिक काव्यपूर्ण एव आकर्षक है। इसमे पहली बार भ्रमर उड़कर आता है उस समय जब उद्धव गोपियों से बात कर रहे हैं और गोपियाँ उसी भ्रमर के माध्यम से उद्धव और कृष्ण पर व्यग्य वाणो की वर्षा करने लगती है। सूर का यही भ्रमर गीत हिन्दी साहित्य का गौरव है और उसकी अक्षय निधि है। इतनी वचन वक्रता, साहित्यिक व्यग्य की इतनी पद्धतिया जिनका शुक्ल जी के शब्दो में अभी वर्गीकरण या नामकरण भी नहीं हुआ हैं इसी भ्रमर गीत में हैं इस भ्रमर गीत मे सूर ने खुले शब्दो में निराकार का खण्डन और साकार का मण्डन किया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वारा प्राप्त अपरिमित ज्ञान को सूर इस भ्रमर गीत में साहित्यिक या काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे सके हैं। यों सूर के भक्त जीवन के प्रारम्भ से ही उनकी निर्गुण में अधिक रुचि नहीं रही वे जानते थे कि निराकारोपासना में आधार के अभाव में मनुष्य का "निरालम्ब मन चक्र के समान भ्रमित रहता है इसलिये प्रारम्भ से ही वे सगुण प्रभु के गान को ही स्पृहणीय समझते रहे।

सूर के इस भ्रमर गीत में पहली बार सूर के भक्ति विषयक विचार स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। भागवत मे यद्यपि भक्ति का विरोध नहीं किया गया है किन्तु ज्ञान की विजय दिखाकर प्रकारातर से भक्ति की हीनता प्रतिपादित की गई है उसी प्रकार सूर यदि चाहते तो बिना ज्ञान मार्ग की निन्दा किए केवल सगुण भक्ति की विजय दिखाकर ज्ञानमार्ग की हीनता प्रदर्शित कर सकते थे पर उन्हे पसन्द नहीं था। इसलिये सगुण भक्ति के प्रचारक के रूप में उन्होने इस भ्रमर गीत में निर्गुण का निर्मम विरोध किया है। और गोपियो के समक्ष ज्ञान के प्रतीक उद्धव की पराजय दिखकर उन्होने सगुण भक्ति की पताका ही ऊँची रखी है।

ज्ञान के प्रतीक उद्धव अपने हृदय में अपार साहस और मस्तिष्क में ज्ञान का अपार दभ लेकर आए हैं कि जाते-जाते गोपियों की आस्था सगुण भक्ति से हटाकर निर्गुण मे कर सकेगे। वे केवल अपनी बात सोचकर आए है जैसे दूसरे पक्ष के पास कहने योग्य कुछ सामग्री ही नहीं हैं और फिर भोली भाली गोपियाँ भला उनके ज्ञान को चुनौती देगी इसकी कल्पना तो इन्होने कभी स्वप्न मे भी न की होगी।

उद्धव ब्रज मे आकर अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं और गोपियो को बताते हैं कि तुम सब लोग अभी तक भ्रम में पड़ी हुई हो सबका आराध्य अत मे निर्गुण ब्रह्म ही है जिसकी रूपरेखा का वर्णन नहीं किया जा सकता वह वर्णनातीत है उसका केवल अनुभव किया जा सकता विश्लेषण नहीं। जिन श्रीकृष्ण को तुम प्रेम करती हो वे ब्रह्म के ही प्रतीक है उसका वाह्यरूप मिथ्या है जिससे तुम प्रेम करती हो, इस प्रकार के प्रेम से तो तुम्हारा चित्त अस्थिर और अशान्त ही रहेगा। सच्ची शांति प्राप्त करने के लिये योग का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। योग मे दक्षता प्राप्त करने के लिये कुछ शारीरिक साधनाओ की अपेक्षा है जो साधारण कठिनाई के पश्चात् सभव हो सकेगी उद्धव ने समझा था कि उनका भाषण इतना सारगर्भित, विचारोत्तेजक और मार्मिक है। कि किसी को कोइ शका भी हो सकती है यह उनके लिये कल्पनातीत बात थी। किन्तु अचानक एक गोपी खड़ी होगई और अपनी शका को उसने इन सीधे सादे शब्दो मे प्रकट किया—

हे अलि कहा जोग में नीकौ ।
तजि रस रीति नन्दनन्दन की सिखवत निर्गुन फीको ।
देखत सुनत नहिं कछु स्रवननि, ज्योति-ज्योति कर ध्यावत ।

+ + + +

अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की चेली ।

उद्धव यह अप्रत्याशित प्रश्न सुनकर भौंचक्के रह गए होंगे । यह तो बड़ा अपशकुन हुआ । ये मूर्ख गोपियाँ निराकार ब्रह्म को चुनौती देने लगीं, बड़ी असह्य बात है । अभी उद्धव इस अप्रत्याशित संकट से अपना पीछा भी नहीं छुड़ा पाए थे कि एक और गोपी खड़ी होगई यह पहली गोपी से भी अधिक धृष्ट निकली । उसे निराकार ब्रह्म की स्थिति के विषय में तो शका है ही साथ ही उसे इस बात का भी विश्वास नही है कि उद्धव सचमुच कोई गभीर बात भी कह रहे हैं, उसे उद्धव के ज्ञान पर भी शका है । वह समझती है यह पाखडी आदमी कहता कुछ है करता कुछ है भले आदमी निर्गुण ब्रह्म को तुमने स्वय देखा है जो हमे देखने के लिये कहते हो :—

रेख न रूप बरन नहि जाके, ताको हमें बताबत ।
अपनी कहौ दरस वैसे को तुम कबहूँ हौ पावत ?

इसका उद्धव के पास क्या उत्तर होता, वेचारे निरुत्तर होगए शायद न भी होते पर सूर तो उन्हे निरुत्तर ही करना चाहते थे उद्धव ने देखा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, तब उन्होने एक चाल चली । उन्होने सोचा कि इस मण्डली में कृष्ण के नाम पर कोई बात कही जायगी तब तो लोग सुनेंगे नहीं तो सुनेंगे तक नहीं । उन्होने गोपियों को विश्वास दिलाया कि ये सब बातें मेरी मनगढ़न्त नहीं है अपितु तुम्हारे प्रियतम कृष्ण का सदेश हैं । उन्हीं की आज्ञा से उनके शब्द मैंने आप लोगो के समक्ष रखे हैं आपको इन शब्दो पर विश्वास करना चाहिए । ये चाहते हैं कि आपके विरह का दुख किसी प्रकार कम हो और मेरे द्वारा प्रचारित सदेश से ही ऐसा सभव हो अब गोपियाँ जरा चक्कर में पड़ी कृष्ण के सन्देश की अवहेलना कैसे करे । कृष्ण क्या इतने निष्ठुर हो गए हैं कि ऐसे नीरस कठोर और अनुपयुक्त सदेश हमे भेजे । अचानक एक गोपी की समझ में सब रहस्य आगया । जरूर इसे कुब्जा ने भेजा है यह उसी

का भेदिया है वह चाहतीं है हम कृष्ण की ओर से पराङ्मुख हो जायँ और कृष्ण सदैव मथुरा में ही बने रहे उसने तुरन्त उठकर यह घोषित कर दिया—

मधुकर कान्ह कही नहि होही।
यह तो नई सखीं सिखई है, निज अनुराग वरोही।
सचि राखी कूबरी पीठि पै ये बातें चकचोही।

उद्धव ने बिगडती हुई परिस्थिति सभालने की लाख कोशिश की बौद्धिक स्तर पर गोपियो को समझाने की चेष्टा की बार बार यह कहने पर भी कि आप लोग भावुकता मे मत पडिए मेरा उपदेश ध्यान से सुनिये श्रोताओ मे कुछ उत्साह दिखाई नही दिया। उद्धव ने गोपियो से कहा आप विवेक मत खोइये कृपया मैं जो कहता हूँ उसे सुनिये। गोपियाँ इस अपमान को सहन न कर सकीं क्रोधावेश मे एक ने कह ही जो दिया। उद्धव जी विवेक हमारा तो ठीक है परन्तु आपका विवेक जरूर कुछ गडबड है। पहले अपनी उचित चिकित्सा कराइये तब कृपया यहाँ आकर भाषण दीजिये देखिये न, आप कहना कुछ चाहते हैं, कह कुछ जाते है, ये अच्छे लक्षण नही है :—

ऊधौ तुम अपनौ जतन करो।
हित की कहत कुहित की लागै, कत वेकाज ररौ।
जाय करौ उपचार आपनौ हम जो कहत है जी की।
कछू कहत कछुए कहि डारत धुनि देखियत नहि नीकी।

उद्धव ने सोचा स्त्री जाति की है न, इसलिये शायद मेरे ज्ञान-गाभीर्य की थाह नहीं पा रही हैं। मेरा कर्त्तव्य तो इन्हे उचित मार्ग बताना ही हैं यह सोचकर उद्धव ने फिर योग का सन्देश देना प्रारभ किया। शास्त्रो मे योग स्त्रियो के लिये वर्जित है उद्धव ज्ञान की उमग मे यह विस्मृत कर जाते है तब गोपिया ही उनकी भूल उन्हें बताती है। कहती है उद्धव तुम तो इतने बड़े मूर्ख हो कि यह भी नही जानते कि योग अवलाओ के लिए बर्जित है।

अटपटि बात तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है।
हम अहीर अबला सठ मधुकर ! तिन्हे जोग कैसे सोहै।

आखिर उद्धव के ज्ञानोपदेश से तग आकर गोपिया साफ कह देती हैं उद्धवजी ! आप योग अपने पास रखिए उसका हम क्या करेगीं हमे तो हमारे

प्रियतम श्रीकृष्ण चाहिये।

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कहा करैं निर्गुण लैकें हम, जीवहु कान्ह हमारे।

उद्धव ! क्या तुम इस ज्ञान कथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते यदि नहीं जानते तो कृपया यहाँ से तशरीफ ले जाइए हाँ यदि आप कृष्ण-कथा सुना सकें तो हम सुनने के लिए सहर्ष तैयार है :—

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञान कथा तुम ऊधौ मथुरा ही लै जाव।

लेकिन उद्धव फिर भी गोपियों से यही प्रार्थना करते हैं कि यदि मेरे ज्ञानोपदेश को आप मन लगाकर सुनेंगी तो आपको सच्ची शांति प्राप्त होगी लेकिन गोपियाँ बड़े भोलेपन के साथ उत्तर देती हैं :—

ऊधौं मन-नाहैं दस बीस।
एक हुतौ सो गयो स्याम संग को आराधैं ईस।

गोपियां समझ लेती हैं यह आदमी शायद योग की भाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा ही नहीं समझता तब वे योग की भाषा का ही आश्रय लेती हैं और उद्धव को बताती हैं कि हम तो पहले से ही योग साधना कर रही हैं, प्रेम ही हमारा तप या योग है; दुख सुख को हमने जीत लिया है मानापमान से हम ऊपर हैं प्रेम की कठिन अग्नि में हमने अपनी सब इच्छायें होमदी हैं कृष्ण के विरह में हम पंचाग्नि साधन कर रही हैं। अब तुम्हीं बताओ हमसे बड़ा योगी कौन होगा :—

हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।
मन वचक्रम हरि सौं धरि पति व्रत, प्रेम जोग तव साध्यौ॥
मातपिता हित प्रीति निगम पथ तजि दुख सुख भ्रम नाँख्यौ।
मान अपमान परम परितोषी अस्थिर स्थिति मन राख्यौ॥
सकुचासन कुलसील करसिकर जगत बंद्य करि बंदन।
मान अपवाद पवन अवरोधन हित क्रम काम निकंदन॥
गुरुजन कानि अगिनि चहुँ दिसि, नभ तरनि ताप बिनु देखे।
पिवत धूम उपदेश जहाँ तहँ, अपजस स्रवन अलेखे॥
सहज समाधि विसारि वपुकरी निरखि निमेस न लावत।

परम ज्योति प्रति अंग माधुरी, धरत यहै निसि जागत ।।
त्रकुटी सग भू भंग तराटक, नैन नैन लगि लागे ।
हँसन प्रकाश सुमुख कुण्डल मिलि, चन्द्र सूर अनुरागे ।
मुरली अधर श्रवन धुनि सो सुनि अनहद शब्द प्रमाने ।।
बरसत रस रुचि बचन सग सुख पद आनन्द समाने ।
मन्त्र दियो मन जात भजन लगि ज्ञान ध्यान हरि ही को ।।
सूर कहौ गुरु कौन करै अलि कौन सुनै मति फीको ।

आखिर ज्ञान मल्ल उद्धव ब्रज के अखाडे में चारो कोने चित्त गिरे सो भी गोपियो के द्वारा। गोपियो की कठिन विरहाग्नि से उद्धव का वज्र हृदय भी पिघल गया। उद्धव पूर्णरूप से पराजित होकर लौटे लेकिन यह पराजय भी उनकी बहुत बड़ी जीत थी क्योंकि इसके द्वारा उनके हाथ एक ऐसी रसायन लग गई जो कि ब्रह्मानन्द सदृश थी। मथुरा जाकर उद्धव ने कृष्ण के समक्ष अपना प्रतिवेदन (रिपोर्ट) प्रस्तुत किया लेकिन गोपियो के लिये घृणा प्रकाश करते हुए नही अपितु उनकी वकालत करते हुए उनका पक्ष पोषण करते हुए। उद्धव का यह हृदय परिवर्तन काव्य की दृष्टि से अद्भुत है, सूर जैसी प्रतिभा का ही यह कार्य था कि इस मार्मिक स्थल का वे अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिये सफल प्रयोग कर सके। उद्धव की रिपोर्ट देखिये यह रिपोर्ट क्या है ज्ञान मार्ग की पराजय की स्पष्ट घोषणा और सगुण भक्ति की विजय दुंदुभी है:—

माधव यह ब्रज कौ व्यौहार ।
मेरौ कह्यौ पवन कौ भुसभयौ, गावत नन्दकुमार ।
एक ग्वारि गोधन लै रैगति, एक लकुटिकर लेति ।।
एक मण्डली करि बैठारति छाक बाटि कै देति ।
एक ग्वारि नटवर करि लीला, एक कर्म गुन गावति
कोटि भाति कै मै समुझाई, नैक न उर मे लावति ।
निसि वासर ये ही व्रत सब ब्रज दिन-दिन नूतन प्रीति ।।
सूर सकल फीको लगत हैं देखत वह रस रीति ।"

उद्धव ने ब्रज प्रयाण करते ~~करते~~ समय समझा था कि कृष्ण सचमुच ज्ञान मार्ग के समर्थक हैं और हृदय से चाहते हैं कि गोपियो की विरह व्यथा योग के उपदेश से शॉत हो जाय तो अच्छा किन्तु उद्धव का हृदय परिवर्तन देख

कृष्ण भी खुल पडे, बोले उद्धव ! ठीक कहते हो मेरी भी बडी बुरी दशा है, ज्ञान ध्यान की ये बाते तो कोरा मजाक थीं और फिर आपके ज्ञानगर्व की परीक्षा भी होनी थी सच्च बात तो यह है कि मै स्वय भी जब से ब्रज छोड़कर आया हूँ अशान्त चित्त हूँ। गोप गोपियो का प्रेम मुझे हर समय ब्रज लौट जाने के लिए प्रेरित करता है मैं स्वय स्वीकार करता हूँ कि मानस की वास्तविक शात के लिये ज्ञान मार्ग उपयुक्त नहीं है उसके लिये तो उचित रास्ता भक्ति का ही है। अन्त में सूर कृष्ण के मुख से निम्नाकित पद कहला कर भक्ति मार्ग की विजय घोषणा दिग दिगत मे कर देते हैं कृष्ण उद्धव से अपने मन की रहस व्यथा का उद्‌घाटन करते हुए कहते हैं—

ऊधौ मोहि ब्रज विसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी अस कुंजन की छाहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं॥
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाही।
यह मथुरा कुंजन की नगरी, मनि मुकुताहल जाहीं।
जवहि सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तनु नाही॥
अनगन भाति करी बहु लीला, जसुदा नन्द निवाही।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछितांहीं॥

इस प्रकार अपने भ्रमर गीत मे महाकवि सूर ने एक ओर तो सगुण भक्ति का उत्कर्ष निगुंण भक्ति की तुलना मे दिखाया है इसके साथ हृदय की कोमल वृत्तिया भी उसमे चरम विकसित रूप में व्यक्ति हैं जो 'भ्रमर गीत' प्रसग को हिन्दी की अमूल्य निधि बना देती है।

सूरदास की काव्य कला

'सूर' हिन्दी साहित्याकाश के 'सूर' माने जाते हैं इसका अर्थ यही है कि सूर का काव्य काव्य के गुणो से परिपूर्ण हैं। काव्य के उत्कर्षापकर्ष का निर्णय करने के लिये एक सामान्य कसौटी की अपेक्षा होती है यदि इस प्रकार की कोई कसौटी निश्चित की जाती है तो उसमे निम्नाकित तत्वो का होना अनिवार्य है।

१—कवि की भावुकता, या सहृदयता जिसके द्वारा कवि शेष सृष्टि के साथ अपना रागात्मक सबन्ध स्थापित कर सके और उसका अनुभूति वृत्त

अधिक से अधिक विस्तृत हो सके।

२—सूक्ष्म निरीक्षण, जिस कवि का ससार सम्बन्धी, जितना ही सूक्ष्म निरीक्षण होगा उसका काव्य उतना ही स्वाभाविक, मार्मिक और अनुभूति की तीव्रता से युक्त होगा। जिन कवियो का सूक्ष्म निरीक्षण का पक्ष शून्य या दुर्बल होता है उनका काव्य रसिक जनो का कठहार नहीं बन पाता।

३—भाषाधिकार—बहुत से ऐसे कवि भी होते हैं जो प्रतिभाशाली हैं जिनका सूक्ष्म निरीक्षण भी व्यापक और गहरा है किन्तु भाषा की असमर्थता ऐसे कवियो की सभी विशेषताओ को व्यर्थ कर देती है इसलिए अन्य सभी गुणो के साथ-साथ भाषा पर असाधारण अधिकार भी सफल कवि होने के लिये अनिवार्य है। कवि जो बात कहना चाहता हैं वह तब तक मार्मिक एव प्रभावपूर्ण नही हो सकती जब तक कि बात कहने का उसका ढङ्ग चमत्कार पूर्ण या असाधारण नही है। भाषा या अभिव्यक्ति पक्ष यद्यपि कवि का साध्य नही है किन्तु इसके अभाव मे उसकी भावपक्ष की साधना भी व्यर्थ हो जाती है। साधक और कवि मे यही अन्तर है, साधक अपनी तपस्या के पश्चात् जिस महान आनन्द का अनुभव करता है उसे व्यक्त नहीं कर सकता कवि जो कुछ अनुभव करता है उसे व्यक्त भी करता है।

शास्त्रीय भाषा मे उपर्युक्त वर्गीकरण को दो नाम दिए जाते हैं।

१—काव्य का भावपक्ष।

२—काव्य का कलापक्ष।

उपर्युक्त सभी वर्गीकरण वास्तव मे व्यावहारिक हैं तात्विक नहीं तात्विक दृष्टि से तो भाव और भाषाभिव्यक्ति के ढग को अलग किया ही नहीं जा सकता। फिर भी विवेचना की सुविधा के लिये हम उपर्युक्त दोनो शीर्षको के अन्तर्गत सूर की कविता या काव्य कला पर विचार करेंगे।

सूर के भाव पक्ष पर विचार करते समय निम्नाकित बातो पर विचार करना अत्यावश्यक है।

१—विनय—जब तक महात्मा सूरदास महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क में नहीं आए थे उससे पूर्व के विनय के पद ही गऊ घाट पर बैठ कर लिखा करते थे इसलिये सूर काव्य पर विचार करते समय उनके इस पक्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सूर के विनय सम्बन्धी पद दीनता, आत्म समर्पण, तल्लीनता

और संसार के प्रति विरक्त की भावना से ओत प्रोत है, उनमे एक भुक्तभोगी व्यक्ति के यथार्थ निष्कर्ष है इसीलिये सूर के विनय के पद इस दृष्टि से जितने उत्कृष्ट हैं उनकी तुलना में हिन्दी मे कम ही कवि प्रस्तुत किये जा सकते है। सूर के इन पदो मे उनकी दीनता आकिंचना आदि भावनाये बड़े निखरे रूप मे हमारे समक्ष आती है :—

प्रभु जी हौ पतितनु कौ टीकौ।
और पतित सब द्यौस चारि के हौ जनमत ही को।

विनय के पदो से स्पष्ट हो जाता है कि सूर इस ससार से अत्यन्त विरक्त हो गये थे और उद्धार के लिये उन्हें केवल भगवान् की कृपा का ही भरोसा था, वे भगवान के समक्ष अपनी पूरी दुर्बलताओ के सहित आत्म समर्पण करते हैं—

अब कै माधव मोहि उधारि।
मग नहीं भव अम्बुनिधि मे कृपा सिंधु मुरारि।
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहरि तरङ्ग॥
लिये जात अगाध जल मे गहे ग्राह अनग।
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति मोह अघ सिर भार
मग न इत उत धरनि पावत उरझि मोह सेवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहि चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थकौ बीच विहाल विह्वल सुनो करुना मूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज के कूल॥

सूर का कहना है कि ससार मे तो मै सबकी परीक्षा ले चुका अब इसी निष्कर्ष पर पहुंचाई कि हे प्रभु ! आपके बिना मेरा सच्चा सहायक और कोई नही है यदि आप कृपा करेंगे तभी मेरी नैया पार लगेगी। दैन्य आत्म समपर्ण, विरक्ति की तीव्रता एव तल्लीनता आदि दुर्लभ विशेषताएँ सूर के पदों को छोड़ अन्यत्र शायद ही एक स्थान पर मिलें। देखिये—

मेरी तौ गति पति तुम, अन्तहि दुख पाऊँ।
हौं कहाइ तिहारौ अब कौन को कहाऊँ॥
कामधेनु छोड़ि कहा अजा जा दुहाऊँ।

\+ \+ \+ \+

सागर की लहरि छाड़ि खार कत अन्हाऊँ ।
सूर कूर आँधो मैं द्वार परयो गाऊँ ॥

बालवर्णन—सूर का बालवर्णन हिन्दी में अद्वितीय माना जाता है उनकी इस विशेषता के समक्ष हिन्दी का बड़े से बड़ा कवि भी नही टिक पाता यहाँ तक कि इस दिशा मे कवि सम्राट प्रवर गोस्वामी तुलसीदास भी उनसे पीछे रहे जाते हैं। शुक्ल जी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "यह अन्धा कवि वात्सल्य और शृङ्गार रस का कोना-कोना झाँक आया है," बालको का मनोविज्ञान, उनकी क्रीड़ा आदि के जितने सजीव चित्र सूर ने हिन्दी को दिये हैं वे सचमुच एक सुखद आश्चर्य का विषय हैं। संस्कृत मे एक कहावत है "वाणोच्छिष्ट जगत सर्वम्" यही बात सूर के बाल वर्णन के विषय मे कही जा सकती है। हिन्दी का सम्पूर्ण बाल वर्णन सूर की जूठन मात्र है सूर ने वात्सल्य के दोनो पक्षों, माता पिता पक्ष तथा बालको का मार्मिक वर्णन किया है। माँ के हृदय के प्रेमोद्वेग को भी वे जानते हैं और माँ-बाप के प्रति बच्चों की कोमल भावनाओं से भी वे परिचित है दोना का सूक्ष्म निरीक्षण उन्होने किया है इसी साधना और महानता के बल पर वे बाल वर्णन के हिन्दी मे सर्वोत्कृष्ट कवि हैं सूर यदि केवल बाल वर्णन लिखकर और कुछ न लिखते तो भी उनकी एक महाकवि के रूप में प्रसिद्ध निर्विवाद थी। देखिये बालक कृष्ण की चालाकी माता को कैसा बहलाने का प्रयत्न करता है जैसे माता बच्चा हो और वह स्वय प्रौढ़ हो—

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे धरि पायो ॥
मुख दधि पोंछ कहत नन्द नन्दन दोना पीठि दुरायो
डारि साठि मुसकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो ॥

और बालकों की भांति कृष्ण को भी गाय चराने के लिये जाना पड़ता है। दूसरे गोप कृष्ण को ही गायों के पीछे दौड़ाते है वे बड़े चालाक हैं और यह भी जानते हैं कि किस व्यक्ति की गायों के भटक जाने की बात कहकर उन्हें दौड़ाया जा सकता है। राधा और कृष्ण का प्रेम ब्रज का खुला रहस्य

है इसलिये वृषभानु की गायों को तो कृष्ण ही घेर कर ला सकते हैं:—

प्रभु चढ़ि काहे न टेरत कान्हा गैया दूरि गई ।
धाई जाति सबनि ते आगे जे वृषभानु दई ॥

वहाँ तो कृष्ण चुपचाप गैया घेरते रहते है किन्तु घर जाकर अपनी कथा यशोदा मा से कहते हैं—

मैया हौ न चरैहौ गाय ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसो मेरे पाँइ पिराइ ।

यशोदा प्यार से उन्हे गोद मे भर लेती हैं और दुष्टो को पचास खरी खोटी कहती है मेरे बालक को रिगाँ-रिगा कर मारे डालते है। लेकिन कृष्ण को बाहर के गोप ही परेशान करते तब तक कोई चिन्ता न थी पर बड़े भाई बलराम को भी तो उन्हे चिड़ाने मे आनन्द आता है। जब सब बालक खेलने के लिये एकत्र होते हैं तो बलराम कृष्ण को चिडाते हैं उतना ही पड़ौस के और बालकों को भी सिखा देते। कृष्ण का बाहर निकलना ही मुश्किल कर दिया है आखिर कृष्ण या यशोदा से शिकायत करते है—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझाओ ।
मोसो कहत मोल कौ लीनौ तू जसुमति कब जायो ।
कहा करौ यहि रिस के मारे खेलन हौ नहि जात ॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता कौन तिहारो तात ।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तू कत स्याम सरीर ॥
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ।
तू मोही को मारन सीखी दाऊहि कबहुं न खीझै ॥
मोहन की मुख रिस समेत लखि यशुमति सुनि सुनि रीझै ।

माता यशोदा बड़े प्रेम के साथ कृष्ण को समझाती है बेटा ! बलराम बड़ा दुष्ट है तू इस इसकी बातो मे मत आया कर

सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई, जनमत ही को धूत ।
सूर स्याम मो गोधन की सौ हौ माता तू पूत ॥

माता-पिता और पुत्र की इस भावनिधि से सूर साहित्य इतना समृद्ध है कि विश्व का उत्कृष्टतम साहित्य उससे ईर्ष्या कर सकता है ।

मुरली—कृष्ण युवा होते हैं, वे तो वैसे ही सम्पूर्ण ब्रज मे आकर्षण का

केन्द्र हैं उस पर उनके अन्दर ऐसे गुण भी है जो साधारण आदमी को भी लोकप्रिय बना दे। युवा कृष्ण मुरली बजाने मे सिद्धहस्त है ऐसी मुरली बजाते हैं कि अचल चलने लगे और चलने वाले जीव स्थिर हो जायें मुरली का प्रभाव बड़ा व्यापक है। कृष्ण को भी मुरली बहुत अच्छी लगती है एक क्षण के लिये भी वे उसे अपने आप से अलग नही करते। गोपियो यह बात बिलकुल पसन्द नही आती कि मुरली कृष्ण के समय पर इस प्रकार एकाधिकार कर ले। कुछ उनका भी तो अधिकार कृष्ण के समय पर होना चाहिए कृष्ण गोपियो के भी तो है। और फिर मुरली भी बड़ी घमण्डी है कृष्ण का प्रेम प्राप्त कर गर्व के मारे फूली नहीं समाती है किसी को कुछ समझती ही नही है:—

माई री मुरली अति गर्व काहू बदति नाहि आजु।
हरि कौ मुख कमल देख पायो सुख राजु॥

और अजीव बात तो यह है कि ससार जिनकी खुशामद करता है वे कृष्ण स्वय उस मुरली की खुशामद मे लगे रहते है। गोपियो को यह सब अच्छा नहीं लगता वे आपस मे कहती है।

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दन नाना भाति नचावति।
राखति एक पाय ठाड़ो करि अति अधिकार जनावति॥

× × × ×

आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर, कर पल्लव सन पद पुलुटावति।
भ्रकुटी कुटिल कोप नाहापुट हम पर कोप कुपावति।

गोपियों को बड़ी चिढ़ होती है जाने यह दुष्टा कहाँ से आ गई है हमारे लिये तो यह साक्षात सौत ही हो गई है। निर्जीव वस्तुओ के प्रति मनुष्यो का इस भावातिरेक सूर ही निर्वाह कर सकते थे।

देखिये—

कहा रही कहाँ ते है आई कौने याहि बुलाई।
सूर दास प्रभु हम पर ताकौ कीनी सौति बजाई॥

सूर के भावुक हृदय ने बाँस की निर्जीव मुरली मे भी जान डाल दी है

सूर की यह भावुकता वागविदग्धता तल्लीनता और रोचकता हिन्दी मे सचमुच अद्वितीय है।

शृङ्गार वर्णन— सूर हिन्दी में शृ गार रस के सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते फिर गोपी कृष्ण प्रसग मे तो प्रेम की विविधता भी है उसमे सयोग का मधुर सुख भी है और विरह का तीखापन भी है तथा सूर की नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा ने तो उसमें और भी जान डालदी है, गोपीकृष्ण प्रेम की जड़े अत्यन्त गहरी हैं। उनका प्रेम प्रथम दर्शन का अस्थिर प्रेम नहीं है तभी तो उद्धव जैसे ज्ञानी के लाख प्रयत्न करने पर भी उनका पूर्ण विकसित प्रेम-वृक्ष हिलता तक नही है और गोपियाँ उससे स्पष्ट कह भी देती हैं—

लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटे।

अपने काव्य मे सूर ने गोपियो के प्रेम पर ही अधिक ध्यान दिया है कृष्ण को इतना प्रेम पीड़ित उन्होने नही दिखाया जितना गोपियों को। हो सकता है कि भारतीय दर्शन के यही अधिक अनुकूल हो जहाँ जीवात्मा ही परमात्मा के विरह मे अधिक व्याकुल रहती है। साहित्य शास्त्र के शब्दो में कह सकते है कि गोपियो का प्रेम नायिकारब्ध (जहाँ नायिका पहले प्रेम प्रारम्भ करती है) प्रेम है। लेकिन राधा-कृष्ण प्रेम की बात गोपी-कृष्ण प्रेम से कुछ भिन्न है। सौन्दर्य की देवी राधा की ओर प्रेम की पहल कृष्ण ही करते हैं। एक दिन राधा उन्हें अचानक दृष्टिगोचर होती है और वे पहली दृष्टि मे ही उधर आकृष्ट हो जाते हैं। आकृष्ट ही नहीं, आसक्त हो जाते हैं।

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गए स्याम रवितनया के तट, अङ्ग लसत चन्दन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विसाल भाल दिए रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगौरी॥

कृष्ण राधा से परिचय प्राप्त करने का लोभ सवरण नहीं कर पाते वे बड़ी निश्छलता और अबोधता के साथ पूछते हैं—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नाहि कहूँ ब्रज खोरी।

राधा भी अपने न आने का कारण बता देती हैं जिसमें कृष्ण पर व्यंग्य भी है—

"काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलनि रहति आपनी पौरी।
सुनत रहत स्रवनन नँद ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी॥"

लेकिन कृष्ण राधा को यह विश्वास दिला देते हैं कि हम तुम्हारा क्या चुरा लेंगे और फिर यही परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ प्रेम में बदल जाता है और फिर रास और जल-विहार से ब्रज-भूमि में बारहों महीने बसन्त बना रहता है–

विहरत हैं जमुनाजल स्याम।
राजत हैं दोउ बाहाँ जोरी, दम्पति अरु ब्रजबाम॥
कोउ ठाड़ी जल जानु जंघलौं, कोउ कटि हृदय ग्रीव
यह सुख वरनि सकै ऐसो को सुन्दरता की सीव॥

सूर ने अपनी जितनी प्रतिभा संयोग-शृंगार वर्णन में लगाई है उससे भी अधिक हृदय के रस के साथ उन्होंने वियोग शृंगार वर्णन के चित्र उपस्थित किए हैं। पूरा भ्रमरगीत प्रसंग गोपियों की दारुण विरह व्यथा का ही प्रकाश है। कृष्ण के समय में उनके उपस्थित रहते जो वस्तुएँ आह्लादकारी थीं अब वे ही काटने दौड़ती हैं यह स्वाभाविक भी है। देखिए गोपियोंको अब बादल कैसे दिखाई देते हैं—

देखियत चहुदिसि ते घनघोरे।
मानो मत्त मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुअत गडमद बरसत थोरे थोरे।
सकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे॥

कृष्ण के वियोग में ब्रज में अब तो वर्षभर बरसात ही बनी रहती है। इन्द्र तो वैसे भी ब्रज का पुराना शत्रु है और अब तो कृष्ण की अनुपस्थिति में प्रतिशोध का पूरा अवसर भी उसे मिल गया है। पहले तो कृष्ण ने ब्रज की रक्षा करली थी लेकिन आज ब्रज की कौन रक्षा करे और फिर आज तो घर की वस्तुएँ भी शत्रु हो गई हैं ये अपनी आँखें ही जल का अक्षयस्रोत बन गई हैं और ब्रज को डुबो देने पर तुली हैं—

सखी इन नैननु ते घन हारे।
बिनही रितु बरसत निसिवासर सदा मलिन दोउ तारे।
अवध श्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
दसन सदन करि बसे बचन खग दुख पावस के मारे॥

× × ×

सुमरि सुमरि गरजत जल छाँड़त अश्रु सलिल के धारे ;
बूढ़त व्रजहि सूर को राखे बिनु गिरवर धर प्यारे ।

भ्रमरगीत मे वियोग शृंगार के एक से एक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं। कुछ व्यक्ति शृङ्गार के अतिरिक्त हास्यरस, वीररस, भयानकरस, और रौद्ररस का एक-एक उदाहरण सूर मे से ढूँढ लाते हैं और उन्हे उनके महाकवि सिद्ध करने के लिए उद्धृत करते हैं लेकिन पता नही इन उदाहरणो की क्या उपयोगिता है ? यदि सभी रसो के एक-एक उदाहरण के बिना सूर को महाकवि मानने में बाधा है तो हम क्यो उन्हे महाकवि मानने का पाखण्ड करें लेकिन महाकवि होने के लिये यह उचित कसौट नही है, सूर मे अदम्य प्रतिभा है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है जिस बात का वे वर्णन करते हैं वह अद्वितीय होता है इन बातों के आधार पर हम सूर को महाकवि मानते हैं। सूर का भावपक्ष जितना सबल है कलापक्ष भी उतना ही पुष्ट है। अब यहाँ कलापक्ष पर कुछ विचार किया जाय।

कलापक्ष—कलापक्ष काव्य का एक प्रकार से भाषापक्ष है उसके अन्तर्गत निम्नाकित बाते आती हैं—

१—भाषाधिकार,

२—चित्रमयता,

३—अलकार,

४—छन्द,

५—भाषा प्रवाह,

६—शब्द शक्तियाँ,

७—गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद),

८—मुहाविरे आदि ।

यहाँ हम अलकार मुहाविरे आदि पर ही संक्षेप में विचार करेंगे क्योंकि सब तत्त्वो का सोदाहरण विवेचन करने से निबन्ध का कलेवर अनावश्यक रूप से बढ जायगा ।

सूर काव्य मे यो तो सभी अलकारो का प्रयोग हुआ है पर अर्थालकार ही सूर को अधिक प्रिय है। उनमे भी विशेष रूप से रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षा

अलंकार सूर को विशेष रूप से प्रिय हैं।

उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकार—

देखियत चहुंदिसि हे घनघोरे।
मानो मत्त मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुअत गण्डमद बरसत थोरे-थोरे।
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे॥

उपमा—

ऊधौ अब यह समुझि भई।
नँद नन्दन के अँग-अँग प्रति उपमा न्याय दई॥
कुन्तक कुटिल भँवरि भरि भाँवरि मालति भुरैलई।
× × ×
आनन इन्द्रवान सम्पुट तजि करखे ते न नई॥

रूपकातिशयोक्ति—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग॥

मुहाविरे—मुहाविरे किसी भी भाषा की जान होते हैं, अभिव्यंजना की जितनी शक्ति मुहाविरो मे होती है उतनी शायद अलंकारो मे भी नहीं। सूरकाव्य मे ऐसे मुहाविरे आते हैं जो लोगो की जवान पर चढ़ गए हैं। कवि भाषा का निर्माता भी होता है और मुहाविरो का गढना भाषाके ठोस निर्माण के अन्तर्गत ही आता है। सूर काव्य मे आए कुछ मुहाविरे देखिए—

१—कत पट पर गोता मारत हौ निरे भूड के खेत।
२—जैसे उड़ि जहाज कौ पछी फिरि जहाज पै आवै।
३—प्रीति कर दीनी गरे छुरी।
४—वह मथुरा काजरि की कोठरि जे आवहि ते कारे।
५—सूर कहौ सोभा क्यो पावै आँख आँधरी आँजै।
६—अब काहे को देत लौन हो विरहानल तन दाही।

इस प्रकार सूर हिन्दी के उन इने-गिने कवियो मे हैं जिनके काव्य का भावपक्ष और कलापक्ष एक समान पुष्ट है। सूर से हिन्दी का मस्तक आज भी ऊँचा है।

हिन्दी का पद साहित्य और सूर

मनुष्य अपने उद्गारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता फिर चाहे वह अपने उद्गार मूर्ति, चित्र, संगीत या कविता किसी रूप में भी अभिव्यक्त करे। अक्षरों का जब जन्म भी नहीं हुआ होगा उद्गारों का अभिव्यक्त करना उससे भी बहुत पुराना है। यही कारण है कि लोक-साहित्य लिखित साहित्य से अधिक प्राचीन है। गीत या पदों की परम्परा लोक साहित्य में तो बहुत प्राचीन है किन्तु साहित्यिक गीतों या पदों की क्रमबद्ध परम्परा तो शायद गीतगोविन्द के रचियता जयदेव से ही प्रारम्भ हुई है। गीतों के लिए स्वानुभूति वैयक्तिकता, कोमलकान्त पदावली तथा संगीतात्मकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। लोकगीतों में ये सभी विशेषताएँ मिलती हैं। गीतों के माधुर्य और प्रभाव से आकृष्ट होकर कवियों ने साहित्य में भी गीतों का स्वागत किया। जयदेव ने सम्भवतः पहले-पहल गीत लिखने का प्रयास किया और इस प्रतिभाशाली कवि ने गीतों के माधुर्य को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। पाठक उनके गीतों का चाहे भावार्थ न समझे किन्तु गीतों की कोमलकान्त पदावली और मनमोहक लय पाठक या श्रोता को अभिभूत करने के लिये पर्याप्त है। जयदेव के गीतों में एक विचित्र गति है जो लय को सहारा देकर उसमें मादकता उत्पन्न करती है। हरि स्मरण और कला विलास दोनों दृष्टियों से ही जयदेव के पद पठनीय हैं—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
सरस कोमलकान्त पदावली
भज तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

यों तो पदों की चर्चा करते समय चण्डीदास को नहीं भुलाया जा सकता किन्तु वे बंगाली कवि हैं इसलिए उनकी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक ही मानी जायगी। हिन्दी पद साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वालों में पहला स्थान विद्यापति का है। विद्यापति अभिनव जयदेव या मैथिल कोकिल कहलाते हैं सो उचित ही है। भावों की तल्लीनता, भाषा की मधुरता और गतिपूर्ण लय के लिये तो विद्यापति सचमुच अद्वितीय हैं। किन्तु सूर जैसा चुभने वाला

व्यंग्य भावातिरेक एव आध्यात्मिकता की शीतलता इनमे नही है। विद्यापति में कृत्रिमता का सौन्दर्य है और सूरदास मे स्वाभाविकता का। विद्यापति की भाषा उसके अभिव्यक्ति का ढंग प्रयत्नज है किन्तु सूर की कविता तो हृदय से सीधी निकली प्रतीत होती है। कृत्रिमता उसे छू तक नही गई और सच-मुच वह अनायास लिखी गई है। सूर अन्धे थे जो गा दिया कविता हो गई, मात्रा, गति, लय, शब्द आदि संशोधन का न उनके पास समय था और न यह सब कुछ उनके लिये सम्भव ही था। विद्यापति के पद उनके आश्रयदाता की माँग की पूर्ति के लिए लिखे गये थे किन्तु सूर के पद तो उनके हृदय के ऐसे उद्‌गार हैं जिन्हे वे व्यक्त होनेसे रोक नहीं सके। उन्होने जो कुछ लिखा है स्वान्तः सुखाय लिखा है। अनिच्छा पूर्वक किसी की माँग की पूर्ति स्वरूप लिखने की उन्हें आवश्यकता ही नही पड़ी। विद्यापति और सूरदास के दृष्टि-कोण में भी अन्तर है। विद्यापति का दृष्टिकोण घोर भौतिक हे, जो असामान्य रूप से भौतिक है, अस्वस्थ है किंतु सूरदास का दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। इस अश्लीलता से उनकी कविता बची रही है। विद्यापति के पदो मे तो अश्ली-लत्व इतना अधिक है कि कहीं-कही तो वह असामाजिक तक है। डाक्टर रामकुमार वर्मा विद्यापति के विषय मे लिखते हैं—

"विद्यापति ने राधाकृष्ण का जो चित्र खींचा है उसमें वासना का रग बहुत ही प्रखर है। आराध्यदेव के प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिए वह उसमें लेशमात्र भी नही हैं।

\+ + + +

राधा का शनै शनै विकास, उसकी वयःसन्धि, दूती की शिक्षा कृष्ण से मिलन, मान विरह आदि उसी प्रकार लिखे गए हैं जिस प्रकार किसी साधा-रण स्त्री का भौतिक प्रेम विवरण। कृष्ण भी एक कामी नायक की भाँति हमारे सामने आते हैं। कवि के इस वर्णन से हमें जरा भी ध्यान नहीं आता कि यही राधाकृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनके प्रति भक्तिभाव की जरा भी भी सुगन्धि नहीं है।"

\+ + + +

विद्यापति के भक्त हृदय का रूप उनकी वासना मयी कल्पना के आवरण में छिप जाता है।

× × × ×

इसका एक कारण है विद्यापति राजदरबार के बीच कविता पढ़ा करते थे। उन्हें राजसभा और अपनी कला का ही अधिक ध्यान था। उनका तो राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमादेई रमाने की ओर विशेष आकर्षण था। इसीलिए कदाचित उन्हें अपने सरक्षको के मनोविनोद का ही अधिक ध्यान था। रूपक उपमा उत्प्रेक्षादि अलकारो और भावविभाव अनुभावादि पर उन्होंने अपनी कविता की नींव खडी की। यही कारण है कि उन्होने अपने कला नैपुण्य प्रदर्शन के लिये साहित्यशास्त्र का मथन तो कर डाला पर जीवन का रहस्य जानने के लिये मनुष्य समाज के अन्तर्रहस्यो की पर्यालोचना। नहीं की।

× × × ×

विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नही किया जितना वाह्य जगत का उन्हे अन्तर्जगत की सूक्ष्म वृत्तियाँ बहुत कम सूझी हैं।"

असल मे विद्यापति और सूरदास का प्रमुख अन्तर यही है सूर हृदय के गायक है और विद्यापति वासनात्मक प्रेम के। विद्यापति मे मधुरता, तीव्रता है, मार्मिकता है लेकिन वह आत्मा तक नहीं पहुँच पाती। सूर के वाक्य तो हृदय से आते है और सीधे हृदय में पैठ जाते हैं विद्यापति के पदों के एक दो उदाहरण कीजिए। राधा से एक सखी उसके मिलन के प्रति कृष्ण की उत्सुकता एवं व्यग्रता की चर्चा करती हुई कहती है :—

नंदन क नन्दन कदम्ब क तरु तर धिर धिर मुरलि बजाव।
समय सकेत निकेतन वइसलि धिरधिर वोल पठाव।
तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनक तर उपवन उदवेगल खन खन ततहि निहारि।
गोरस बेचए आउत जाइत जनि-जनि पुछ वनमारि।

इसी प्रकार एक विरहणी अपने प्रिय का सन्देश देने के लिये कौवे को देखिए क्या लालच देती है :—

काक भाख निज भाखह रे पहु आउत मोरा।
खीर खाड भोजन देउ रे भरि कनक कटोरा।

विद्यापति को जितनी सफलता संयोग शृङ्गार में मिली है उतनी वियोग

शृंगार मे नही क्योंकि उनकी अनुभूति की तीव्रता को संयोग शृंगार के पदो मे ही उचित अभिव्यक्ति मिली है।

हिन्दी पद साहित्य की चर्चा करते समय महात्मा कबीर का विस्मरण नहीं किया जा सकता। यो तो कबीर की साखी ही अधिक प्रसिद्ध हैं किन्तु उन्होने साखियो मे या तो उन्होने समाज सुधार की बाते कहीं हैं या ज्ञान सम्बन्धी चर्चा उनमे की है। उनको पढ़कर पाठक यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि कबीर के एक कोमल हृदय भी था ठीक वैसा ही जैसा जायसी या सूर का था कबीर की साखियो से तो उनका एक अक्खड़ रूप ही पाठक के सामने आता है। कबीर का कवि तो उनके पदो मे ही अभिव्यक्ति पा सका है यदि भाषा पर कबीर का अधिकार सूर जैसा ही होता तो शायद कबीर का नाम आज तुलसी के बाद लिया जाता आध्यात्मिक विरह की अनुभूति उसकी तीव्रता, परमात्मा के साथ माधुर्य भाव की भक्ति की कोमल अभिव्यक्ति सभी कुछ तो कबीर मे है। कबीर के पद गेय भी उतने ही हैं जितने सूर या तुलसी के। परमात्मा से मिलने के क्षणो मे जीवात्मा की व्यग्रता देखिये :—

पिया मिलन की आस रहौ कबलौ खरी।
ऊँचे नाहें चढ़ि जाइ, मने लज्जा भरी।
पाव नही ठहराइ चढू गिरि गिरि परू।
फिरि फिरि चढू सभारि चरन आगे धरू।
अग अ ग थहराइ तो बहुविधि डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि तो भ्रम मे पड़ि रहूँ।
बारी निपट अनारि ये तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुमार मिलन कस होइ है।

बिना प्रियतम परमात्मा के आत्मा विकल है, दिन को चैन न रात को कितनी दयनीय स्थिति है देखिए :—

तलफै विन बालम मोर जिया।
दिन नहि चैन रात नहि निंदिया, तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रँहट अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।

नैन चकित भए पथ न सूझै साई बैद मेरी सुधि न लिया।
कहत कवीर सुनो भाई साधो हरोपीर दुख जोर किया।

हिन्दी के पद साहित्य मे मीरा का अपना विषिष्ट स्थान है लोकप्रियता की दृष्टि से तो हिन्दी मे शायद मीरा सूर और तुलसी से ही पीछे हो। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है। मीरा ईश्वर (कृष्ण) को अपना पति मानती हैं इसलिये उनके विरह विरह की जो तीव्र अभिव्यजना, मार्मिकता, स्वानुभूति एवं वैयक्तिकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मीरा के पदों में गेयता, सगीतात्मकता एव माहित्यिक अभिव्यक्ति सभी का उचित समन्वय है। हिन्दी मे यदि किसी के पद सूर से टक्कर लेते हैं तो मीरा के ही। विरह-व्यथा की तीव्रता में तो वे सूर से भी आगे हैं इस विषय में डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं :—

"मीरा बाई की रचनाओ मे रागरागनियों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। क्योंकि मीरा की भक्ति मे कीर्त्तन का प्रधान स्थान हैं। 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' की भक्ति मन्दिर के कीर्त्तन के रूप मे विशेष प्रसिद्ध है। साथ ही मीरा की गीतिकाव्य मयी भावना के लिये रागो की उपयुक्त सृष्टि परमावश्यक है। इतना होते हुए भी मीरा मे कलात्मक अङ्ग कम हैं। यद्यपि विरह का वर्णन तथापि इष्टदेव से दूर होने के कारण हृदय की दशा का ही मार्मिक चित्रण है। मीरा स्वय स्त्री थी अतः उसके विरह निवेदन मे स्वाभाविकता है। सूर के समान कृत्रिमता या कल्पना नहीं। मीरा की स्वभावोक्ति चरम सीमा पर है।"

मीरा कृष्ण से होली खेलने के लिये व्याकुल है। देखिए उनके इस पद में कितनी तल्लीनता, कितनी स्वानुभूति कितनी सगीतात्मकता और वैयक्तिकता है—

होली पिया विन लागै खारी।
सुनो री सखी मेरी प्यारी।
सूनो गॉव देश सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहिन पिय विन डोलै, तजदई पीव पियारी।
भई हैं या दुख कारी।
देस विदेस सदेस न पहुँचै, होय अदेसा भारी।

गिठाता घिस गई रेखा आगरियों की सारी।
अजहूँ नहिं आए मुरारी।
बाजत झाझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आई वसत कत घर नाहीं, तन में जुर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी।
अवतो मेहर करो मुझ ऊपर चित दे सुनो हमारी।
मीरा के प्रभु मिलज्यो माधो जनम-जनम की क्वारी।
लगी दरसन की तारी।

पद साहित्य की चर्चा करते समय तुलसी और सूर की एक साथ चर्चा अधिक सुविधा जनक है। पद साहित्य में गीतावली और विनय पत्रिका का जो स्थान है उससे प्रत्येक हिन्दी का विद्यार्थी परिचित है। तुलसी के पदो मे सगीत की सभी राग-रागनियाँ समाविष्ट हैं, वैयाक्तिकता, सगीतात्मकता भाषा के अवाध प्रवाह तथा भावो की मार्मिकता की दृष्टि से सूर को छोड़कर तुलसी के सामने हिन्दी के अन्य कवि बौने जैसे लगते है किन्तु मधुर व्यंग्य तथा शृंगार की अद्वितीय मधुरता के कारण सूर इस क्षेत्र मे अद्वितीय बन गए हैं तुलसी की सस्कृत निष्ठता उनके पद माधुर्य को कम कर देती हैं सूर की चलती बोलचाल की ब्रजभाषा मै जो मार्दव और लालित्य है वह तुलसी के पदो मे भी नहीं हैं। यों सूर ने कुछ चौपाई लिखने का प्रयास भी किया है पर तुलसी की चौपाइयों से उनकी कोई तुलना नहीं उसी प्रकार यद्यपि तुलसी ने पद लिखे हैं पर इस दिशा मे सूर ही उनसे आगे हैं निश्चित रूप से सूर हिन्दी पद साहित्य के सम्राट हैं। सगीत और साहित्य सूर के पदों मे प्रगाढ़ आलिगन में आवद्ध हैं। सूर के पदों में भी मधुरता और काव्य गुणों की दृष्टि से उनके भ्रमरगीत प्रसग के पद सर्वोत्कृष्ट हैं। इतना व्यग्य, इतनी स्वानुभूति, इतनी संगीतात्मकता, इतनी कला, इतनी भावराशि उन पदो में एक ही स्थान पर एकत्र होगई हैं कि हिन्दी उन पदो को पाकर धन्य हो गई है। यो तो कहा जाता है कि सूर ने सवा लाख पद लिखे है किन्तु यदि उनके भ्रमरगीत प्रसंग के पदों को छोड़कर शेष पद न भी मिलते तो भी उनके आधार पर ही सूर महाकवि होते।

सूर अष्टछाप मे सर्वश्रेष्ठ कवि तो हैं ही साथ ही वे पुष्टिमार्ग के जहाज के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। शुक्लजी ने ठीक ही लिखा है—"उन आठ वीणाओं में सबसे ऊँचा स्वर सूर की वीणा का ही था।"

सूर के पदो की मधुरता और मार्मिकता स्पष्ट करने के लिये कुछ पदों को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

गोपियो की विकलता, सरलता अबोधता और प्रेमातिशयता देखिए इस पद मे कितने मार्मिक रूप में व्यक्त हुई है :—

हमकौ सपनेऊ में सोच।
जा दिन ते बिछुरे नंदनंदन ता दिनते ये पोच।
मनु गुपाल आए मेरे घर, हसि कर भुजा गही।
कहा करौ वैरिन भई निदिया निमिष न और रही।
ज्यौं चकई प्रतिबिब देखिकै आनन्दी प्रिय जानि।

सूर पवन मिस निठुर बिधाता, चपल कियो जल आनि।

वचन वक्रता और व्यग्य का माधुर्य और चमत्कार देखना हो तो सूर का यह पद देखिए—

सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरहि ते सिंहासन बैठे, सीस नाइ मुसकात।
सुरभी लिखी चित्र भीतिन पर तिनहि देखि सकुचात।
हमरी चंर्चा जो कोउ चालत, चालत ही चपि जात।
सूरदास प्रभु भलौ विसारयौ, दूध दही क्यो खात।

आज तो हमारा हिन्दी साहित्य जहाँ तक पदो का सबध है अत्यन्त सम्पन्न है। पन्त, महादेवी, निराला प्रसाद आज के प्रसिद्ध कवि हैं यो आज के कवि सरस और प्रतिभाशाली कवि हैं किन्तु उनकी तुलना सूर तुलसी या मीरा से करना एक धृष्टता से अधिक कुछ नही।

सूर हिन्दी साहित्य मे शीर्षस्थान पर सुशोभित है और लगता है कि उनकी स्थिति भविष्य मे भी अपरिवर्तित ही रहेगी।

---

17 NOV 195

भ्रमरगीत सार-टीका

श्रीकृष्ण का वचन उद्धव के प्रति

४०८६

१ श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा—पहले प्रणाम करके नन्द को यहाँ का सब समाचार देना और वृषभानु गोप के यहाँ जाकर उनकी सुध लेना। उनकी कुशल मंगल जानना। मेरी ओर से श्रीदामा आदि सभी ग्वालों से आलिङ्गन करना और हमारा सुखसन्देश सुनाना गोपियो के दुःख को मिटाना (धीरज देना)। हमारा एक मन्त्री (राधा) बनमें रहता है उसको आनन्दित होकर मिलना और मेरी ओर से उसको भी सावधानी से माथा नवाना (प्रणाम करना)। वह मन्त्री बड़ा सुन्दर है, उसकी अवस्था किशोर है, नेत्र चंचल और बड़े हैं। हाथ में मुरली सिर पर मयूरपंख होंगे, पीताम्बर पहिने हुए, वक्षःस्थलपर वनमाला धारण किए होगा। वन घना है पर तुम डरना नहीं, व्रजदेवी सब रक्षा करेगी। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार कृष्ण ने अपने मन के प्रेम की चर्चा पूरी तरह से उद्धव से करदी और इस प्रकार सब व्रज की रीति समझाबुझा के कृष्ण ने उद्धव को विदा किया।

विशेष—मन्त्री राधा प्रेम की तन्मयता से तदाकार होकर वन में साधना कर रही थी यह इस पद से भली भाँति सिद्ध होता है। प्रेमी के प्रेम को प्रकट करके उसके उपकरणों को अपनाना भी एक पद्धति रही है। इसीलिए रसखान ने भी अपनी गोपियो की यह उत्कण्ठा व्यक्त की है—

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहो गुंजकी माल गले पहिरौंगी।
बाँधि पीतबर लै लकुटी वन गोधन संग फिरौंगी॥

२ श्री कृष्ण ने उद्धव से कहा कि—तुम नन्द से कह देना कि आप तो बड़े कठोर निकले। हम दोनों भाइयों को दूसरे के घर ऐसे डाल गए मानों (उसकी) धरोहर सौंप गए। छोटे से पाल-पोस के बड़े किए और बहुत सुख

दिए। गोचारण के लिए जाने पर लगभग कोस भर हमारे पीछे दौड़कर जाते थे। यहाँ पर वसुदेव और देवकी हमे अपने से पैदा बताते है। हाय भाग्य (विधाता) ने हमें फिर से यशोदा की गोद नही खिलवाया। इस शहर का राज्य किस काम का है। (सूर कहते हैं कि कृष्ण ने कहा कि) तुम (उन्हे) ब्रज के लोगो को समझा-बुझा के तसल्ली देना और कहना कि हम आज-कल मे आने को ही हैं।

२ विशेष—मानो···सोपि गए–मे वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है।

(३) जब श्री कृष्ण ब्रज की चिन्ता में तल्लीन थे कि तभी उद्धव आगए। दोनो मित्र अभिन्नरूप थे। उन्होने एक दूसरे को खूब गाढ़ालिङ्गन किया। कृष्ण ने उद्धव का अपने जैसा ही सुन्दर शरीर देखकर बड़ा ही पछतावा किया। उन्होने सोचा कि इसको भी वैसी ही (प्रेम मार्गीय) बुद्धि होती तो अच्छा था। लाओ क्यो न किसी बहाने (आने—अन्य विषय को लेकर) इसे ब्रज में भेजा जावे। इससे प्रेम की चर्चा करो तो यह योग की बाते बघारता है। (सूर कहते हैं कि कृष्ण ने सोचा) इसके हृदय मे ज्ञान इतना पक्का है कि यह अवश्य युवतियो को ज्ञान सिखावेगा।

४ (अतएव) श्री कृष्ण ने गोकुल के प्रेम का प्रसग छेडा। उन्होने कहा–हे उद्धव सुनो! मुझे सुखदायी ब्रजवासी भूलते नहीं। मेरा मन यहाँ नहीं लगता, जी चाहता है अभी हाल चला जाऊँ। गोप और अच्छे-अच्छे ग्वालो के साथ वन मे गैया चराईं उसे छोड़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। माखन की चोरी कहाँ? और यशोदा का प्रेम पूर्वक 'बेटा! खाओ' कहना कहाँ? सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के इन प्रेम-पगे वचनो को सुनकर भी उद्धव अपने नियम-साधना मे ही रत हैं। अर्थात् उद्धव ने कृष्ण के इस प्रकार प्रेम-विभोर होने को तुच्छ समझा और नियम-साधना जिसके आधार पर सम्पूर्ण सासारिक राग मिथ्या भ्रान्ति ही है उसी को सर्वोपरि समझा। उन्होने इस प्रेम-विह्वलता में प्रेम-पक्ष की प्रत्यक्ष ही पराजय देखी और इसीलिए नियम-साधना को ही उपादेय समझा। वे कृष्ण की इस बचपन की सी बात पर मुस्कराए।

५ श्रीकृष्ण ने उसे मुस्कराते हुए देखा। उन्होने (श्री कृष्ण ने) सोचा कि जो हम मन में सोचते थे यह वही बात हुई परन्तु इस रहस्य को अपने

अन्तस् मे छिपाकर ऊपर के मन से उन्होंने (पुनः) प्रेम-प्रसंग छेड़ा और कहा ऐ उद्धव ! सुनो, मुझे ब्रज की सुध नहीं भूलती । रात को भी सोते-सोते तथा जगते और चलते-फिरते सभी अवस्थाओ में मेरा मन कहीं दूसरी जगह नहीं लगता । (ब्रज के) नन्द, यशोदा तथा अन्य नर-नारियों में ही मेरे प्राण रक्खे हुए हैं । सूर कहते हैं कि कृष्ण ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव सुनो मैं तुमसे प्रेम-पद्धति का उद्घाटन करता हूँ मेरे चित्त से राधा का प्रेम कभी नही दूर होता । भावार्थ यह है कि प्रेम की रीति ऐसी अद्भुत है कि न जाने क्यो राधा का प्रेम मेरे चित्त मे सदा बसा रहता है ।

६ श्रीकृष्ण ने कहा कि—मित्र ! मेरी एक बात सुनो । उन लताबेलों के साथ गोपियो की सुध कर-करके पछतावा आता है । (यहाँ) परम सुन्दरी वृषभानु की पुत्री राधा कहाँ ? रासलीला की याद आते ही जी बड़ा व्याकुल होता है । सूर कहते हैं कि उद्धव ने कृष्ण की यह बात सुनकर कहा—यह सासारिक प्रेम अनित्य है । ये सब पदार्थ मिथ्या हैं । इसलिए कृष्ण मैं तुमसे सौ बात की एक बात बताता हूँ केवल एक (ब्रह्म) से सम्बन्ध सच्चा है । यही नित्य और ध्रुव सत्य है (कहा भी है—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या) ।

७ श्रीकृष्ण ने कहा—उद्धव ! तुम अपने मन में यह निश्चय समझो कि मैं सद्भाव से (मनसावाचाकर्मणा) तुम्हे ब्रज भेज रहा हूँ । तुम शीघ्र ही जाओ (पलानो=भागो) । तुम जाति, कुल, मातापिता आदि उपाधियों से रहित पूर्ण, अखण्ड एव अनश्वर ब्रह्म के ज्ञाता हो । तुम अपना यह ज्ञान गोपियों को सिखा आओ क्योकि वे वेचारी विरह-रूपी नदी डूब रही हैं । (जब मै पुरुष होके प्रेम से इतना अधीर हूँ तो वे तो बेचारी स्त्रियाँ हैं । उनकी क्या दशा होगी इसका अनुमान लगाइए) । सूर कहते हैं कि—कृष्ण ने उद्धव से कहा कि तुम जल्दी ही उन्हें जाकर यह उपदेश दो कि बिना ब्रह्म-ज्ञान के मुक्ति नहीं होती । (कहा भी है–ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः)

विशेष—विरह-नदी में शुद्ध या निरङ्ग रूपक है ।

८ श्रीकृष्ण ने कहा उद्धव ! तुम शीघ्र ही ब्रज को जाओ । हमारा स्मरण और सँदेशा देकर मेरी प्रियाओ का सन्ताप दूर करो । काम की आग से उनका तूलमय (कपास सा) शरीर विरहावस्था मे उखड़ी लम्बी २ साँसों की

वायु से भस्मसात् होता हुआ लोचनो के आँसुओं से बचा होगा। आज भी शरीर इस तरह कुछ-कुछ सचेतन होगा। किन्तु ऐसी अवस्था में बिना प्रबोध (समझाए बुझाए) स्त्रियाँ धीर कैसे धर सकेंगी। ऐ उद्धव ! मैं तुमसे अधिक बना बना के क्या कहूँ तुम स्वय बड़े बुद्धिमान हो जरा सोचो तो बिना पानी मछलियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं।

विशेष—कामपावक—समीर में साङ्गरूपक अलङ्कार हैं।

भसम—नीर —काव्यलिग अलङ्कार है !

जल—मीन —अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है।

६ श्रीकृष्ण ने उद्धव को व्रज जाने के लिए प्रस्तुत जानकर उनसे कहा—हे पथिक ! तुम हमारा सन्देशा इस प्रकार कह देना कि हम दोनों भाई आरहे हैं। माँ वेचैन न हो। हमें इसका बहुत बुरा लगा कि जो उन्होंने अपने को हमारी धाय (दाई) कहला भेजा। कहना आपकी कीर्त्ति कहाँ तक मानूँ आपने दूध पिलाकर बड़ा किया। नन्दबाबा के चरण पकड़ के निबेदन करना कि मेरी धूमरी और धौरी दोनों गाये दुखी न होने पावे। सूर कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि यह और कह देना कि यद्यपि मथुरा मे अपार सम्पत्ति है फिर भी हमे तुम्हारे बिना कुछ नहीं सुहाता। यह हृदय तो व्रजवासी लोगो से भेंट कर ही सन्तुष्ट होगा।

१० श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा--(ईश्वर करे) हमारी यशोदा माता अच्छी रहें। चार पाँच दिन में ही हम और भाई हलधर (बलराम) दोनों आ रहे हैं। उनसे कहना जिस दिन से हम तुमसे अलग हुए हैं कभी किसी ने 'कन्हैया' कह कर मुझे नही पुकारा। न सबेरे कलेऊ किया और न शाम को गैया के थन से लगकर दूध पिया। (उनसे कहना) मेरी वंशी भी ज़रा सभाल के रक्खें कहीं वक्त वे वक्त राधा आके उसे या किसी और खिलौना को लेके चलती न बने। सूर कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि ज़रा नन्द बाबा से यह कह देना कि तुमने बड़ा कठोर हृदय कर लिया। अपने श्याम को मथुरा पहुंचा कर फिर कभी खबर भी न ली।

११ उद्धव हौस से फूले न समाए। सचाई सिर पर चढ़कर बोलती है देखो आज मेरे योग के महत्त्व को श्रीकृष्ण ने हृदय से स्वीकार कर लिया है। बस

उनके नेत्र गर्व से ऊपर को तन गए। कहने लगे तो आप मुझे योग सिखाने के लिए स्त्रियों के पास भेज रहे है? भीतर ही भीतर वे अपनी और अपने सिद्धान्तों की प्रशसा कर रहे थे कि सचमुच सासारिक भोग स्वप्न ही है। अत में उन्होने प्रभु श्रीकृष्ण की आज्ञा अवश्यकरणीय समझ कर शिरोधार्य की सूर कहते हैं कि उन्होने सोचा कि जब मालिक ही भेज रहा है तो में और कुछ क्यो कहूँ?

विशेष—नयन अकास चढ़ायो—(असंबन्ध में सम्बन्ध दिखाने से) अतिशयोक्ति अलंकार है।

उद्धव प्रति कुब्जा के वाक्य

१२ कुब्जा ने कहा देखो उद्धव तुम गोकुल जारहे हो ज़रा एक सन्देश मेरा भी सुनलो और बाद में यहाँ से जाकर हमारी बात भी तुम उनसे कह देना। श्रीकृष्ण अपने माँ बाप के प्रेम को पहिचान के मथुरा आए हैं। ये श्याम तुम्हारे प्रियतम नहीं हैं और न ये यशोदा के पुत्र हैं। ज़रा अपनी भली करतूतों पर भी अपने मन में विचार करो। वह वेचारा (श्याम) बालक कहाँ जो तुम सब उन्मत्त ग्वालिनियों ने अपने चगुल में फँसा लिया। यशोदा को तो देखो कि उसने (तुच्छ) मक्खन के लिए बड़े-बड़े दुःख दिए और तुम्हीं सबों ने मिलकर (उन्हें बँधवाने के लिए) रस्सी दी। जरा भी दया नहीं आई। और सबसे बढ़कर वृषभानु-पुत्री राधा ने जो किया अर्थात् उसका तो प्रसंग चलना भी बुरा है। यह सब तुम अपने मन में जानती ही हो। इसी लज्जा से मोहन ने ब्रज छोड़ दिया अब काहे को हाय-हाय करती हो? सूर कहते हैं कि कुब्जा की इन बातो को सुनकर श्याम नीचे को सिर गड़ाकर रह गए। कुछ भी कहते न बन पड़ा इधर कुब्जा का प्रेम और उधर गोपियो का दोनों में से किसी को भी कुछ कहना उनके खेद का कारण होता अतः वे मौन ही रहे।

उद्धव का ब्रज में आना

१३ गोपियाँ कहती हैं—अरे देखो! कोई साँवला सांवलासा आरहा है। वैसे ही वस्त्र, वैसा ही रथ पर बैठना और वक्षःस्थल पर माला भी वैसी ही है

(जैसी कि हमारे श्याम की थी) फिर क्या था जैसी थी वैसी ही सब घरेलू काम काजो को छोड़कर दौड़ न पड़ी। वे उन्हें अ गाभिराम (सर्वाङ्ग सुन्दर) श्रीकृष्ण जानकर प्रेम-विभोर हो गई और उनके शरीर रोमाचित होगए। इतने मे ही उद्धव आ पहुँचे। गोपिया ठगी सी स्तब्ध रह गईं और (सूर कहते हैं कि) उन्होंने कहा कि भला कुब्जा के प्रेम मे बँधे हुए श्याम क्यो आने लगे ?

विशेष—स्मरण अलकार है—

रोम पुलक—ठगी तिहि ठाम मे सात्विक भाव का अच्छा चित्रण है।

उद्धव का ब्रज में दिखाई पड़ना

१४ कोई गोपी अपनी सखी से कहती है-देखो कोई उसी रहन सहन का है। मथुरा से इसी ओर आ रहा है जरा तुम तो अपनी आँखो से देखना। देखो-माथे पर मुकुट, सुन्दर कुण्डल तथा सुन्दर पीताम्बर है। वह देखो इसी ओर (ब्रज की ओर) ही वह बाँह उठाकर सारथि से कुछ कह रहा है। ठीक से तो नहीं जानती पर कुछ-कुछ पहचानती सी हूँ ऐसा मालूम होता है कि इन्हें युगो (चार युग) पहले कभी देखा हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ अपने प्रियतम से बिछुड़कर ऐसी दुखी थी जैसे पानी से बिछुड़ कर मछलियाँ आकुल होती हैं।

विशेष—धर्मलुप्तोपमालकार।

१५ गोपियो ने नन्द के दरवाजे पर रथ खड़ा हुआ देखा। वे आपस मे कहने लगीं सखि ! मालूम होता है कि अक्रूर फिर आ गए। यदि यह सच है तब तो हमारे हृदय मे बड़ा अँदेशा है। हमारी जान तो पहले ही लेजा चुके अब ये हजरत किस लिए पधारे। दूसरी सखी जबाब देती है कि मेरा विचार है कि सम्भवतः ये अब हम पर कृपा करने के लिए आए हैं। इसी बीच मे उद्धव दिखाई दिए तब सखियो ने उन्हे श्रीकृष्ण का मित्र जाना फिर तो सब सखियो ने बड़े सावधान मन से हाथ जोड़कर बड़ी लगन के साथ प्रणाम किया। वे कहने लगी जैसा सुना करते थे आप वैसे ही बड़े चतुर और सीधे सादे हैं। आपका दर्शन पाकर आज हम अपना जन्म सफल समझती हैं। सूर

कहते हैं कि उद्धव से मिलकर सखियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं कि जैसे मछलिया जल पाकर प्रसन्न होती हैं।

विशेष—ज्यो झख पायो पान्या–उपमालंकार

१६ एक सखी ने पूछा–कहिए आप कहा से पधारे है ? ठीक तरह से जानती तो नही पर मेरा ख्याल है कि शायद आपको श्रीकृष्ण ने भेजा है। वैसा ही रूप रग वैसे ही परिधान और वैसे ही (तुमने) शरीर पर भूषणों को सजाया है। महाराज जीवन सर्वस्व तो (आपके साथी) पहले ही लेजा चुके अब किस पर निगाह है जो आपको भेजा गया। गोपी ने भौरे को सम्बोधन करके कहा कि हे मधुप ! हमारे सबके एक ही तो मन हैं उसे लेकर आप तो वहाँ डट गए हो तो फिर उन्हीं मथुरा की मनोहर कामिनियों के पास ही रहो जहाँ तुम्हे बड़ा अच्छा लगता है। भाव यह है कि हम जो तन मन आपको अर्पण करने को सदा आतुर रहती हैं वे तो आपको पसन्द ही नही हैं आपको तो मथुरा की मनठन करनेवाली ही कामिनियाँ भली लगती हैं उन्हीं की चापलूसी करो जाकर यहाँ आपका कौन है जो आप पधारे। यहाँ आने में कौन मी चतुरता है। महाराज ! व्रज पर यह धावा कैसे मारा। (सूर कहते हैं कि) उन्होने कहा हम तो कालो को भली भाति जान गई हैं।

१७ (इस पद में भ्रमर गीत की सम्पूर्ण कथा सन्तेप में कह दी गई है)

प्रसङ्ग—उद्धव का ब्रह्म परक ज्ञानोपदेश सुनते ही गोपियों की मण्डली में खलबली मच गई। उन्होने कुछ का कुछ कहना शुरू कर दिया.....। एक अजीब हगामा मच गया। इसी बीच एक सखी अन्य गोपियो को शान्ति से उपदेश सुनने को कहकर उद्धव को बनाने लगी। वह बोली—अरे ! तुम उद्धव के उपदेश को सावधानी से क्यो नहीं सुनती ? आपको हमारे सुन्दर कृष्ण ने जो बड़े विचारवान है बड़ी प्रतिष्ठता के साथ भेजा है। (भला जिन्हें कृष्ण ने भी सम्मान दिया वे ऐसे ही घोघा-बसत थोड़े ही है आखिर तो भले ही आदमी होगे)।

देखो री सखियों ! जिधर नन्दसुत गये थे उसी ओर से ये कोई साहब आए हैं। इनकी वशी की वही धुन है ऐसा प्रतीत होता है मानो नन्दलाल आए हो। फिर क्या था गोपियाँ फूली न समाई और दौड़कर आगन्तुक के आसपास

इकट्ठी हो गई । किन्तु देखा तो उद्धव जी महाराज थे। उन्हे लेकर राजा नन्द के यहाँ गईं। वे हृदय मे फूली नहीं समाती थी उन्होने उद्धव को अर्घ दिया और आरती तथा दूर्वादल मिश्रित दधि से तिलक किया। फिर स्वर्ण कलशों को भर लाईं और उन्हे उठाकर उद्धव की परिक्रमा की। अतिथि पूजन से निवृत्त होके गोप लोग आँगन मे इकट्ठे हुये और उनके साथ ही उद्धव (यादव जात=यादव के पुत्र) बैठे। सामने पानी की सुराही रक्खी थी। गोपियो ने उनसे कृष्ण की कुशल क्षेम पूछी और पूछा वसुदेव तो सकुशल हैं? फिर कहा—देवी जी कुब्जा महारानी भी सकुशल हैं। और अक्रूर तथा श्याम भी सकुशल हैं? पूछ कर गोपियाँ अधीर हो गईं और उद्धव के चरण पकड़ के रह गईं। उद्धव ब्रजवासियों के प्रेम को देखते ही प्रेम में तन्मय हो गए मन ही मन सोचने लगे कि गोपाल की यह बात कुछ जची नहीं कि ब्रज के इस प्रेम को भूलकर ब्रजबालाओ को जोग सिखानेकी सोच रहे हैं। वे प्रेम में इतने विह्वल हुए कि आखो मे प्रेमाश्रु डबडबा आए चिट्ठी भी बाँचते न बना। गोपियों के प्रेम को देखकर उनका ज्ञानाभिमान कूँच कर गया। तब धोखे से ही इधरउधर की वातों से मन बहला के आँख के आँसू सुखाए। फिर उन्होंने सबको संबोधन करके अपने सब ज्ञान को सचय करके ज्ञान चर्चा छेड़ी। उन्होंने कहा—जिस कठोर ब्रत को मुनि लोग अपनाते हैं और जो उनके लिये आसान नहीं हैं वे भी उसे कठिनता से ही सिद्ध कर पाते हैं उसी ब्रत को गोपियों! अपनाओ और विषय वासना के प्रपन्च को छोड़ दो। उद्धव की बात सुनकर वे सन्न रह गईं उन्होंने आखे नीचे डाल ली। किस हौस से आई थी और क्या मिला? ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो अमृत छिड़ककर अब जहर से जला रहे हैं। किसी प्रकार उन्होंने कहा हम अबलाएँ हैं। हमें योग की युक्ति रीति से क्या सबध? हम नन्दनन्दन के प्रेम-प्रण को छोड़के दीवाल पै चित्र लिखकर क्यों पूजे। (योगी लोग मन को एकाग्र करने के लिए दीवाल आदि पर कुछ निशान बनाकर उसकी ओर टकटकी बाँधकर देखा करते है। उसी के लिए यह व्यंग्य है।) जो अज्ञात, अग्रहणीय तथा अपार आदि नामो वाला विदित है उसी निरंजन का सब रजन करे यह कुछ बेतुकी सी बात जान पड़ती है। नेत्र तथा नाक के

अग्र भाग पर ब्रह्म-निवास बताते हैं। [योगी लोग मन को एकाग्र करने के लिए नासिका के अग्र भाग पर टकटकी बाँधकर देखा करते हैं उसी के लिए यह व्यग्य है]। वह ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान ज्योति है, वह अनश्वर कभी नष्ट नहीं होता। ऐसा आप ज्ञानियो का मत है। पर जरा सोचिए तो मन घूमकर आपही ठिकाने लगता है उसे कह-सुनकर कोई थोड़े ही बाँध सकता है। अर्थात् आपकी साधना मे मन का ही मुख्य स्थान है और वह किसी के कहने-सुनने से कहीं नहीं लगता। उसे जो रुचता है वहीं वह घूम-फिरकर टिकता है। ऐसी अवस्था में हम अपने मन के विराम स्थान [घर को] कैसे छोड़ दें? अपना घर छूटने पर पराया घर तो पराया ही रहेगा। ये उद्धव तो बड़े मूर्ख मालूम होते हैं। हमें ये भूली बताते हैं। अरे! हम भूली हैं कि वे [कहने वाले] लोग भूले हैं। गोपियों से भी अधिक अन्धे को ऐसी दो आँखें निरर्थक ही हैं। हम प्रेमान्ध हैं सही पर हमारी हिये की तो नहीं फूटी, परन्तु जो ज्ञानान्ध है उसे तो कुछ भी नहीं टिपता मालूम पड़ता। ये वेद और शास्त्रों की दुहाई देकर हमें अपना ज्ञान समझा रहे हैं। परन्तु जिस अनादि और अनन्त का ये उपदेश दे रहे हैं [इनसे पूछो] उसके माँ-बाप का भी कुछ पता है? ये कहते हैं कि उसके हाथ-पैर नहीं हैं। भला पूछो फिर वह उरवली मे कैसे बँधा। यदि उसके आँख, नाक और मुँह नहीं है तो दही चुराकर किसने खाया? हमने गोद में किसे खिलाया और तुतली बाते किसने कीं? उद्धव! तुम्हारी बात तो उसके लिए ठीक जँजेगी जिसे आखों से कुछ न दिखाई देता हो। अच्छा, हम तुमसे सत्य भाव से पूछती हैं बताओ, नियम-साधना और प्रेम-कथा दोनों मे कौन सोना और कौन मट्टी है? बस तुम्हारे मुँह से न्याय हो जायगा। नियम-साधना तभी ठीक कही जा सकती है कि यदि साधक को अपना सिर देकर भी [कठिन से कठिन साधना करने पर भी] कुछ हाथ लग सके। किन्तु आपके निगु ण की प्राप्ति तो सिर भेंट देने पर भी अलभ्य है। [उपनिषद् कहती है—यन्मनसानमनुते-विज्ञातारभरे केनविजानीयात् आदि] फिर बताओ योग अच्छा है या प्रेम? प्रेम से प्रेम होता है और प्रेम से ही भवसागर के पार पहुँचता है। प्रेम से ही ससार बँधा है और प्रेम ही से परमार्थ प्राप्त होता है।

प्रेम से निश्चय मधुर जीवन्मुक्ति मिलती है। परन्तु प्रेम का यह निश्चय तभी सत्य है जब नॅंदलाल की प्राप्ति हो।

गोपियो के प्रेम-वर्णन को सुनकर उद्धव अपनी नियम-साधना भूल गए और गोपाल के गुणो का कीर्त्तन करते हुए आनन्द विभोर होकर कुंजो मे घूमने लगे। (पल मे) कभी वे गोपियो के पैर पकड़ कर कहते कि तुम्हारा नियम (प्रेम रूप साधना) धन्य है। कभी प्रेम मे मग्न होके दौड़ दौड़ कर पेड़ों का आलिगन करते। वे (बार बार) यही कहते गोपी गोप तथा इस बन मे चरने वाली गाएं धन्य हैं। और यह (ब्रज) भूमि धन्य है जहा बनवारी ने बिहार किया। मै इन्हें उपदेश देने के लिए आया था पर मुझे स्वय उपदेश मिला।

इसके पश्चात् उद्धव गोप बेश धारण करके यदुनाथ के पास गए। उन्हें यदुनाथ नाम भूल गया वे गोपाल प्रभु आदि (कृष्ण प्रेमियो के सम्बोधन) कहने लगे। उन्होने कहा एक बार ब्रज जाके गोपियो को दर्शन दे आओ। गोकुल के सुख को छोड़ के तुम कहाॅं आके रहे हो। भगवान् को दयालु जान कर (मेरे ज्ञान के औद्धत्य के लिए दयालु हरि मुझे अवश्य क्षमा करेंगे ऐसा समझ के) उद्धव ने उनके पैर पकड़ लिए। फिर कहा—ब्रज के प्रेम को देखकर मुझे नियम साधना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। (यह कहते कहते)उनके नेत्रों मे प्रेमाश्रु उमड़ आए कंठ गदगद हो गया कोई बात मुख से न निकल सकी।

सूर वर्णन करते है कि उद्धव प्रेमविभोर हो के श्याम के आगे पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी आॅंखे सजल थीं। श्रीकृष्ण ने उनके आॅंसुओं को अपने पीताम्बर से पोछते हुए कहा—कहिए योग सिखा आए ?

१८ उद्धव ने गोपियो से ब्रह्म के विषय मे कहा और यह उपदेश दिया कि सत्य ब्रह्म को प्राप्त करो सासारिक सम्बन्ध मिथ्या हैं। कृष्ण नन्दलाल नहीं वे वसुदेव के पुत्र हैं। उन्होने कंस को मारकर मथुरा में शासन सम्भाला है। तुम्हारा प्रेम बेतुका सा है। यह सुनकर वे बोली—

उद्धव तुम हमसे किसकी बाते कर रहे हो। उद्धव ! सुनो हम समझ नहीं पातीं इसलिए दुबारा पूछती हैं—राजा कौन हो गया ? कस को किसने मारा ?

और वसुदेव का पुत्र कौन है ? (इनसे हमारा नाता नहीं है) हमारे यहाँ तो वे परम सुन्दर हैं जिनको हम मुँह देखे जीती हैं। वे प्रतिदिन अपने गोप मित्रों को साथ लेकर सहज ही गोचारण को जाते और दिन बिताकर सन्ध्या के समय जब आते तो (दर्शकों की) आँखे उन्हीं पर चिपक के रह जातीं। वह जो तुम हमे व्यापक पूर्ण और अविनाशी बताते हो जिसे वेद की विधि के अनुसार अपार कहते हो कौन है ? सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि तुम व्यर्थ ही बकबाद कर रहे हो इस ब्रज में तो नन्दकुमार ही हैं और वे ही रहेगे।

१६ गोपिया उद्धव की बाते समझती तो हैं पर उन्हें अपने गोपीनाथ के द्वारा योग का सन्देश सुन कर कुछ वेतुका सा प्रतीत होता है—वे कहती हैं—

हे मधुप ! तुम किससे गढ़ गढ़ के बाते मार रहे हो। हम जरा समझ नही पा रही है इसलिए जरा एक बार फिर से कह सुनाओ। अक्रूर के साथ गाड़ी मे बैठकर कौन गया ? धोबी की लूट कराके अपने शरीर पर राजसी वस्त्र किसने पहने ? धनुष किसने तोड़ा और कुवलयापीड हाथी एव चाणूर पहलवान को किसने मारा ? उग्रसेन (कस के पिता) तथा वसुदेव और देवकी की शृङ्खलाओ को बरबस किसने तोड़ा ? तुम किसकी प्रशसा करते हो तुम्हें इस पुरवा मे किसने भेजा है ? मामा को मार कर किसने यश सचय किया और मथुरा मैं कौन राज्य कर रहा है ? (हमे उनसे वास्ता नहीं है।) यहाँ तो मयूरपखो का मुकुट धारण किए, मुख से मुरली बजाता हुआ जसोदानन्दन ही सब कुछ है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से पूछा बताओ आज भी वह मोर मुकुट मुरलीवाला नन्दनन्दन गोकुल में कहा नहीं विराजमान है ? अतएव हमें विरहिणी समझ के जो आप निर्गुण खिलौना हमारे लिए लाए हैं वह हमारे काम का नही। हमारी आँखो के सन्मुख तो आज भी वही माधुरीमय मूर्त्ति है।

विशेष १—अक्रूर के साथ मथुरा पहुँचकर श्रीकृष्ण ने कस के धोबी से राजसी वस्त्र पहनाने को कहा। उसने वस्त्र देने मे आनाकाना की और उन्हें खरीखोटी सुनाई। श्री कृष्ण ने उसकी उद्दण्डता पर उसके वस्त्र साथी गोपो को लुटाकर उस धोबी का धड़ से सिर जुदा कर

दिया था। तब एक जुलाहे ने उन्हें सुन्दर राजसी-वस्त्र धारण कराए थे और सुदामा नामक माली ने मालाएँ दी थीं। वे दोनों उनके कृपा-पात्र बने। देखिए—भागवत पुराण दशमस्कन्ध—अध्याय ४१, श्लोक ३२–५०।

२—इसी समय श्रीकृष्ण ने कंस के धनुशाला में प्रहरियों से सुरक्षित इन्द्र-धनुष को तोड़ा था और उन प्रबल प्रहरियों को मौत के घाट उतारा था। देखिए—भागवत दशम स्कन्ध, अध्याय ४२।

३—कुवलयापीड और चाणूर पहलवान को जो कस ने पाल रक्खे थे उन्हें भी श्रीकृष्ण ने इसी समय मारा था। मुष्टिक पहलवान को बलराम ने मारा था। देखिए—भागवत दशम स्कन्द अध्याय ४२, ४३ और ४४।

२० गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि—हम तो नन्द के नगले की निवासी हैं। नाम से गोपालक जाति और कुल से भी गोप हैं। गोप होने के नाते गोपाल की ही उपासिका हैं। हमारे इष्टदेव गिरिवरधारी गोचारक तथा वृन्दावन से अनुराग रखने वाले हैं। हमारे राजा नन्द और रानी यशोदा हैं तथा जमुना नदी ही हमारे लिए सागर है। हमारे प्राण प्यारे सुन्दर सुखराशि पुण्डरीकाक्ष हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि कहाँ तक कहा जाय आठों महा-सिद्धियाँ हमारी दासी हुई। जब कमलनयन के प्रति प्रेम रखने से हमें सभी कुछ अनायास ही मिल गया फिर निर्गुण को अपनाने से और क्या मिल सकेगा ?

विशेष—अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, चैव गरिमा, लघिमा तथा प्राप्तिः प्रकाम्यमीशित्व वशित्व चाष्ट सिद्धयः। अयरकोशः

२१ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—गोकुल में सभी गोपाल के उपासक हैं। जो लोग योग के अङ्गों यम नियमों की साधना करते हैं वे सब शिवजी की नगरी काशी मे रहते हैं। यद्यपि श्री कृष्ण ने हमे छोड़ दिया और हम अनाथ हो गई तो भी हम उन्हीं के चरणों के रस में पगी हुई हैं। राहु से ग्रसित होने पर भी चन्द्रमा अपनी शीतलता नहीं छोड़ता। ऐसा हम से क्या अपराध बन पड़ा है कि वे हमे प्रेम भजन छोड़के योग लिखके भेज रहे हैं। ऐसी

उदासी भला क्यों करते हैं ? सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा भला तुम्हीं बताओ ऐसी कौन विरहिणी है जो गुणराशि श्रीकृष्ण को छोड़कर मुक्ति चाहती हो ? अर्थात् श्री कृष्ण को छोड़कर हममे से किसी को भी मुक्ति अभीष्ट नहीं है।

२२ विरह की सब व्यथाओं को सहन करते हुए भी गोपियाँ श्रीकृष्ण को ही चाहती हैं। कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य आसक्ति प्रकट करती हुई एवं सगुण भक्ति की तुलना में निर्गुण को नगण्य व्यक्त करती हुई उद्धव से कहती हैं— उस चहेती कुब्जा का जीवन धन्य है क्योंकि वह दिन-रात प्यारे कृष्ण प्रियतम का दर्शन एव आलिङ्गन करती है। तुम अनवरत ध्यान मनन करके देखलो सब ग्रन्थों का एकमात्र यही सार है कि केवल श्रीकृष्ण ही सुन्दर और यथार्थ हैं अन्य सब ससार तुच्छ एव आकर्षणरहित है। ऐ उद्धव ! सुनो, जिसकी साधना से स्त्री को अनेक (ज्यानि-सस्कृत) हानियाँ हैं उस योग को अपनाकर क्या करे यहाँ तो खट्टा मठा पसन्द नहीं है सूर तो घी का खाने वाला है।

विशेष—अर्थालकार लोकोक्ति।

शब्दालंकार—पियारे पी, सुन्दरस्याम में छेकानुप्रास जोग-जीको में वृत्यनुप्रास है।

२३ गोपियाँ निर्गुण को सारहीन प्रतिपादन करती हैं हुई उद्धव पर व्यंग्य कर रही हैं—

आज तो हमारे नगले में बड़ा भारी व्यापारी आया है। उसने ज्ञान और योग के गुणों का बोझ ब्रज में लाकर उतारा है। हमें निरा अज्ञान जानकर हमसे स्वर्ण लेकर अपना तुच्छ माल हमारे सिर भेड़ना चाहता है। इसे शुरू से ही खोटी कमाई करने की आदत है इसीलिये यह भारी मोट अपने सिर पर लादे घूम रहा है। परन्तु यहाँ इनकी ठगाई में कौन आवेगा हममें से इतनी अजान कौन है। भला अपने यहाँ के दूध को छोड़ कर खारी कुए का पानी कौन पीना चाहेगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हे उद्धव ! यहाँ से जल्दी ही सबेरे ही चलदो देर मत लगाओ किसी साहू को ले जाके दिखाओ। जरूर तुम्हें मुँह माँगी कीमत मिलेगी।

विशेष—अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है । इससे अभिप्राय यह निकलता है कि तुम जाकर अपने माल को किसी पारखी को जाके दिखाओ तो तुम्हें कुछ न मिलेगा । शायद कुछ दे लेके दण्ड से बरी हो पाओगे ।

रूपक और अन्योक्ति का सकर है ।

२४ उसी भाव को पुनः प्रकारान्तर से कहती हैं:—

उद्धव ! तुम्हारी ठगई की सौदा इस ब्रज में नहीं बिकेगी तुम्हारा यह सामान ऐसे ही लौट जायगा । जिस (आढ़तिया) से लाए हो उसके भी तो मन में नहीं जचेगा । भला सोचो तो अगूर छोड़ के कडुई निबौरी अपने मुंह कौन खायेगा । मूली के साग पात के बदले में तुम्हें मोती कौन पकड़ा देगा ? साराश यह है अपने सगुण को निगु ण के बदले कौन देने को तैयार होगा ।

जोग—ठगौरी में रूपक है ।

अर्थालंकार—तुल्ययोगिता और अन्योक्ति ?

२५ उसी भाव को प्रकारान्तर से कहती हैं—

पॉडे जी (उद्धव) यहॉ योग सिखाने चले हैं । ये अध्यात्मवादी पुराणो को ऐसे लादे फिरते हैं जैसे व्यापारी माल की मोट लादते हैं । पर भाई ! हमारी एक मात्र शरण एव अवलम्ब पति पुण्डरीकॉक्ष श्रीकृष्ण बने हुए है । योग तो राडो (पतिविहीनाओं) को सीखना उचित होता है । हम तो सदा सुहागिल हैं । हे मधुप ! एक म्यान में दो तलवारे नहीं रहती एक मन में दो की आराधना नहीं निभ सकती । किसी की स्पर्धा मात्र से अनहोनी बातो के लिये प्रस्तुत हो जाना निरी मूर्खता है । हे षट्पद ! बताओ स्पर्धा से हाथियो के साथ गन्ने कैसे खाए जा सकते हैं । भला निगु ण-निरालम्ब का आलम्ब लेकर कैसे गुजर होगी भला वायु भक्षण से किसी की भूख शान्त हुई है ? उसके लिए तो दूध घी और फुलके ही खाना होता है । ऐ उद्धव ! तुम क्यो बकबक किए जा रहे हो ? ऐसा मालूम होता है किसी की चोरी पकड कर उसे डाड़ रहे हो । सो भाई किस चोर को तुमने डाड़ा है जो ऐसी झल्ले पूर रहे हो । सूरदास कहते हैं कि धनिया धान और कुम्हेड़े साथ साथ नहीं पैदा होते । भिन्न भिन्न समय में उत्पन्न होते हैं । फिर भला प्रेम और जोग कैसे एक साथ उपजाने का प्रयत्न कर रहे हो ।

विशेष—ज्यों—टोंड़े—उपमालकार।

४–५, और ७ पक्ति में लोकोक्ति

२६ सगुण भक्ति विशेषकर कृष्णोपासना योग से कहीं उत्कृष्ट है। इस भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—ऐ मधुप जोग में क्या अच्छाई है। श्रीकृष्ण की प्रेम पद्धति को छोड़कर तुम हमें फीका निर्गुण सिखा रहे हो तुम योगियों को कुछ (समाधि में) नहीं दीखता न कानो से सुनाई पड़ता हैं योही ज्योति ज्योति कहकर ध्यान किया करते हो। ऐसी अवस्था में दयालु कृपानिधि सुन्दर श्याम कैसे भुलाया जा सकता है। उनकी मधुर मुरली की ताने सुनकर उसी के विचित्रानन्द में जब आनन्द विभोर हो उठतीं तब वे श्याम अपनी भुजाओ को गले में डाल देते और गोपियों के आनन्द का ठिकाना न रहता। लोक मर्यादा और कुलीनता के भ्रान्तिपूर्ण खयालो को उन स्वामी के साथ मिलकर और वन में खेल कर खतम कर दिया। अब जब सब कुछ हो चुका (आखों का पानी ढल गया) तब आप जोग रूपी जहर की बेल खबाने आये हैं।

विशेष—रूपक अलङ्कार।

२७ योग नीरस ही नहीं कठिन भी है। भला 'अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्बते व्रजेत्। जो काम आराम से हो सकता है उसके लिये व्यर्थ श्रम करना मूर्खता है। इसी आशय को लेकर गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य कर रही हैं—

हमारे कौन योग व्रत की साधना करे। मृगछाला, भस्म अधारी (साधुओं की टेकनी) और जटा के ठठ कर्म हम भला क्यों करे ? और वह भी किसके लिए ? एक अगम्य अपार और अगाध जिसकी थाह ही नहीं मिलती ऐसी एक कपोलकल्पित वस्तु के लिए। सुन्दर गिरिधर के मनोहर दर्शन के लिए इन आडम्बरो को करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ (प्रेम पथ मे) साधना आसान और फल (दर्शन) महान है और जोग में 'खोदा पहाड़ और निकला चूहा' वाली बात। इतने ठट कर्मों के बाद भी एक अगम्य वस्तु वह भी कपोलकल्पित। फिर भला कोई भी बुद्धिमान इस प्रेम पथ के भुलाकर जोग के चक्कर में क्यो पड़ने लगा ? क्यो भला कोई आसन, प्राणायाम, भभूत मृगछाला और समाधि के पचड़े में पड़ना चाहेगा ? सूर कहते हैं कि

गोपियों ने कहा—उद्धव ! क्या कोई माणिक्य (मोती) फेंककर राख को स्वीकार करेगा ?

२८ प्रसंग-यदि उद्धव कहें कि यह तो माना कि प्रेम पथ ठीक है। पर इसमें वियोग व्यथा का जो तीव्र दाह है वह तो असह्य है। इसलिए योग उपादेय है क्योंकि उसमें विरह की आशंका तो नहीं। यदि ऐसा न होता तो तुम्हीं (गोपियां) ही आज विरहानल में यों न व्याकुल होतीं ? इसके उत्तर में गोपियों कहती हैं—उद्धव ! हमारे तो दोनो हाथ लड्डू हैं। यदि विरह गीत गाते-गाते जीवन में ब्रजनाथ मिल गए तब तो ठीक है ही नहीं तो संसार में यश ही हाथ लग जायगा, (नातरु जग जसगायो—का दो तरह से भाव स्पष्ट हो सकता है। एक तो यह कि हमें (गोपियों को) विरहावस्था में श्रीकृष्ण के यशोगान का स्वर्ण अवसर हाथ लगा और दूसरा उनके विरह में जीवन का अन्त कर देने में हम कीर्त्ति पात्र होंगी) हमें और क्या चाहिए हम तो उनके प्रेम सम्बन्ध मात्र से ही कृतार्थ हैं। भला हम गोकुल की नीच जाति की गोपिया कहां और लक्ष्मी-कान्त कृष्ण कहा जिनके साथ मिलकर हम एक पंक्ति में वैठीं यह हमारा अहोभाग्य है। शास्त्रीय मनन और मुनियो के ज्ञान से भी जो अगम्य हैं वे इस नगले के निवासी हुए। क्या इससे भी ऊपर कोई वाञ्छनीय हो सकता है तुम मुक्ति-मुक्ति चिल्लाते फिरते हो, तुम्हीं बताओं वह मुक्ति किसकी दासी है ? [हम प्रेम पथी लोग मालिक से, लेले और योगी तो उसकी दासी से मिलकर सन्तुष्ट हो जाते हैं।] इसलिए हे उद्धव ! हम तुम्हारे निहोरे करती हैं इस योग कथा को बार-बार मत कहो। [सूर कहते हैं] हमारी राय में तो जो श्याम को छोड़कर किसी अन्य का भजन करता है उसकी माता [धूलसी] तुच्छ है।

२६ उद्धव ने सदेश में कहा था कि कृष्ण को तुम पाचभौतिक पुतला न मानकर परब्रह्म समझो। वही ब्रह्म वास्तविक कृष्ण हैं जो पूर्ण और सर्वव्यापक है। इसके उत्तर में गोपियां कहतीं हैं—

तुमने जो उन्हें पूर्ण कहा वह हमारी दृष्टि में जचता नहीं। तुम जो कहते हो उसे हम कानो से सुनकर खूब सोचती हैं, पर फिर भी यह बात जचती नहीं इसीलिए ये [आँखे] विलख-विलख कर मरती हैं। तुम्हारे इस कथन

पर कि हरि घट-घट व्यापी हैं, सब जानते हैं हम अपनी बुद्धिभर समूल विचार करती हैं तो इस निष्कर्ष पर पहूँचती हैं कि वे हरि तो प्रेम-सागर की रत्न निधि हैं। जब वह मणि मिलगई तो फिर अब धूल चाटने को क्यो कह रहे हो। ऐ चचल मधुलोभी धूर्त्त मधुप ! बसकर, तू बना बनाकर निठुर सदेश कह रहा है। मुनियो की समाधि कहाँ और ब्रज युवतिया कहां ? भला वज्र भी कहीं पीसकर चूर्ण किया जा सकता है ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा भला तू ही सोच देख—कितने ही नद नदी सागर और तालाब ठण्डे और स्वादिष्ट पानी से भरे हैं परन्तु चातक के मन में स्वातिजल की ही लगन रहती है उसके लिए और सब कुछ नीरस है।

विशेष—कह मुनि ध्यान पूरी-निदर्शना
सरिता सागर सर मे—दुष्क्रमत्वदोष हैं

३० गोपिया उद्धव से कहती हैं—[हे उद्धव ! तुम जो कहते हो कि हरि आजकल राज काज मे व्यस्त हैं उन्हे प्रेम करने की फुर्सत नहीं है। यह बात नहीं]

कृष्ण हमसे कभी उदास नही। जहा प्यार कर खिलाया और अधरामृत पिलाया वह ब्रज का निवास भला भूलने की चीज है ? परन्तु वीतराग से राग की कथा कहना निरर्थक हैं; तुम्हारे आगे रस कथा का वर्णन भैसके आगे बीन बजाना है। बहरा भला स्वर माधुरी की क्या क़दर करेगा, गूँगा वचन माधुरी के मर्म को क्या जान सकता है ? (बातो की झोंक में गोपी कभी सखी से और कभी उद्धव की ओर उन्मुख होकर कहती है।) ऐ सखि सुनो वे विविध आनन्द विलास के दिन फिर आवेंगे। ऊधौ ! हमको प्रतीक्षा करते-करते अब तेरहवा महीना लग गया है।

अलंकार—निदर्शना।

३१ उद्धव के बार २ वहीं सन्देश दुहराने पर गोपिया व्यंग्य करती हैं। वे कहती हैं-कहे जा तू अपनी तेरी कोई बुरा नहीं मानता। ऐ नीरस मधुप ! प्रेम की बात प्रेमी ही जानता है। (पर मानो उद्धव यह कहैं कि हम भी तो कृष्ण

के पास सदा रहते हैं उस प्रेम निधि के पास रहते हुए भी हमें तो प्रेम का ऐसा स्वरूप कभी नहीं दीखा। इसके उत्तर में गोपिया कहती हैं) मेंढक कमलो के पास जिन्दगी भर रहता है पर उससे प्रेम नहीं सीख पाता परन्तु भौंरा दूर रहकर भी उस पर ऐसा लट्टू होता है कि बस उसे पाने के लिए उड़ देता है किसी का भी कहना कान नहीं करता। प्रेम पंथ का साधक कठिनाइयों से नहीं घवराता अपनी तीव्रधारा से उन कठिनाइयो का समूलोच्छेद करके अपने प्रियतम से मिलकर ही दम लेता है। देखो नदी अपने किनारे के वृक्षो को उखाड़ती पछाड़ती सागर से मिलने को चलदेती हैं। कायर बकते हैं और रणभूमि में लोहा देखते ही भाग खड़े होते हैं। सच्चा सूर वही है जो सघर्ष करके कठिनाइयो को पार करता है। अतएव प्रेमपथ की कठिनाइयों से सघर्ष करना ही प्रेमी के लिए परम बान्छनीय है।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार

३२ गोपिया उद्धव से कहती हैं :—आप लोग घर बैठे ही बढबढ कर बाते चुपड़ने वाले हैं। कभी सनेही के वियोग मे नही पड़े। अरे पगले मधुप ! जब वियोग व्यथा सहोगे तब पता चलेगा। सिह का यही स्वभाव है कि चाहे भूखा मर जाय पर घास नहीं खाता। (भिलाइए-केहरि तृण नहि चरिं सकै जो व्रत करै पचास) इसी प्रकार सच्चा प्रेमी वियोग से घबड़ाकर अन्य मार्ग नहीं अपनाता। जो कान मुरली के रसामृत के पले हैं उन्हें जोग का ज़हर न खिला। ऐ उद्धव ! तुम हमें क्या सिखाओगे ? हमारे लिए कृष्ण को छोड़ और कोई शरण नहीं हमारे लिए यह भवनदी पांभ है फिर हम नाव (योग-साधन) लेकर क्या करेंगे ?

विशेष—तुल्ययोगिता

३३ गोपिया उद्धव से कहती हैं :—उद्धव ! अब तो श्याम का मुख देखकर ही कुछ (जीवन पर) विश्वास जम सकेगा। तुम करोड़ो उपायो से जो हमें योग और समाधि की रीतिया सिखा रहे हो सो हमें इस ज्ञान मे कुछ सयानप नहीं प्रतीत होता फिर हम यह सब कैसे मानले। बताओ हम तुम्हारे इस (नभ) आकाश को हृदय में कैसे समेट कर रखले। (आकाश से दो भाव निकलते हैं एक तो व्यापक और महान् होने से वह छोटे से हृदयों में नहीं

समा सकता दूसरे वह शून्य है उसे हम हृदय में रक्खे भी तो वह शून्य ही रहेगा। अर्थात् निर्माण की भावना महत्वपूर्ण होने से वह सामान्य हृदयो मे नहीं समा सकती और आकार शून्य होने से वह हृदय की रागात्मिका वृत्ति के लिए कोई अवलम्ब नहीं दे सकती) हमारा मन एक है और वह मूर्त्ति भी एक ही है जिसने हृदय में रह कर भृंगकीट द्वारा उपात्त कीट की भाति उसे अपने ही आकार मे बदल डाला है।

इस प्रकार से उद्धव से व्रज के चतुर लोग शपथ देके पूछ रहे हैं कि सच बताओ तद्रूप हो जाने से हृदय में योग के लिए कहां स्थान है!

विशेष—रूपक और उपमालकार।

३४ एक गोपी उद्धव से कहती है :—उद्धव! हमारा प्रेम आजका नहीं। हमने कृष्ण के साथ शैशव से प्रेम संचित किया है। वह भला कैसे छूट सकता है। मै ब्रजनाथ कृष्ण के चरितो की मोहकता कैसे वर्णन करूँ। अब स्मरण आने पर तन मन की सुधि खो जाती है। वह चुटपुटी चाल तथा सुन्दर चितवन और मुसकान सहित मन्द २ गाना। नटवर का वेषधारण करके अनेक क्रीड़ाए करते हुए बन से घर को लौटना! (सभी मे एक अद्भुत आकर्षण) मै उनके चरण कमलों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मुझे यह योग सन्देश जहर सा लगता है। मुझे तो वह मोहनी मूर्त्ति सोते जागते पल भर भी नहीं भूलती।

विशेष—उपमालकार (धर्मलुप्त)

३५ गोपिया उद्धव से कहती हैं :—ऐ उद्धव! तुम्हारी इन वेतुकी बातों को सुनने के लिए कौन प्रस्तुत होगा? ऐ धूर्त्त मधुकर! हम अहीर अबलाए हैं। जरा सोच हमे जोग कैसे सोहेगा? जिस प्रकार बूंची को बुन्दे, अन्धी को काजल और नकटी के लिए नथनी हो उसी प्रकार यह योग का उपदेश हमारे लिए है। भला, गजी चाद पर पटिया गूँथना कैसे सभव है? कोढी के शरीर पर केशर का लेप करने से क्या लाभ? यदि कोई पति किसी बहिरी स्त्री से मन्त्रणा करने बैठे तो उसे क्या जबाब मिलने की आशा हो सकती है? ऐसी ही उद्धव! जो हमे जोग सिखाता है उसकी भी दशा मूर्खता पूर्ण है। हम आपके इस योग की पात्र नहीं। हां इतनी अशिष्ट भी नही कि आपके इस

कृपा पूर्ण उपहार को ठुकरा के आपको अपमानित करे। इसलिए जो आप कृपा करके हमारे लिए लाए हैं। वह हमारे लिए शिरोधार्य है। परन्तु जहर से भरे नारियल के समान आपका लाया हुआ यह योग हमारे हाथों से बन्दनीय है। नारियल होने से वन्दनीय है पर उसमें जहर होने से उपभोग योग्य नहीं इसी प्रकार योग सन्देश प्रियतम का उपहार है इसलिए हमारे लिए वन्दनीय है उपभोग्य नहीं हम इसे नमस्कार करती हैं।

विशेष—पूर्वार्ध में वाचक लुप्ता मालोपमालंकार तथा अन्तिम पंक्ति में उपमालंकार।

३६ कृष्ण की निठुरता पर व्यंग्य करती हुई एक गोपी उद्धव से कहती हैं:— कुब्जा ने तो भी कुछ अच्छा ही किया। उसने उन्हें मोल लिया यह समाचार सुन सुनकर मेरा हृदय कुछ कुछ ठण्डा हो जाता है। उन्होंने जिसका भी गुण गति नाम और रूप अर्थात् सर्वस्व हर लिया फिर उसे कभी नहीं लौटाया ऐसे गुरुघटाल ने भी अपने मन को हरता हुआ न ताड़ पाया यह बात सुनकर सुनने वाले हँसी से वेकल हैं। देखो तो भला उस कुब्जा ने उन व्रजपति को थोड़ा सा चन्दन लगाकर अपने वश में कर लिया। इस प्रकार सभी नागरी स्त्रियों की ठगाई का दाव उस दासी ने ले लिया।

३७ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—श्रीकृष्ण कैसे अन्तर्यामी हैं ? जब कि वह इस समय आकर नही मिलते और एक लम्बी अवधि बता रहे हैं। वे स्वय अपनी इच्छा से ही नीरस और निष्काम हो वहाँ जा बैठे। गरुड-वाहन कृष्ण दूसरों की व्यथा क्या समझें ? जिस प्रकार खटाई से कलई छूट जाती है उसी प्रकार उनका प्रेम भी (इस प्रवास से) खुल गया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि हम तो इस कुढ़न से और भी मरी जा रही हैं कि वे हमारे प्रेम से साफ इनकार कर रहे हैं।

विशेष—उपमा अलंकार।

३८ गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य कर रही हैं—प्यारे उद्धव ! बुरा न मानना। वह मथुरा मालूम पड़ता है कि काजल की कोठरी है वहाँ से जो भी आते है काले हैं। देखो, तुम काले, अक्रूर काले और भ्रमर भी काले हैं। उनके साथ में हमारे श्रीकृष्ण और भी सुहावने लगते हैं। मानो सब के सब नील के

के मटके से निकालकर यमुना के जल में धोए गए हैं। इसीलिए यमुना भी श्याम हो गई हैं। भाई कालो के सब गुण अनोखे ही होते हैं।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षालकार और तद्गुण अलकार हैं।

३९ यह निर्गुण का उपदेश हमारे कल्याण के लिए नही वास्तव मे आप लोग यह उपदेश देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। इसी आशा को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

सभी अपने-अपने स्वार्थ के है। रस के लालची मधुप चुप रहो। हम तुम्हे भी जानती हैं और उन्हे भी। और जो कुछ सन्देश कहने केलिए भेजा हो वह भी क्यो नही कह डालते ? युवतियो के लिए योग लिये फिरते हो दोनो ही बड़े चलते हैं। यदि योग ही परमार्थतः सत्य है तब क्यो रास रचा था ? ज्ञान तो तब भी था ही। अब तो हमारे दिल मे भी यह ठन गई हैं अब जो कुछ होना हो सो हो [पर हम अपने व्रत पर अटल हैं]। अब तो सब आशा और भरोसा मिट गए और हृदय हताश सा हो गया। परन्तु कोई बात नहीं श्री कृष्ण ही प्रभु हैं इसलिए हम चित्त से निश्चिन्त रहेगी।

४०. गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—उद्धव ! तुमने यहाँ आके योग का सदेश दिया। [इसे मानकर तुम्हारा मन रखना हमारा कर्तव्य है] पर क्या करे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण से जो लगन लगी है वह तो टूटती ही नहीं। महान सुख की खान होते हुए भी हमारे लिए यह योग-युक्ति किस काम की है। हम लोग तो यहाँ श्यामसुन्दर के स्नेह मे पग रहे हैं उन्हीं से मिलन मे मन मानता है। योग मे और भी श्रेष्ठ गति हो जाने पर भी हमे यह मिलन-सुख कहाँ रक्खा है ? लोहा पारस के सयोग से शुद्ध सोलहो आने सुवर्ण तो हो जाता है परन्तु उसकी वह उमग भरी सहृदयता कहाँ ? जिसके कारण वह चुम्बक से जा लिपटता है। इसी प्रकार योग सब कुछ होते हुए भी हमारी यह 'सनेह लपटानि' कहाँ मिलेगी ? यह निर्गुण, निराकार और निरीह ऐसी अचिन्तनीय वस्तु है कि शास्त्रो के ज्ञान से भी अतीत है। उसका ज्ञान विशेषकर अब—जब कि हम कृष्ण मे इतनी आसक्त हैं—कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

विशेष—दृष्टान्त।

गोपियाँ कहती हैं—हे उद्धव ! हम तो कृष्ण के साथ रँगरेलियो की

भूखी हैं। विरह-व्यथा से पीड़ित हम विरहिणी तुम्हारे निर्गुण की चर्चा का अभिनन्दन कैसे कर सकती हैं? हम तुमसे क्या कहे जब कि तुम्हे इतना भी नहीं मालूम कि योग चर्चा का पात्र कौन है। हम नम्र निवेदन करती हैं जरा यह तो बताओ कि उस नगर में क्या सब तुम्हीं से पगले रहते हैं? काजल, भूषण और सुन्दर वस्त्र ये चीजे जरा स्वय ले लो तब तुम अपने योग के साधन दण्ड, कमण्डल, भभूत और अधारी युवतियो को देना। जैसे योगियो के लिए ये चीजे अनुपयुक्त हैं इसी प्रकार प्रेम मार्गियो के लिए तुम्हारे साधन अनुपयुक्त है। सूरदास कहते हैं कि गोपियो की इस अटल धारणा को देखकर उद्धव इस निश्चय पर पहुँचे कि कृपालु कृष्ण ने मुझे यहाँ अवश्य ही प्रेम का पाठ पढ़ने के लिए भेजा है।

४२ गोपियाँ कहती हैं—उद्धव! हमारी आँखे तो हरि-दर्शन की भूखी हैं। रूप के प्रेम मे अनुरक्त ये आँखे इन रूखी बातो को सुनकर कैसे मान सकती हैं? सच पूछो तो हमारी ये आँखे इस विरह मे उनकी बाट जोहती हुई अवधि के दिनो को गिन-गिनकर दिन काटते हुए इतनी सन्तप्त नहीं हुई थीं। अबतो इन योग की बातो को सुनकर बहुत ही व्याकुल और दुखी हैं। उद्धव हम चाहती है कि दूध दुहकर दोने मे पीते हुए कन्हैया का मुँह एक बार दिखादो। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि उद्धव! तुम्हारा हमे योग का उपदेश देना ऐसा (मूर्खतापूर्ण है) हास्यास्पद है जैसा कि सूखी नदियो के पुलिन पर नाव चलाने का आयोजन है।

४३ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—उद्धव! श्रीकृष्ण से कह देना कि आपके सदेश के उत्तर मे उन्होने (गोपियो ने) कुशल क्षेम पूछी है और यह कहला भेजा है कि जिसको बिलकुल ज्ञान नहीं है वही तुम्हारी कही बात (योग साधन की) मान सकता है। तुमसे भलाई की क्या आशा की जा सकती है जब कि तुम नाम (कृष्ण) और रूप से सर्वथा काले हो और सर्वाङ्ग काले ही सब तुम्हारे सखा है। यदि काले अच्छे होते तो भला वसुदेव तुम्हारे बदले लड़की क्यों ले जाना स्वीकार करते। हमारे लिए जोग और कुब्जा के लिए भोग उचित है यह किसके गले उतर सकती है। (यदि ब्रह्मा उसे भोग योग्य समझता तो उसे कुब्जा न बनाकर सुन्दरी न बनाता?) सूर कहते हैं कि

गोपियो ने कहा—कि हमारी क्या बात है जिन नन्द और यशोदा ने उन्हें विश्वास पूर्वक सेया पाला वे ही स्वयं पछता रहे हैं। (ईश्वर न करे कोई काले के पाले पड़े)।

४४ उद्धव के बेतुके उपदेश पर गोपियाँ व्यग्य कर रही हैं। वे कहती हैं:—वाहरे उद्धव ! तुम्हारी कहाँ तक बड़ाई की जाय। ब्रज मे आके उद्धव ने तो एक नई अनरीति चलाई है। उन्होने बिना पानी के तरग बिना भीत के चित्र और बिना चित्त के ही चतुरता का उपदेश दिया है। जिसके रूप रेखा, शरीर और मुख कुछ नही है हाय उस निर्गुण से लगातार प्रेम कैसे निभ सकता है ? चित्त में तो माधुर्यमयी मूर्त्ति चुभ रही है जो हमारे रोम रोम से उलझ रही है। हम तो उन पर कुर्बान हैं जिन्हे श्याम ही सदा भाते हैं।

विशेष—अतिहि—अगोचर, वृत्यनुप्रास अलङ्कार।

४५ योग सन्देश से टपकने वाली गोपियो के प्रति कृष्ण की उदासीनता पर गोपियाँ व्यग्य कर रही है:—यदि हमसे अनासक्ति ही अभीष्ट है तो उनसे कह देना कि गोपीनाथ नाम क्यो रक्खे हुए हैं ? ऐ उद्धव ! यदि वे हमारे कहाते हैं तो भला गोकुल क्यो नही आते ? हमसे कभी यों ही जान पहचान सी हो गई थी जो वास्तविक प्रेम नही था फिर भी हमें कलक लगा रहे हैं। मामूली जान पहिचान में भी अपना नाम गोपीनाथ रखकर हमे चिड़ाना ही है और जो सुनेंगे वे समझेंगे कि हमारा अवश्य ही उनसे पति-पत्नी का सन्बन्ध रहा है इस प्रकार हमे कलक लगाते हैं। यदि उनका कुबड़ी पर ही अनुराग है तो वे अपना नाम कुब्जानाथ क्यो नहीं रखवाते। कृष्ण को प्रेम मे कम से कम इतनी ईमानदारी तो वरतनी ही चाहिये। हमारे नाम की आड़ मे कुब्जा से यह व्यवहार करके वे सचमुच टट्टी की आड़ मे शिकार खेलने का प्रयास कर रहे हैं। जिस प्रकार हाथी के दात खाने के और दिखाने के और होते हैं ठीक ऐसे ही कृष्ण कहने सुनने को तो हमे रखते हैं पर रमते कही और ही है।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

४६ गोपियाँ कृष्ण के इस प्रकार भुला देने पर व्यग्य कर रही हैं—अरे राजा साहब ! अब भला काहे को हमारी याद करोगे ? स्वार्थ के लिए

थोड़े दिन हमसे प्रेम कर दिखाया ! क्यो न कहो अपना ही मतलब तो गाठने मे लगे रहते हो। हमें यह बात उस समय कहाँ मालूम थी कि जब हम सब अचेत होकर तुम्हारी मुरली ध्वनि से बचित हो गईं थीं। यह तो अब मालूम पडा कि ये सब आपके कपट पूर्ण व्यवहार थे। पर हम क्या करे जिस प्रकार समुद्र का पक्षी इधर उधर भटक कर जहाज की ही शरण पकड़ता है उसी प्रकार इधर उधर से भटक कर हमारा भी मन श्याम की शरण जाता है। परन्तु प्रेम का सम्बन्ध तो उसी दिन से टूट गया जिस दिन वे अक्रूर के साथ भागे थे। वह प्रेम तोड़कर भी आज गोपीनाथ नाम रखकर न जाने श्याम हमें क्यो लज्जित कर रहे है।

विशेष—उपमालकार

४७ उद्धव द्वारा लाए हुए सदेश पत्र पर व्यग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं:- अरे भाई देखो तो इस पत्र पर तो श्रीकृष्ण की मुहर लगी है। (सचमुच यह उद्धव की मन गढ़न्त नहीं है) इसे उद्धव अपने सिर पर बाधे घूम रहे हैं। हमें तो इसे देखते ही बुखार चढ़ रहा है। आज जिस की घर घर स्थापना की जा रही है वह नन्दनन्दन की बड़ी अनोखी ही रीति है। अब कृष्ण के यहाँ कुब्जा की हूकूमत है इसीलिए यह घमण्ड दिखाई पड़ रहा है। उसी के शासन से ये उद्धव हमसे योग की आराधना तथा अज्ञात का जाप करने को कहने आये हैं। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा 'भला इस सन्देश को सुन किस सती को पाप नहीं लगेगा। सच्चे प्रेमी के लिए अन्य से प्रेम करना तो दूर रहा उसका सुनना भी पाप है।

४८ उद्धव के बार २ समझाने पर गोपिया कहती हैं :—उद्धव ! आप बार-बार हमें क्या सिखा रहे हैं। हमारी विरह व्यथा से सहानुभूतिवश सम्भवतः आप यह उपदेश दे रहे हैं। पर आपको मालूम होना चाहिए कि हम नित्य-प्रति प्रातःकाल उठकर उन्हे घर घर माखन खाते हुए देखती हैं। तुम जिस अज्ञेय और अचिन्त्य की बात हम से करते हो जिसे तुम सतत सनिहित समझते हो वह तो हमसे बहुत दूर है। हमारे प्राणों की संजीवन यशोदानन्दन वस्तुतः हमारे सतत समीप हैं। हमे आज भी ग्वालबालो के साथ दधि चुराते और उन्हे खवाते डोलते दिखाई देते हैं और हमे देखकर या आहट सुनकर ही

वे चौंककर आज सिर झुकाए देख पड़ते हैं। अब बताइए ! अब तो हमारे प्रेम मे वियोग का भय नहीं ! अब क्यो चुप्पी साधली ! बोलते क्यो नही ?

४६ गोपिया उद्धव से निर्गुण से सगुण की श्रेष्ठता अभिव्यक्त करती हुई उद्धव से कह रही हैं। हाय रे भैया ! हम अपने सगुण गोपाल को उद्धव की इन चिकनी चुपड़ी बातो के बदले कैसे दे दे। हालाकि ये धर्माधर्म का विवेक बना रहे हैं और निर्गुणोपासना के फलस्वरूप सम्पूर्ण सुख और मुक्ति की प्राप्ति बताते है तथापि हमारी समझ मे नहीं आता। जरा अपने चित्त मे विचारो कि मनमोदक खाके किसकी भूख शान्त हुई है। इसलिए भाई केवल तुम्हे सन्तोष देने के लिए अपने श्याम को छोडकर तुम्हारी अटपटी बातो के बबडर मे से सार ढूढ़ने का प्रयत्न क्यो करे। (भुसी फटके-कणो की कम सभावना वाली भुसी को पठोर कर कुछ कण हाथ भी लग जावे तो इससे क्या होता है ? अर्थात् तुम्हारा निर्गुण भूसी निस्तत्त्व है यदि बड़े प्रयत्नो के बाद उसमे कुछ थोड़ा बहुत सार हो भी तो किस काम का है।

विशेष—लोकोक्ति ।

५० गोपिया उद्धव से कहती हैं :—ऐ उद्धव ! हमसे कृष्ण की चर्चा करो। यह अपनी ज्ञानचर्चा मथुरा ही लेजा कर गाना। वहाँ नागरी स्त्रिया हैं वे इसकी कीमत ठीक जाच सकेगीं। अपने इस उपदेश को, तुम्हारे पैर छूती हैं, उन्हें ही जाकर सुनाओ ओर इन मीठी बातो से उन्हें ही रिझाओ। कृष्ण के प्यारे मित्र उद्धव ! यदि तुम्हारे हृदय मे सचमुच ही सद्-भावना है तो इन दुखी नेत्रो को श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन एक बार पुनः कराओ। ऐ मधुप ! कोई कितना ही प्रयत्न करले पर क्या विरहिणियो को और कोई चर्चा सुहाती है ? (विरहिणी तो अपने प्रेमी की चर्चा सुनना चाहती है) सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि मछली को जीने के लिए पानी को छोड़कर और कोई उपाय नहीं है।

५१ गोपियाँ सगुणोपासना के आनन्द का दिग्दर्शन कराती हूईं श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के रस की अनिर्वचनीयता वर्णन कर रही हैं—

हे मधुप ! हरि की रूप-माधुरी के रस को किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है ? मेरा शरीर अनेक रहस्यो से भरपूर है जिनमे से एक रहस्य यह है

कि (रसनेन्द्रिय, वाणी) नयनो की दशा नहीं जान सकती। जिन्हें दर्शनानुभूति हैं वे वाणी से विहीन हैं जिसे वाणी मिली है वह दर्शन से विहीन हैं (गिरा अनयन नयन बिनु बानी—तुलसी) वाणी न होने से ये नयन सगुणानन्द के महत्व को स्मरण कर करके प्रेम जल की उमगो से छल छलाई रहती हैं। मन मे यही पछतावा रहता है कि वह अनिर्वचनीय आनन्द अब कहाँ ? भाग्य पर किसका जोर चलता है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि अपने अङ्गों की यह दशा उलटे चलने वाले या इस षट्पद भ्रमर को कौन समझावे। सगुण की रूप माधुरी से इस प्रकार से भूमा की अनायास ही प्राप्ति निर्गुण-वादियो की कल्पना से इतनी दूर है कि वह उनकी समझ मे नही आसकती। इधर वह हमारी वाणी से भी अवर्णनीय है क्यो न हो उपनिषद् भी यही कहती हैं—'न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा स्वय तदन्तः करणेन गृह्यते। तात्पर्य यह है कि निर्गुणोपासना मे उपासक की चित्तवृत्ति जिस दशा मे पहुंचती है उसी मे सगुणोपासक की भी। दोनो के लिए ही वह आनन्द 'गूगे का गुड़ है' अन्तर केवल इतना ही है कि निर्गुणोपासना में वह श्रम साध्य है और सगुण मे वह अनायास साध्य, फिर सगुणोपासक अपने इष्ट सगुण को छोड़कर निर्गुण को किसलिए अपनावे। (इसीलिए गोपियाँ अपनी सगुणोपासना मे अचल हैं यही भाव व्यक्त करती हुई वे आगे कहती हैं)

५२ गोपिया सगुण मे अपनी दृढ़ता वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं :— उद्धव जिस प्रकार हाड़िल का व्रत है कि वह जमीन पर पैर नहीं रखती। पेड़ लता के आधार के अभाव मे वह अपने चगुल में दबी हुई लकड़ी के आधार पर ही वह अपने अटल व्रत को निभाती है और जीते जी वह लकड़ी को छोड़ती नहीं ठीक इसी प्रकार हमने भी हरि को पकड़ रक्खा है उन्हें हम जीते जी नहीं छोड सकती। मनसा वाचा कर्मणा हमने हृदय मे हरि को ही दृढता से जमा रक्खा है। सोते जागते, स्वप्न और प्रत्यक्ष मे सदा कृष्ण के ही दर्शन और उन्ही की पुकार रहती है। मधुप ! तुम्हारा योग सुनने मे कड़ुई ककड़ी प्रतीत होना है। जो हमने न कभी देखी न सुनी उसी व्याधि को आप हमारे लिए ले आए। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा यह योग तो उनके लिए उपयुक्त है जिनके मन चचल हो इधर उधर भटकते रहते हैं। योग नाम ही

चित्त वृत्ति निरोध का है और निरोध का उपदेश भटकने वाले आवारा के लिए उपयुक्त है जिनकी चित्तवृत्ति पहले से ही निरुद्ध है उसके लिए योग व्यर्थ है।

(देखिए, योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। पातञ्जल योग दर्शन)

विशेष—इस पद मे उपमालङ्कार है।

५३ अपनी मनोदशा सम्यक्तया वर्णन् कर देने के बाद भी जब योग पर बल दिया गया तो गोपियाँ झल्ला उठीं। वे उद्धव से कहने लगी—

आप बारबार हमे मौन की शिक्षा क्यो दे रहे हैं। आपकी शिक्षा के ये असहनीय वचन हमारे लिए इस प्रकार व्यथादायी हैं जिस प्रकार जले पै नमक व्यथादायी होता है। सिगी फूँकना, भस्म रमाना, मृगछाला और मुद्राओ का परिधान तथा प्राणायाम का साधन तो योगियो के लिए उचित है। वे ज्ञानी और तपस्वी हैं उन्हें यह यम नियम पालन सब सोहता है। मन की शुद्धि और एकाग्रता तथा उनकी विरक्ति के लिए ये आवश्यक साधान हैं परन्तु मूर्ख मधुकर! हम तो गँवार (अहीर) अबलाएँ हैं हमे ये साधन कैसे फब सकते हैं? हाँ जिस उद्देश्य से ज्ञानी इन्हें अपनाते हैं वह है वैराग्य सुख दुःख मे सम भावना वह हमे वैसे ही प्राप्त है। हम मे घर और वन का भेद नहीं रहा। आपको मालूम है कि हमारे लिए 'सरब भूमि गोपाल की' है। फिर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन कठिन साधनो को अपनाने की आवश्यकता ही क्या है (अक्केचेन्मधुविन्देत किमर्थं पर्वते व्रजेत्)। यह उपदेश तो उद्धव महाराज! उन्हें दीजिए जो हर तरह से खुशहाल हैं। राग मे फँसो के लिए विराग के साधन उपयुक्त हैं और वह भी पात्र के अनुकूल। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) आज तक हमने तो माला के दानो को सुतरी में पिरोने वाला न देखा और न सुना हो। इसलिए महाराज! जैसा पशु तैसा ही बन्धन होना उचित है।

विशेष—उपर्युक्त पद्य मे मौन योग का उपलक्षण है। गीता के अनुसार योगी को—'विविक्तसेवीलब्वाशी यतवाक्कायमानसः' होना चाहिए। इसीलिए योगी वाणी का सयम प्राप्त करने के लिए मौन धारण किया करता है।

इसी मौन को योग का उपलक्षण मान के प्रस्तुत पद में योग के विषय में कहा है।

५४ कहाँ तो सरस प्रेम और कहाँ यह नीरस योग! दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रेम को छोड़कर फीका निर्गुण भला कौन अपनाने को तैयार होगा? यह जानकर भी जो लोग योग ही योग गाते हैं उन्हें क्या कहा जाय। यही भाव अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

प्रेम से विहीन इस योग की कथा गाना व्यर्थ है। विरहिणी की विरह-व्यथा से सहानुभूति दिखाना सहृदयता है न कि उन्हें वैराग्य का उपदेश देना। फिर तुमने हम दुखियो से ये भोग के निष्ठुर वचन कैसे कह डाले? हमने अपने नयनो से कमल नयन (पुण्डरीकाक्ष) कृष्ण के सुन्दर मुख का दर्शन किया है। उन्ही नयनो को तुम मूँदने के लिए कहते हो यह तुम्हारा कौन सा ज्ञान है? भाव यह है कि नयन मूँदकर जिस ज्योति का साक्षात्कार योगी करता है उसका दर्शन हमने खुले नेत्रो से कर लिया है फिर इन नयनो को मूँदने से क्या लाभ? यदि तुम्हारा मतलव यह है कि योगी के अन्तर्मानस मे आविर्भूत ज्योतिः इस दर्शन से कही भिन्न है तब तो हम उसे दूर से ही नमस्कार करती हैं। अरे भ्रमर! जिसमे प्यारे प्राणनाथ नन्दनन्दन नहीं हैं उससे हमे क्या लेना है? योग के महत्व को गाकर तुम अपने गौरव को खो रहे हो। अरे! तुम उनकी बाते करो कि जिनके तुम मित्र हो और जिनकी हम दासियाँ हैं। इसी से आपके मित्र धर्म और हमारे दासधर्म का निर्वाह हो सकेगा। उनकी कथा ही हमारे प्राणो की सजीवनी है। जब तुम निर्गुण के अन्यान्य गुणो का कथन करते हो तो हमारे प्राणो के प्राण उन कृष्ण को कहाँ छिपाए रखते हो?

५५ यदि 'तुष्यतुदुर्जनः' न्याय से योग को उत्तम भी मान लिया जाय तो भी वह पराया होने से हमारे लिए उपादेय नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

अरे भ्रमर! पराई बातों को चलाने मे क्या रक्खा है? इन बातो को इस ब्रज मे कोई नहीं कहता और न कोई सुनता है। तुम्हारी अभी नई कीर्ति समाप्त हुई जाती है। पुरानी जमी हुई कीर्ति को जाने मे विलम्ब लगता है पर

तुम्हारी कीर्ति नई है जाने मे देर नहीं लगेगी। इसलिए अपनी इज़्ज़त-आबरू का ख्याल करके इस निर्गुण गाथा को अकथित ही रक्खो तो अच्छा है। कुल की व्यथा उन्हे कैसे भूल गई ? जरा अपने मुख से ये समाचार सुनाओ। हाय ! उन्होने अच्छा सग किया जिससे यह भलीमति उन्हें उपजी है। अच्छी भलो से उनकी पहिचान हुई ? आपकी यह सुन्दर राम कहानी हमें कड़वी सी लगती है और आपका यह मधुर उपदेश हमारे हृदयो मे खारापन उत्पन्न कर रहा है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा ! आपके मित्र कृष्ण भगवान के यहाँ भी क्या अजब अन्धेर है कि बहे जाने वालो से उतराई का तकाजा किया जाता है। विरह से पीड़ितों को निर्गुण को अपनाकर योग करने के लिए कहना ऐसा ही बेतुका हे जैसे बहे जाने वालों से मल्लाहों का उतराई का तकाजा।

अलंकार—लोकोक्ति।

५६ उपदेश के लिए पहली बात आचरण और फिर उपदेश होना जरूरी है। बिना आचरण के उपदेश में प्रभाव नहीं होता। श्रोता लोग 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचरहि ते नरन घनेरे' कहके आचरण हीन उपदेशको की बात उड़ा दिया करते हैं। प्रस्तुत पद मे गोपियो ने भी उद्धव की 'कथनी और तथा करनी और' की ओर सकेत करके उनके उपदेश की निस्सारता का प्रतिपादन किया है। वे कहती हैं—

अरे ! ब्रज में इसकी शिक्षा सुनने वाला कौन है। जिसकी रहन-सहन उसके कथन से मेल नहीं खाती। भ्रमर ! हमारे थोड़े से ही कथन से सब समझ जाओ। स्वयं तो अपने हृदय को उनके चरणो के मधुरूप अमृत में सराबोर किए रहते हैं और हमसे कहते हैं कि उसे तुम नीरस समझ कर निर्गुण की साधना से आनन्द प्राप्त करो। प्राप्त को छोड़कर नई दिशा में परिश्रम करके आनन्द उठाने की आयोजना नया कुआ खोदकर स्नान करने के समान है। आप जैसे वैरागी हैं वह तो हम जानते हैं। धानो का गाव प्यौर से मालूम हो जाता है। ज्ञान विषयानन्द से विरक्त होता है। पर आपसे ज्ञानी उनके चरणामृत का आनन्द लेते हुए भी हमे वैराग्य का उपदेश दे रहे हैं। (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा) चलो बस यो ही ढकी मुंदी रहने

दो। ज्यादा खोलके कहने से व्यंग्य का रस चला जाता इसलिए बस इतना ही कहना पर्याप्त है। गूलर को फोड़ने से कीड़े ही उड़ते हैं जिससे घृणा हो जाती है। इसलिए हम नहीं चाहते कि कुठला धोए और कीच उठावे।

अलंकार—लोकोक्ति।

५७ श्रीकृष्ण की सदेश पत्रिका को बार-बार पढ़कर राधा और उसकी सखिया अपने हृदय से लगाती हैं। वे आनन्द विभोर होके सब कुछ भूल जाती हैं। मनोदशा चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर आँखों द्वारा बहती हुई अपनी कहानी स्वय कहती है। वे बीते दिनो की याद करके कभी २ उद्धव से भी अपने हृदयोद्गार कहती हैं। सूरदास कहते हैं—

श्यामसुन्दर के अक्षरो को देख के वे उसे बार बार छाती से लगाती हैं। नयनाश्रुओ से मिलकर कागज की स्याही ने श्याम की पत्री को श्याम बना दिया। उन्होने कहा—जब गिरिधर कृष्ण गोकुल रहते थे तग कभी हमे गरम हवा भी न छू पाई। अरे उद्धव! हम उन दिनो की आनन्द कहानी तुमने क्या कहें जब कि हम बशी की मधुर ध्वनि सुनके चल देती थी। सदा रास रस मे मन्दोमत्त होके हरि के प्यार के कारण हम किसी को भी कुछ नहीं समझती थीं। हाय! हमारे वालापन के साथी प्राणनाथ! न जाने अब तुम कब मिलोगे।

अलंकार—तद्गुण और गिरिधर मे परिकरांकुर है।

५८ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारा तो भाग्य ही ऐसा है जिसमें निर्बाध भोग लिखा ही नहीं है। बे कहती हैं—हे अलि! हमें तो सयोग और वियोग दोनो दशाओं मे एक ही फल मिलता है। जब कृष्ण यहाँ थे तब उनके अधरामृत की लेनेहारी मुरली थी और अब वियोगावस्था मे कुबरी सौत उनके अधरामृत की अधिकारिणी है। तुम इन विरहिणियों को योग सिखलाके अङ्गो मे भभूत लगाने की कह रहे हो। भला बताओ! तुमने इन विरहिणियो में से किसी को माग में फूल गुहाए देखा है। ये बेचारी प्रोषित पतिका होने से केशप्रसाधन से कोसो दूर हैं। तुम इन्हें कानो में योगियो की सी मुद्रा मेखला और जटाओ के धारण करने का उपदेश दे रहे हो और कहते हो साधुजनोचित दण्ड धारण करने को सो क्या तुमने यहाँ किसी को चमकते

हुए कर्णफूल और तनसुख की मुलायम झीनी साड़ी पहने देखा है। ये तो सब वियोगिनिया हैं शृङ्गार से कोसो दूर रात दिन मनमोहन का ध्यान करके उन्हें ही रटती रहती हैं। इसलिए यहा आपके उपदेश व्यर्थ हैं, उनकी कद्र नहीं है। आप शीघ्र ही मथुरा पधारें जहा योग के पारखी आपके योग-ज्ञान की कद्र करेंगे। (जो जिसके गुण प्रकर्ष को पहचानता है वही उसका आदर करता है और जो वस्तु के गुणो की परख नही जानता वह तो उसका निरादर ही करेगा मिलाइए—नवेत्तियो यस्य गुण प्रकर्ष स तस्य निन्दा सतत करोति। यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताँ परित्यज्य बिभर्त्ति गुंजाम्)। इस ब्रज में रात-दिन सदा ही वह मनोहर रूप अब भी चारो ओर जागता दिखाई देता है। (सूर कहते है गोपियों ने कहा) उद्धव ! तुम सूप रखके व्यर्थ मे ही जोग को लिए घर २ फेरी लगाके 'लेहु लेहु' चिल्ला रहे हो। ग्रामों मे सूप बेचने वाले प्रायः 'सूप लेलो सूप' की आवाज लगाते हुए फेरी लगाया करते हैं। अन्य किराने की सौदाएँ बेचने वाले भी चिल्लाते हुए ग्राहकों सूप से छान फटक कर अपना माल लेने का अनुरोध किया करते हैं। इसी प्रकार मानो उद्धव भी अपने योग को छान फटक कर लेने के लिए ग्राहकों को आमन्त्रित कर रहे हैं। सो गोपियो के कथनानुसार व्यर्थ ही है। क्योकि ब्रज मे उसकी आवश्यकता नहीं है।

५९ गोपियाँ उद्धव पर आक्षेप करती हुई कहती हैं—

देखो हमारी बात का बुरा न मानना। हमें कठोर बात कहते कुछ डरसा लग रहा है। बात यह है कि बिना विवेक के प्रतिष्ठा जाती रहती है। (विवेक शून्य पुरुषो की मानमर्यादा नष्ट हो जाती है।) यदि कोई किसी के जले पर कुछ कहता है वह पीछे पश्चात्ताप करता है। पीड़ित अपनी पीड़ा के लिए सहानुभूति के दो शब्द चाहता है ज्ञान और धर्म का उपदेश नहीं। हम कृष्ण से प्रेम करती हैं यह कोई पाप नहीं है। आप भी तो कृष्ण के नाम के प्रताप से खाते कमाते हो उसी से तुम्हे आवभगत मिलती है आपका भी तो मन दिन रात श्रीकृष्ण के चरणो मे ही सदा दिन रात लगा रहता है। इसी के प्रसाद से आज आप सब कुछ हैं फिर भी श्याम से योग अधिक है यह तुम

से किस प्रकार कहा जाता है। क्या यह तुम्हारी कृतघ्नता और एहसान फ़रामोशी नहीं है?

६० गोपियो का मन सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी श्रीकृष्ण से ही अनुरक्त होता है इसलिए वे उद्धव से कहती हें :—

हे मधुप! अपनी शक्ति भर हम मन को बड़ा कड़ा करती हैं। अनेक कथाए कह २ के अपने मन को प्रबोध देती हैं फिर भी वह नन्दनन्दन के बिना नही रहता। कानो में उनका सन्देश नही पड़ने देती। आँसुओं को भी दबाती और मुँह से कुछ अन्य ही बाते चलाती हैं ताकि मन को उधर जाने की प्रोत्साहना न मिले। चित्त मे बहुत प्रकार से कड़ाई करके भी हम देखती हैं कि मन सब कुछ छोड़ कर यही निर्धारित करता है कि चाहे करोड़ों स्वर्गों के सुख की कल्पना करके प्रस्तुत की जावे पर फिर भी वह हरि के सामीप्य की समता नहीं कर सकती। सागर मे चलने वाली नाव का पच्छी जिस प्रकार चक्कर काटकर थक कर फिर नाव पर ही आ लगता है इसी प्रकार यह हमारा मन इधर-उधर भटक कर श्रीकृष्ण की भक्ति और प्रेम में ही आश्रय पाता है उन्हीं के गुण गाता है। पश्चात् मिलन की एक ऐसी कामना जागृत होती है जिससे हमारा हृदय लगातार जलता है बस अन्तस् के फटने भर की ही कसर रह जाती है (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा) यह व्यथा मरण दायक है फिर भी हम प्रयत्न पूर्वक शरीर को छोड़ती नहीं इसलिए कि कमसे कम एक बार भेंट हो जावे तो अच्छा है।

अलङ्कार—उपमा।

६१ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारा प्रेम केवल वासना की तृप्ति के लिए नहीं अपितु उसमे सतीत्व की दृढ़ और निश्चल भावना है। कली-कली का रस चखने वाले बहुरंगी इस प्रेम के महत्व को नहीं समझ सकते। जिन्हें इस पवित्र प्रेम की अनुभूति नहीं हुई वे इसकी कल्पना भी नही कर सकते। इसी तात्पर्य को स्फुट करती हुई वे कहती हैं :—

अरे मदहोश भौंरे! तू चुप रह। हमारे कृष्ण चिरायु हों हम निगु'ण लेके क्या करेगी। तुम पराग की कीचड़ में यहाँ तक लौटते हो कि तन मन की सुध भुला देते हो बार-बार शराब की सुड़कें (घूट) भरते हो जिसके बु

स्वाद का न वर्णन करना ही अच्छा है। ऐसी हेय अवस्था में भी तुम कुब्जा से रगरेलियाँ करते हो और वे इस हालत मे भी तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं। चाहे कोई भी काले रग का (भ्रमर) क्यों न आवे वे सभी के लिए समान रूप से ही तय्यार रहते हैं किसी से मना नही करते करे भी क्यो वे तो रग-रेलियो के भूखे हैं। तुम सोचते होगे हम वैसी ही है जैसे कि तुम्हारे कुसुम। आज सगुण को अपनाती हैं और कल निगु'ण के गीत गाती हैं। परन्तु भ्रमर! याद रहे हम गगा गए गगादास और जमुना गए जमुनादास लोगो मे नही हैं। हम तो अपना सर्वस्व पुण्डरीकाक्ष श्यामसुन्दर को जो नन्द और यशोदा के प्यारे है उन्हे अर्पण कर चुकी हैं। अब हमारे पास हमारा रह ही क्या गया है जिसे हम दूसरे को भेट कर सके। जो कुछ भी तन मन था वह कृष्णार्पण हो गया अब निगु'ण हेतु हम पर कुछ रहा ही नही।

विशेष—सरक शब्द का अर्थ आचार्य शुक्ल जी ने मद्यपात्र किया है पर वह इतना ठीक नहीं बैठता जितना कि सुड़कना (घूट मारना) अर्थ ठीक बैठता है अतएव हमने यही अर्थ अपनाया है—कवि का 'सरक मदिरा की' कहने का यही अभिप्राय मालूम होता है।

६२ सगुण भक्ति का मार्ग सरल है। उसे मिटाके निगु'ण की आराधना का द्राविड़ी प्राणॉयाम मात्र है। 'जो बनिआवे सहज मे ताही मे चितदेय' की उक्ति के अनुसार सरल मार्ग से उद्देश्य प्राप्ति करना ही बुद्धिमत्ता है। इसलिये गोपियाँ उद्धव से कहती हैं।

मधुप! तुम सीधी सड़क को क्यो बन्द कर रहे हो। अरे! सुनो तुम अपने निगु'ण के काँटो से सगुण की सडक को क्यो रोक रहे हो। मालूम होता है कि तुम्हे कुब्जा ने सिखा पढ़ा के भेजा है। ताकि उसका काटा सदा के लिए निकल जाय। या शायद कही घनश्याम ने ही यह कहला भेजा हो। हमसे अपना पिड छुड़ाने के लिए हो सकता है कि उन्होने ही कहला भेजा हो। कुछ भी हो और किसी ने भी कहा हो पर वेद पुराण और स्मृति ग्रन्थ सभी छान डालो और देखो कि कहीं युवतियों के लिए भी किसी ने योग का विधान लिखा है? (खेलने खाने की उम्र में योग का विधान बेतुका है।

लिए कुमार संभव में कालिदास ने भी कहा है—किमित्यपास्या भरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धक शोभिवल्कलम्। वद प्रदोषे स्फुट चन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते") । स्मृतियों में न लिखा होने पर भी वह तुम्हारे इष्टदेव कृष्ण का आदेश होने से मान्य होना चाहिए। इसका उत्तर देती हुई गोपिकाएं कह रही हैं—भला उसका क्या विश्वास जो दूध और छाछ की उत्कृष्टता और निकृष्टता का विमर्श नहीं कर सकता। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) अरे यह क्यों नहीं कहते कि मूल तो अक्रूर वसूल ले गए और उद्धव जी अब ब्याज वसूलने आए हैं। अक्रूर हमारे प्रेम के आलम्बन को मथुरा लिवा गए और आप उनकी स्मृति भी यहाँ से ले जाने पर उतारू हैं।

विशेष—निर्गुन कंटक—रूपक : राजपंथ—रूपकातिशयोक्ति ।

मूर—ऊधो में लोकोक्ति अलङ्कार है।

६३ गोपियाँ कहती हैं कि सभी लोग बातों से समझाना चाहते हैं। वास्तविक उपचार को कोई नहीं बताता। वे कहती हैं :—

सभी लोग बातों से ही समझाते हैं। किन्तु मिलन का वह उपाय कोई नहीं बताता जिससे कि कृष्ण मिल सकें। यद्यपि हम अनेक यत्न कर २ थक गई और वे फिर भी अन्यत्र ही रम रहे हैं तथापि हमारे हठी नेत्रों को कुछ और देखना भाता ही नहीं। यह जिह्वा भी रात दिन प्राण वल्लभ को छोड़कर और किसी का गुणगान करना पसन्द नहीं करती। सूर की गोपियाँ कहती हैं—उद्धव! प्रेम के नाते तुम चाहे जो भी हम से कहो पर हम अपने अंग प्रत्यंग से उन्हीं में सदा रत हैं।

६४ ज्ञात को छोड़कर अज्ञात के प्रति आग्रह करना मूर्खता है। हमारा सगुण ज्ञात है और तुम्हारा निर्गुण अज्ञात। गोपियां उद्धव से कहती हैं कि यदि तुम्हारा निर्गुण भी हमारे सगुण की भांति ज्ञात है तो बताओ कि—

वह निर्गुण कहां रहता है? मधुकर! तुम खुशी से हमें यह समझा दो हम तुमसे शपथ पूर्वक पूछती हैं। हँसी नहीं करती। उसके मां बाप का नाम बताओ तथा उसकी स्त्री और दासी का भी पता बताओ। उसका रंग रूप बताकर उसके इष्ट रसों का भी वर्णन करो ताकि हम उसे जानकर अपने भली भांति परिचित प्रियतम से उसकी तुलना कर सकें। पर देख सब सच-सच

बताना यदि मन में कुछ भी कपट रक्खा तो अपना किया पावेगा। सूर कहते हैं कि उद्धव उनकी ये बातें सुनकर वञ्चित सा अवाक् रह गया। उसकी बुद्धि ही कूँच कर गई। कर भी क्यो न जाती? भला जिसे उपनिषद् नेति-नेति कह कर 'न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनः' आदि द्वारा बताती हैं तथा वेद जिसका 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' कहके गान करते हैं उसके रूप रग आदि का वर्णन करना आकाश कमल लाने के समान असभव ही है।

६५ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जब मन में प्रियतम बसे हैं फिर भला और के लिए वहाँ ठौर कहाँ है? रामानुजीय दर्शन और न्याय दर्शन के अनुसार मन अणु है फिर वहाँ इतनी जगह कहाँ कि दूसरा भी टिकाया जा सके उस हृदय मे नन्दनन्दन के रहते हुए दूसरा और किस प्रकार लाया जा सकता है? यदि कहो कि जब कभी वे कहीं चले जाते हो तभी के लिए दूसरे को वहाँ शरण दे दो तो इसके लिए गोपियाँ कहती हैं—वह श्यामली मूर्ति क्षण भर के लिए भी इधर-उधर नहीं जाती। दिन मे जागते समय, चलते-फिरते, देखते-निहारते सभी व्यापारों मे तथा रात्रि मे सोते या स्वप्न देखने मे वे सदा ही अपना अड्डा इस हृदय में जमाये रहते हैं, क्षणभर के लिए भी इधर-उधर नहीं जाते। अतएव किसी भी समय हमारे हृदय मे स्थान रिक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि ऐसा है तो अल्पार्ध को निकाल के बहुमूल्य को स्थान देना चाहिए। यह ठीक है कि उद्धव अनेकानेक लौकिक लाभ दिखाके अपनी निर्गुण गाथाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। परन्तु यह निर्गुण इतना गहन और व्यापक है कि हमारे अणु मन मे नहीं समा सकता है। भला कही गागर में सागर समा सकता है? यही नहीं, हमारे घट (अन्तःकरण) प्रेम से लबालब भरे हैं फिर भला निर्गुण का अंशतः भी ग्रहण किस प्रकार किया जा सकता है? (प्रियतम छवि नयनन बसी पर छवि कहाँ समाय? भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय)। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हमारे नेत्र तो ऐसे रूप के पान करने के लिए सदा तृषित रहते हैं। इस रूप में हमे श्याम शरीर के कमल-मुख पर मृदुल-हास देखने को मिलता है।

६६ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि आपका निर्गुणोपदेश ब्रज मे सर्वथा निरवकाश है। यहाँ पर सभी श्याम में अनुरक्त हैं और आपके निर्गुण और

उसके फल मोक्ष की चाह नहीं रखते। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि आप इस निर्गुण को किसी अनुरूप स्थान मे ले जाके सिखावे। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

यहाँ सभी ब्रज के लोग श्याम का व्रत धारण किए हुए हैं। श्याम को छोड़के अन्य को कोई नही जानता। दूसरे की कथा कहना और सुनना यहाँ व्यभिचार के नाम से पुकारा जाता है। तुमने यह जोग की पोटली यहाँ आके क्यो उतारी? अनुरूप गाहक के अभाव में इसका यहाँ लाना उपहासास्पद है। इसे तो तुम थोड़ी दूर और चलकर काशी जाकर बेचते तो तुम्हारी प्रतिष्ठा होती इस योग की सौदा की वहाँ अच्छी कीमत लग जाती। वहाँ योग के गुणज्ञ तुम्हारी और तुम्हारे संदेश की कद्र करते। यहाँ हम लोग तो इस सदेश को सुनना भी नहीं पसंद करते। हमारी यह मण्डली बड़ी अनोखी ही है। आपकी नीरस योग गाथा मे वह आकर्षण कहा जिससे कि हम हरि के प्रेम रग से भरी हुई रगरेलियो को भुला सकें। हमे उनके साथ सरस कामकेलियो के करने में जो आनन्द आता है वह भला मुक्ति में कहाँ सम्भव है। इसलिये हमारे यहाँ मुक्ति की भी पूँछ नहीं—यो चारो पदार्थ धर्म अर्थ काम और मोक्ष हरि क्रीड़ा के कामुको को अनायास ही प्राप्त है। (मिलाइए—जो जन तुम्हारे पद कमल के असल मधु को जानते है। वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते। मैथिलीशरणगुप्त)। सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा। अरे उद्धव! यहाँ तो हम अपने स्वामी मन मोहन के बाके रूप पर निछावर है।

६७ निर्गुणोपासना और योग का सदेश लाने वाले उद्धव पर घोर अविश्वास प्रकट करती हुई वे इस प्रकार तीखे व्यग्य कहती हैं कि जिसके बाद कोई भी हयादार फिर जुबान नहीं खोल सकता। इस प्रकार के व्यंग्य से आहत होके फिर किसकी ताब है कि कुछ कह सके। यहाँ उद्धव को बनाने के लिये एक गोपी दूसरी से कहती है। अरे पगली!! तू उद्धव से कह क्या रही है? अरी तू जानती नहीं कि ये कृष्ण के वे ही मित्र है जिनके बारे मे हम बहुत कुछ सुना करते थे। अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के आधार पर यहाँ यह तात्पर्य है कि ये कृष्ण के मित्र नही है ये तो बनते है यह भाव अग्रिम पंक्तियों से और

भी स्पष्ट हो जाता है। वह गोपी फिर कहती है—अरी तू क्या कह रही है ? मैं तो अभी तक सच माने बैठी थी कि ये अवश्य ही कृष्ण के मित्र है और उन्हीं के आदेशानुसार यहा योग का सन्देश लाए हैं। अरे नहीं यह बात नहीं। क्या तुमने यह कथन नही सुना जो भले होते है वे सदा भला काम ही करते हैं, और कपटी कुटिलता की खान होते हैं। बस इतने से ही सब भाप लो। दूसरी गोपी कहने लगी, हाय अम्मारी ! तो ये हजरत कृष्ण के मित्र नहीं हैं यह मैने अपने मन में निश्चय पूर्वक जान लिया। यह योग का सन्देश इनकी मनगढ़न्त कल्पना है वरना कहा तो उन रसिक शिरोमणि का रास के प्रति अनन्य अनुराग और कहा यह जोग जप आदि नीरस क्रियाएँ ! ये इतने आकाश पाताल के अन्तर की बातें करते है। सचमुच तुम सभी काहे को पागल हो गई हो जो इस पर विश्वास कर बैठी हो।

६८ कृष्ण के द्वारा योग की शिक्षा गोपियों को ऐसी बेतुकी लगती है कि वे उद्धव पर घोर अविश्वास प्रकट करती हुई उनके अन्वर्थतः दूत होने की घोषणा कर देती हैं। (इस पद मे दूत शब्द का अर्थ—सन्देश-हर हीन होकर अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाकर कहने हारे—दूता चवाव करने वाले के लिए प्रयोग किया है) कोई गोपी कहती है कि—

सचमुच ऐसे ही आदमियो को दूत कहा जाता है। (ऐसे दूत जो सदेश के तिल को अपनी कल्पना से बढ़ाकर ताड़ कर देतें हैं।) परन्तु मुझे एक आश्चर्य है कि इसमें इन्हें क्या मिलता है ? ये अपना प्रभाव जमाने के लिए दूसरों को खरी खोटी सुनाते हैं जिससे सुनने वालो का हृदय संतप्त होता है। सन्तप्त होके वे लोग फिर इनकी खूब पगड़ी उछालते हैं। इनकी इज्जत धूल में मिल जाती है। जरा इन्हे देखो तो सोहबत का इन पर वह प्रभाव पड़ा कि युवतियों को ज्ञान पढ़ाने चल दिए। स्वय तो सर्वाङ्ग निर्लज्ज हैं उस पर तुर्रा यह कि गाए चले जारहे हैं। वाहरी वेहयाई। कहीं चुपचाप मुँह छिपाके बैठना चाहिए था। (सूर कहते है कि गोपियों ने कहा) ये अपने मुँह मियां मिट्ठू बनते हैं। ऐसे निर्लज्ज हैं कि लाख हराओ पर वे अपनी विजय गाथा ही गाते रहते हैं। (सम्भवतः ऐसे लोगों के लिए ही किसी ने कहा है—लज्जामेका परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्)।

६६ बार-बार मना करने पर भी जब उद्धव वही योग गाथा गाते रहे तो गोपिया उनके कठमुँहे पन पर एकदम झल्लां उठीं और कहने लगीं :—

जो भी प्रकृति जिसके बाट पड़ी है वह उसे कभी नही छोड़ता। करोड़ो उपाय क्यो न करो पर कुत्ते की पूंछ कभी कोई सीधी नहीं कर सकता। कौआ जनमते ही भच्छ अर्थात् अभक्ष्य कभी नहीं छोड़ता। काले कम्बल को कितना ही क्यों न धोया जाय पर उसका रग नहीं छूटता। भले ही पेट न भरे पर साप का स्वभाव हैं कि वह काट ही खायगा। सूर की गोपिया कहती हैं कि चाहे जो कुछ भी क्यो न हो उद्धव को इसकी चिन्ता नहीं। पर वे अकारण दूसरो को दुःख देने की अपनी आदत छोड़ नहीं सकते।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलकार।

७० गोपिया उद्धव के मुंह से योग का उपदेश सुनके कहती हैं कि वे उनके निर्गुण को एक शर्त्त पर अपना सकती हैं और वह शर्त्त यह है—वे कहती हैं कि—

उद्धव ! हम तब तुम्हारी बात मान सकती हैं कि यदि तुम अपने ब्रह्म को मुकुट और पीताम्बर वेषधारी के रूप मे दिखादो।यदि ऐसा कर दो तो हम तुम्हे विश्वास दिलाती हैं कि हम सब गोपिया भले ही हमें गाली क्यो न लगे हम उसको स्वीकार कर लेगीं। (पर यह हो कैसे ? यह तो ऐसी ही बात है कि न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगी।) परन्तु तुम तो हमे एक भूत सी भयानक चीज बता रहे हो। दियासलाई लगादो ऐसे भयावह ब्रह्म मे। इसके उपदेश से हम श्याम को कैसे भुला सकेगी ? जो अपने मुख से सुधा का आचमन करते रहे हैं वे जहर के अधिकारी कैसे हो सकते हैं ? (सूर की गोपियाँ कहती हैं) प्रभु कृष्ण के अङ्ग-अङ्ग पर ब्रज-नारियाँ रीझ चुकी हैं। उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर है और तुम भयावह भूत सा ब्रह्म दिखाके उन्हें भुलवाना चाहते हो। यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

७१ योग का सँदेशा और निर्गुण का उपदेश कितना भयावह है इसी का प्रकारान्तर से वर्णन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

उद्धव ! तुम्हारी यही बात (योगोपदेश) सुनते ही हमारे नेत्र यहाँ से भाग निकले। तुम्हारे मुख से बात सुनते ही रोते हुए ये यहाँ से ढुलक-ढुलक

के चलते बने। तुम्हारे कृष्ण सदृश वर्ण से ललचाके ये तुम्हारी ओर ललके थे परन्तु पास आने पर जो तुमने व्यथा दी है उससे अब ये सभी कालों को देखके चकपका जाते हैं। कृष्ण के समान श्याम घटाओ को भी देखकर ये नेत्र अब इधर-उधर छिपते फिरते हैं। इस सब का कारण आप है। जब से आप ब्रज में पधारे हैं तभी से ये काले रग से इतने डर गये हैं कि हमारे प्रबोध देने पर भी हमारा विश्वास नहीं करते। यदि ये हमारा कहना मान जाते तो शायद हम आपकी बतायी चाल पर भी चलतीं। पर क्या करे ये तो इस आशका से पहले ही कहीं जाकर छिप रहे। तात्पर्य यह है कि निर्गुण को अपनाकर ये आँखे कैसे तृप्त हो सकेगीं। ये तो उसी रूप को देखने के लिए मचलती हैं। अन्त में सूर की गोपियो ने उद्धव से कहा कि वास्तव मे तुम्हारे सदेश की अवहेलना का कारण हमारी आँखो का सत्याग्रह है। पर तुम तो बड़े चन्ट ठहरे तुम क्यों यह मानने लगे। तुम तो हमारे ही सिर अपराध रक्खोगे और वहाँ जाके यही शिकायत करोगे कि गोपियो ने तुम्हारा सन्देश नही माना।

७२ उद्धव द्वारा निर्गुण उपदेश को सुनके गोपियाँ उनसे कहने लगीं कि— उद्धव! हमने नेत्रो से जो वह रूप देखा तो ससार मे अपना जन्म सफल समझा। वे सुन्दर नेत्र जो चंचल खजनो के समान हमारे मन को अनुरक्त करते थे। वे नेत्र जो कमल, मृगनयन और मछली के समान शोभाशाली थे जो श्वेत, लाल और काले रंग के थे वे सुन्दर नयन हमारे मन को भला कैसे न आकर्षित करते? फिर कानो मे सुन्दर रत्न जटित कुण्डल जिनकी आकर्षक आभा निर्मल कपोलो पर झलकती हुई मोहक प्रतीत होती थी। मानो सूर्य का प्रतिबिम्ब मुकुट मे पड़कर इस छबि को ढूँढ निकालने का यत्न करता हो। अधरो पर मुरली टेड़ी भौंहें तथा त्रिभगी मुद्रा में उनका खड़ा होना। वक्षस्थल पर विराजमान मोतियो की माला नील पर्वत से धरणी की ओर गिरती हुई गगा के समान सुशोभित थी। अन्यवेश का वर्णन करना व्यर्थ है। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर केसर की रचना सुशोभित थी। यह शोभा अवर्णनीय है इसकी अच्छी अनुभूति तो देखने से ही हो सकती है क्योंकि कहने वाली वाणी तथा देखने वाले और ही अर्थात् नेत्र हैं। अन्य की अनुभूति

अन्य द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती । (मिलाइये—गिरा अनयन नयन बिनु बानी—तुलसी)

विशेष—इस पद मे रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमाअलकार हैं ।

७३ उद्धव द्वारा निर्गुण सन्देश सुनके गोपिया कहती हैं कि जब हमारे नयनो में नन्द नन्दन बसे हैं और हम उन्हीं के ध्यान में सदा रत रहती हैं तो निर्गुण के लिए कहा स्थान है ? हमारे लिए निर्गुण एक तुच्छ वस्तु होने से उपादेय नहीं है । आप अपने बहुमूल्य निर्गुण को उचित पारखियों के पास ले जाइए 'जो जाको गुन जानही सो तहि आदर देत ! कोकिल अम्बहि लेत है काक निबोरी हेत ।' इस लिए आपको यह निर्गुणोपदेश ज्ञानियो के सामने रखना चाहिए । इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई गोपिया उद्धव से कहती है—

नयनन—आन,

उद्धव हमारे नेत्रों मे सदा नंदनन्दन का ध्यान समाया रहता है । उसके सिवा कोई हमारी आखो मे जॅचता ही नहीं । इसलिये आप यह उपदेश वहा दे जहा लोग निर्गुण के ज्ञान से परिचित हो । बात यह है कि गुण की कद्र उस गुण के पारखी ही कर सकते हैं, जो उसकी परख नही जानते उनके लिए तो वे दोष ही हो जाते हैं । (किसी ने उचित ही कहा है—गुणा गुण ज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुण प्राप्य भवन्ति दोषाः)

उद्धव ! एक तो हम अभाग्यवश वैसे ही अपनी हस्त रेखाओ पर उनके आने की अवधि के दिन सॅभालती और अपनी किस्मत पर कुरकुराया करती हैं और उस पर भी आप ये सदातन वियोग की कड़ुवी बाते कहके हमारे प्राणो को मारे डालते हैं । परन्तु कोई कुछ भी करे हमारा अवलम्ब तो वही रूप माधुरी है जिसमे हमने करोड़ो चन्द्रो के प्रकाश से चमचमाते मुखके और करोड़ो सूर्यो से जगमगाते हुए आभूषणो के दर्शन किए हैं । करोड़ो काम देवो के समान उस छबि पर हमने अपने को निछावर करके उन्हें समर्पित कर चुकी हैं । जिनकी भ्रू लताएँ धनुष की शोभावाली है । जिनकी दर्शनशक्ति उस भ्रू लता-धनुष का आकर्षण है जो अपने बाँके कमल से कोमल नयनो से कटाक्ष रूपी कोमल बाणो की वर्षा करता है । कौन है ऐसा जो उन बाणो से आहत होके आत्मसमर्पण न करदे । उन प्रियतम की शंख सी गर्दन में रत्नो के

हार और वक्षस्थल पर सरस सुन्दर कौस्तुभमणि सुशोभित है। जिनके प्रलम्ब भुज घुटनो तक पहुंचने वाले अत्यन्त रमणीय हैं और जिनके पाणिपद पीयूष पाथोधि हैं। उनके सर्वाङ्ग सुन्दर श्यामल शरीर पर पीताम्बर से जो शोभा उमॅगती है उसका वर्णन करने की किसमे शक्ति है? ऐसा प्रतीत होता है कि मानो श्याम मेघो मे कान्तिमयी सौदामिनी नृत्य कर रही हो। ऐसे सर्वाङ्ग-सुन्दर गोपाल से आलिङ्गन कर हमने उनके अधरासव का पान किया है। (सूर कहते हैं कि गोपियाॅ कहती है) ऐसे रूप माधुर्य को छोड़कर क्या कोई हमारा अन्य रक्षक हो सकता है। इसलिए हम वियोग की विपदा में अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य की शरण नहीं जा सकतीं। वही पीतपटधारी हमारी इस विपद मे भी रक्षा करेगा।

विशेष—उपमा (चन्द्र–भान) प्रतीप (कोटिमन्मथ–दान) साग रूपक (भृकुटि—बान) वाचकलुप्तोपमा (कम्बुग्रीबा), वस्तूत्प्रेक्षा (मनहु —दुतिमान) इस प्रकार इस पद मे पॉच अलंकार हैं।

७४ पात्रापात्र विवेक से शून्य उद्धव के बारबार योग का उपदेश देने पर गोपियाॅ उनकी खिल्ली उड़ा रही हैं। पहली दो पक्तियो का अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य लक्षणामूल ध्वनि के आधार पर बिलकुल विपरीत हो जायगा यही ध्वनि सूर के काव्य का प्राण है। गोपियाॅ आपस में कहती हैं—देन—अमी को।—

उद्धव साहब अच्छी सलाह देने आए है। चलोरी! चतुर सखियो! सबकी सब चलके सत्सग लाभ की कीर्ति के अधिकारी होले। अरे! यह सूक्ष्म सुन्दर वस्त्र और आभूषण छोड़ने की कहते है तथा सबको गेहादि सभी के स्नेह को तिलांजलि देने के लिए बता रहे हैं। इनके उपदेशानुसार सिर पर जटाएँ सारे शरीर पर भस्म लगाना होगा और करना होगा नीरस निर्गुण का ध्यान! मेरे विचार से तो युवतियो को वैराग्य सिखा के सबके स्नेह से विमुख होने का उपदेश देके यही उनके पतियों को वियोग दुःख देते फिरते है। उनको आहत करने के लिए ये शर-समूह अपनाये हुए है इन्ही शर-समूहों के पिजड़े में आवृत होने से ये काले हो रहे हैं। अब तो ये इतने पक्के हो गये हैं कि इनके हृदय में तनिक भी शका और सकोच नहीं होता। बात यह है कि जिसको

जन्म से जो स्वभाव पड़ जाता है उसके लिए वह कभी भले-बुरे का विचार एवं शंका नहीं करता। (सूर कहते है) जैसे साँप काटता है तो उस काटने से क्या उसके मुँह मे अमृत थोड़े ही पड़ जाता है पर उसका जन्म-जात स्वभाव है इसी से वह काटता है।

विशेष—उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त अलकार है।

७५ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि पहले तो कृष्ण ने ऐसी गाढ़ी प्रीति की और अब निर्गुण को अपनाके भुला देने के लिए सदेश भेज रहे हैं। यह तो निष्ठुरता है। वे कहती हैं—

उद्धव! कृष्ण का पूर्व प्रगाढ़ प्रेम और यह विस्मरण का सन्देश सुनके हमें बड़ा पछतावा हो रहा है। प्रेम करके पीछे गले मे कटार भोकने के समान कठोर व्यवहार कर रहे हैं। यह कार्य तो उनका वैसा ही है जैसा कि एक शिकारी का जो पहले तो कपट पूर्वक अन्न कण चुगाता है और बाद में जीवों के लुब्ध हो जाता है तो उनके साथ अभद्र व्यवहार करता हैं। अब हमको मालूम हुआ कि कृष्ण ने सचमुच हमारे लिए शिकारी का बाना धारण करके हमें भूल भुलइयों में डाल के हमारा सर्वनाश करने का विचार किया था। इसीलिए उन्होने मधुर मुरली का लासा तीलियो में लगाके मयूर पख के चँदौओ की टट्टी में इन निर्दोष पक्षियो को फँसा लिया। पश्चात् अपनी बाकी चितवन की आग जलादी जिसके सन्ताप से हम अपने शरीर को संभाल न सकीं। हमें उस आग में छटपटाते छोड के स्वय मधुवन को चलते बने और हमारी खैर खबर भी न ली। सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि उद्धव! फिर हमारे मनोरथ के कल्पतरु मे कोई शाखा (अंकुर) न निकला। वह मनोरथ मिट्टी में मिल गया।

विशेष—उपमा और साँगरूपक अलकार है।

७६ निर्गुण—सदेश अत्यन्त दाहक है अतएव कृष्ण द्वारा भेजी हुई संदेश पत्रिका कोई पढ़ना नही चाहती। प्रथम तो जब केवल चिट्ठी की बात सुनी तब गोपियाँ बहुत उमगित हुईं और हुलस के चिट्ठी लेके छाती से लगाली जैसा कि पहले—'निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती' में वर्णन किया है। परन्तु जब उसके लेख को जान गईं तब वही पत्री दाहक हो

गई। इसी भाव को प्रकट करता हुआ कि कवि कहता है—कि गोपियो ने कहा—ब्रज मे इस सन्देश पत्रिका को कोई नहीं पढता। अनन्त-वियोग-दायिनी कठोर छुरी सी तीखी इस पत्री को नन्द नन्दन बार बार क्यो लिख-लिख भेजते हैं। क्या आपको नहीं मालूम कि यह चिट्ठी का कागज बड़ा कोमल हैं इसके सन्देश की व्यथा से हमारे नेत्र छलछला आए हैं और हाथ की उँगलियां सन्तप्त हैं। यदि हम सन्तप्त उँगलियों से छूलेगी तो यह छूते ही जल जायगी और साश्रु नेत्रो से देखते ही यह भीग जावेगी। भावार्थ यह है कि इसका छूना और देखना भी असह्य है। उद्धव ! सुनो कठोर कामशरो का प्रहार करने वाले इन अक्षरो को समझ कर हम क्या करेंगे ? हम तो श्याम सुन्दर को देखे ही जीती हैं। हम उन्हीं के चरणो मे दिन रात रत रहती हैं।

विशेष—लुप्तोपमा अलंकार है। नयन सजल—विलोकत भीजै में अक्रम दोष है।

७७ अनधिकारी लोगों को निर्गुण और योग का पाठ पढ़ना उपहासास्पद है। इसीलिए गोपियाँ उनकी इस वे तुकी बात पर व्यग्य करती हुई कहती हैं—

उद्धव तुमने मुक्ति को मन्दे बाजार मे लाके उतारा है। तुम सगुन विचार के नही चले वरना लाभ जरूर होता परन्तु यहाँ आने से तो तुम्हे टोटा ही टोटा है। तुम्हारे पास पूँजी भी जो कुछ है सो यही है इसमें टोटा पड़ा कि दिवाला निकला। इसलिये लाभ चाहो तो इसे कही और जाके बेचो शायद अच्छे गाहक मिले और तुम्हारी सौदा लाभ से बिक जाय। अथवा तुम इसे वहाँ जाके बेचो जहाँ वह विष बेल कुब्जा है वह इसके गुणों को भली प्रकार जानती हैं और इसीलिए वह इसकी परख कर सकेगी। तुन्हें भी लाभ होगा।। हम पास ही रहने वाले वृन्दावन और उसकी रगरेलियो को ठुकरा के इसके लिये क्यो जान खपाये ? इसलिए तुम क्यों इसे सिर पर रखके घर घर फेरी लगा रहे हो। सूरदास कहते हैं कि वे सब सखियाँ एक मत हो कर उद्धव से कहने लगी कि हमारा अद्भुत छविशाली गिरधारी जो आज कल मथुरा मे हैं हमने उनसे गलवाहीं डाल के आलिंगन किया है। उस आनन्द के सम्मुख हम और किसी सुख को कुछ नहीं समझती। इसलिए हमारे लिये

यह आपका 'निर्गुण मत फीको' ही है।

७८ योग का उपदेश उसकी साधना को सुनके गोपियो ने उद्धव से कहा कि श्रीकृष्ण के सगुण रूप से प्रेम करके ही आपकी सम्पूर्ण योग साधनाएँ पूरी कर चुकीं फिर उन्हीं साधनो का उपदेश हमारे लिये पिष्टपेषण मात्र है। वे कहती है—

अरे मधुप ! हमने गोकुलनाथ नन्दनन्दन की आराधना की है। हमने मनसा वाचा कर्मणा हरि से ही पतिव्रत धर्म निभा के प्रेम के योग और तप को सिद्ध किया है। आपकी योग आराधना के समान ही हमने भी प्रेम योग साधना में माता-पिता और अन्य हितैषियो के प्रेम से नाता तोड़कर तथा सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले वैदिक पंथ को छोड़ के सासारिक सुख दुःखो की भ्रान्ति को पार कर लिया है। अर्थात् जिस प्रकार योगी द्वन्द्वातीत हो जाता है ठीक उसी प्रकार हम भी सुख दुख की भ्रान्ति से मुक्त हो चुकी है। योगी जिस प्रकार द्वन्द्वातीत होके 'सम दुःख सुखः स्वस्थः' होता है उसी प्रकार माना पमानायो स्तुल्यः, भी होता है। गोपियाँ पहली अवस्था की सिद्धि बताके दूसरी मानापमान में तुल्यता की सिद्धि भी प्रेम योग द्वारा वर्णन करती हैं। उनका कहना है कि हमने प्रेम योगद्वारा चचल मन को स्थिर कर लिया है इसी लिए हम मान एवं अपमान दोनो से परम सतुष्ट रहती है। संकोच का आसन बना के कुलशील प्राणायाम सिद्ध किया है। संसार की सम्पूर्ण हितकारी क्रियाओं का परित्याग कर सच्ची सन्यासि-जनोचित निःस्पृहता प्राप्त कर ली है (काम्याना कर्मणा न्यास सन्यास कवयोविदुः—गीता)। प्रेम योग के साथ २ हमने प्रेम तप को भी सिद्ध किया है योगियो की पचाग्नि तप की साधना हमने भी की है। हमारे प्रेम तप की साधना में चतुर्दिक की अग्नि का कार्य-चारो ओर विद्यमान हमारे बड़े जनो की लज्जा ने सन्पन्न किया और पचमाग्नि तप मे सूर्य के स्थान में हमारे प्रेम तप की साधना में वियोग जन्य अदर्शन है। जहाँ तहाँ चलते हुए उपहासो का धूम्र पीके निरन्तर कानो में आने वाले अपयश की हम अवहेलना करते रहे हैं। अपने शरीर को भुला के (भौतिक स्थिति को निमग्न करके) एक अखण्ड निश्चल समाधि में रत रही हैं। इस समाधि में हमें अपने इष्टदेव की प्रत्येक अङ्ग माधुरी के दर्शन हुए हैं। ये दर्शन हमने

निर्निमेष नेत्रो से इतनी तन्मयता से किए कि अब रात और दिन सोते और जागते वही अद्भुत ज्योति आभासित रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम लोग युज्जान अवस्था को पार करके अब युक्तावस्था को सिद्ध कर चुकीं हैं। अतएव हमारे लिए अब साधनो को अपनाना कोई अर्थ नहीं रखता। दो प्रकार के योगियो के लिये देखिए—युक्तस्य सर्वदा भान चिन्तारुहक्कृतोऽपरः न्याय सिद्धान्त युक्तावली। हमने उनकी भ्रू भग पर ही त्रिकुटी साधना तथा उनके नयनो को अपने निर्निमेष नेत्रो देख के नाटक साधना मे सिद्ध प्राप्ति कर ली है। उनके स्मित प्रकाश से युक्त कुण्डल और मुख रूप सूर्य चन्द्र से अनुराग करके अधरो पर रक्खी हुई मुरली के मधुर स्वर रूपी योगियो के अनहद शब्द का हमने अनवरत श्रवण किया है। उनकी राग भरी वचनावली का रस ही हमारे लिए सदा आनन्ददायी मोक्ष सुख रहा है। हमारे प्रेम योग का मत्र कामदेव का मन्त्र है जिसमें सर्वदा हरि ही का ज्ञान एव ध्यान रहता है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से पूछा कि अलि! बताओ फिर हम किसी और को गुरु क्यो बनाए और तुम्हारे इस फीके मत को यहाँ—कौन सुने।

विशेष—सांग रूपक अलंकार है।

७६ बार-बार मना करने पर भी जब उद्धव निर्गुण का उपदेश देने से विरत न हुए तो गोपिया झल्ला उठी और 'आरत कहा न करै कुकरमू' के अनुसार अपने पूजनीय अतिथि को कथनीय एव अकथनीय सभी प्रकार की बातें सुनाने लगीं। उन्होंने कहा :—

उद्धव! जो कुछ भी तुम्हारे दिल में हो उसे कहने मे कसर न रक्खो। बेधड़क होके कहते जाओ। तुम्हे तो मालूम पड़ता है किसी ने जादू टोना करके पागल बना दिया है फिर क्या है— दिन भर बकते रहो। तुमने जिसके विषय में जो बात कही है उसे यहा किसी ने स्वीकार भी किया है? तुम्हारा कथन तो यहा के लोगो ने इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। वह आँधी मे उड़ने वाले भूसे के समान हवा मे उड़ गया उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिला। अब तुम व्यर्थ श्रम क्यो कर रहे हो। तुम्हारा कथन यहा अरण्यरोदन के समान निरर्थक है। खेद तो यह है कि तुम ऐसे गए बीते हो कि इतने पर भी तो नहीं समझते।

विशेष—इस पर मे लोकोक्ति अलकार है।

८० निरवधिक वियोग दुःख के बीज वपन करने वाले योग का उपदेश उद्धव के मुख से सुनकर गोपिया अत्यन्त निराश हुईं जिनके कृष्ण वर्ण को देखकर वे उनसे मिलने के लिए उमगित हुई थीं उनके हाथो अपनी ऐसी दुर्दशा देख के वे बड़ी व्यथित हुई। एकाएक उन्हे कृष्ण वर्ण सुफलकसुत अक्रूर की याद आगई जो कृष्ण को नद ब्रज से मथुरा ले गए थे। वे उद्धव को लज्जित करने के लिए आपस मे कहने लगीं—

अच्छा अब हमे अच्छी तरह मालूम पड़ गया। हाय जिनसे बड़ी आशा हमारे हृदय मे लगी थी वह भी बात खुल गई अर्थात् देख लिया कि वह आशा भी निराशा मे परिणत होगई। अरे सखि! वे अक्रूर और ये उद्धव दोनो की खूब जोड़ी मिली है। उन्होने तो तब हमारे साथ वह किया जिसे अपने मुँह से कहना भी बुरा है अर्थात् वे यहा से श्रीकृष्ण को मथुरा ले गए। अब ये हजरत हमसे सगुण छीन करके मिट्टी पकड़ा रहे हैं। ऊपर से मृदुल पर मन में वज्र के समान कठोर ये लोग देखने मे ही भोले लगते हैं। उस मथुरा से जो जो आते हैं वे सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। (बिलकुल एक से हैं।) सूर कहते हैं कि एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखि! मै तो तुमसे पहले से ही कहती रही हूँ कि काले कभी अपने सगे नहीं होते। चाहे अपना सिर उतार के उनके समर्पण कर दो पर वे तो अपनी घात मे ही रहते हैं।

८१ गोपिया उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारा यह योग का उपदेश हमारे दृढ प्रेम को शिथिल नहीं कर सकता। तुम यह योग जिनसे लाए हो उन्हीं को वापिस दे देना। अगर कभी जरूरत होगी तो किसी आते-जाते के हाथ मगा लेंगी। इसका यह भाव कदापि नहीं है कि गोपियो को कभी उसकी आवश्यकता पड़ेगी ही और वे उसे मँगावेंगी हीं। भाव यही है कि इसकी हमे जरूरत नहीं है। शिष्टतापूर्ण भाषा से इसी व्यग्यार्थ को तीव्र करने का प्रयत्न किया गया है। गोपिया उद्धव से कहती हैं—

अच्छा तो मधुकर! तुम्हारी समझ से हमारा और श्रीकृष्ण का सम्बन्ध योग तक ही रहा है। क्यो बेकार मे बकबक करते हो यहा से दूर क्यो नहीं हो जाते। जब हम लोगो ने साथ-साथ आसव पान किया था तब तुम कहा

चले गये थे ? आज जो तुम निर्गुण का उपदेश देने आए हो सो हमे नहीं अच्छा लगता। तुम अपनी लचरदलीलो से हमारे दृढ़ अन्तस में निर्गुण का सिक्का जमाना चाहते हो सो यह तुम्हारा प्रयत्न ऐसा ही है जैसा कि कच्चे धागे से किसी के कलेवर को बाँधने या कमल तन्तुओ से मदोन्मत्त हाथी को पकड़ने का प्रयत्न। (व्याल बाल मृणालतन्तुभिरसौ रोद्धु समुज्जृम्भते, छेत्तु वज्र मणीन् शिरीष कुसुम प्रान्तेन सनह्यते। इत्यादि भर्तृहरि) यह योग जहाँ से लाए हो उन्ही सूर के प्रभु श्रीकृष्ण को यह सौप देना। जब कभी जरूरत पड़ेगी हम किसी आते जाते के हाथ मगा लेगी।

विशेष—इस पद्य में उपमालकार है।

८२ निराकारोपासना के लिए उद्धव का विशेष आग्रह देखकर सखियाँ राधा से व्यग्य करके उद्धव को बनाने की चेष्टा कर रही हैं। गोपियो मे से कोई एक राधा से कह रही है कि यह श्रीकृष्ण के सगुण रूप की आराधना के निषेध का अर्थ यह है कि मोहन ने अपना रूप मागा है। जब वे यहाँ ब्रज मे रहते थे तब तुमने उनके रूप को पी लिया है और उस रूप के अभाव मे वे निराकार हो गए हैं। राधा इसका उत्तर देती हुई कहती है कि हे सखि! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वे मोहन भी तो मेरे शुद्ध एव विशद मन को अपनी बाकी चितवन से चुरा ले गए हैं। आज ये उद्धव हाथो में सूप लेके खूब फटक कर हमसे बदला लेने के लिए चल दिए और उनका रूप लेके हमारी गई हुई चीज हमें न सौप करके हमे कुए मे ढकेल रहे हैं। तात्पर्य यह है कि वे आत्मसात् किए हुए मोहन के रूप को खूब फटक के उसके कण-कण को हमसे वापिस ले जाने का आग्रह कर रहे है। पर जब हम इनसे कहती हैं कि भाई हमारी चीज ? तो ये उसकी परवाह ही नहीं करते। इनके लेखे हम कुए में गिरें। सूर कहते हैं कि राधा ने सखियो से कहा कि उद्धव को यह विदित होना चाहिए कि लेन देन में सब बरावर है इसमे राजा और रक का भेद नहीं चल सकता। इसलिए दुनिया का सौदा साफ है इस हाथ दे इस हाथ ले। सो हमारे मन को वापिस करो और उनका रूप हमसे ले जाओ।

विशेष—पद्य मे परिवृत्ति अलकार है।

८३ विपत्ति के समय अपने प्रियजनो से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार न पाके

मनुष्य और भी अधिक व्यथित होता है। वह अपने समान अन्य लोगो की याद करके तथा उसके प्रियजनो के व्यवहार की अपने लोगो के व्यवहार की तुलना करने लगता है। इसीलिए जब अवधि बीतने पर भी कृष्ण न आए तो गोपिया खिन्न हुई। कृष्ण के सदेशहर उद्धव को देखकर कुछ धीरज बॉधा परन्तु उनके द्वारा योग का सन्देश पाके उनका विषाद चरम सीमा को पहुंच गया। वे सोचने लगीं कि वियोग व्यथा को दूर करने का प्रयत्न तो एक ओर रहा हाय ! सहानुभूति के दो शब्द भी न कहला भेजे। उल्टे यह निर्गुणाराधना का उपदेश ! इसी समय उन्हे वियोगापन्न सीता की याद हो आई और वे सीता के वियोग दुःख को मिटाने के लिए किए गए राम के प्रयत्नों की याद कर कर वे उनकी कृष्ण से तुलना करने लग गई। उन्होने कहा—

हमारे प्रियतम कृष्ण से तो सीता का पति राम कहीं अच्छा था। जो सीता की वियोग व्यथा को मिटाने के लिए भाई लक्ष्मण को साथ लेके बन-बन भटकते फिरे और समुद्र को एक बीता के समान अनायास ही पार करके लका पहुँचे। वहाँ रावण को मार के लङ्का को जलवा के मिट्टी में मिला दिया इतने कठिन प्रयत्नो को करके उन्होंने निशाचरो से भयभीत सीता का मुँह देखकर ही चैन लिया। प्रेमी से मिलने के लिए प्रियतम के ये कठिन आयोजन कितने सराहनीय हैं। उन्होने कृष्ण के समान किसी उद्धव संघाती दूत से गीता और शास्त्रो के ज्ञान का सन्देशा भेजकर सीता को और भी अधिक व्यथित करने की कभी नहीं सोची। अब यह सन्देश पाकर उस कुब्जारसिक का क्या भरोसा किया जा सकता है ? जब प्रेम का नशा चढ़ा था तब इस निठुरता का विचार कहा किया था करती भी कैसे जब पीते हैं तब होश ही कहाँ रहता है ? अब जो किया उसे भोगना ही है। चलो यह कौन कम है कि उन्होने सदेश मे योग लिख भेजा है। न मानो तो सखि ! यह उनका पत्र देख लो। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा अरे भाई ! वह माखन का लोभी प्रेम की परिपाटी को क्या जान सकता है। वे तो भाई उन लोगो मे से हैं जिनका सिद्धान्त है—मरते जो हैं उन्हे मरजाने दो, घी की चुपड़ी खाने दो। उन्हें तो दुनियाँ के मजे से काम है।

८४ प्रेमी अपने प्रियतम से प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। प्रेम

को शिथिल करने वाली योग और वैराग्य की भावनाएँ भी उसे प्रियतम की उदासीनता ही प्रतीत होती है। इसीलिए उद्धव से कृष्ण का योग-सदेशा पाकर गोपियों ने समझ लिया कि वे उनसे उदासीन है। इस निठुर व्यापार से व्यथित होके वे अपने किए पर आठ-आठ आँसू बहाकर पश्चात्ताप करती हुई कहती है—

हमने जो निठुर से प्रेम किया तो उसका परिणाम दुःख होना ही चाहिए। हमें आज मालूम पड़ा कि उनका वह प्रारम्भिक प्रगाढ़ प्रेम हमारे मन को चुरा लेने के लिए एक छल मात्र था। हाय! उन्होंने प्रेम करके हमे ऐसा आनन्दित किया मानो काल के मुँह से निकाल लिया हो परन्तु आज इस सत वियोग का निर्देश करके मानो फिर हमे मौत के मुँह मे ढकेल रहे है। आज उनके उस व्यवहार से मेरे अन्तस को जो दुःख हुआ है वह वर्णनातीत है उसे तो कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है। उनके कच्चे प्रेम के लिए मै व्यर्थ ही रो-रो के आँखे लाल करती रही। सूर कहते है कि इन पश्चात्ताप की बातो को करके वह राधा उद्धव के आगे बुक्का फाड़के रो पड़ी।

विशेष—लोकोक्ति अलंकार है।

८५ प्रियतम के अभाव में सभी ससार सूना लगता है। संसार की रमणीयता मन की रमणीयता पर निर्भर है। अगर मन चगा तो कठौती मे गगा प्रवाहित होती है और यदि मन चगा नही तो गगा मे भी गगा नहीं दिखाई देती। आनन्दकन्द नन्दनन्दन के सहवास मे जो चीजे सुखदाई थीं वे ही उनके विरह में काटखाने को दौड़ती हैं। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती है—

गोपाल के विरह में ये कुंज भी बैरी हो रहे है। उनके सहवास से लताएँ अत्यन्त शीतल लगती थी पर अब उनके विरह में ये कठोर लपटों के समूह बन गई हैं। कलकलनादिनी कालिन्दी का बहना अब व्यर्थ है पक्षियों का कलरव व्यर्थ है; कमलो का विकास और उन पर भ्रमरों का गुंजन सब निरर्थक है। शीतल पवन, कपूर एवं सजीवनी चन्द्र-किरणे सूर्य के समान भूँजे डालती है। उद्धव! माधव से कहना कि विरह छुरी हमें काट के हमारा

अङ्ग भङ्ग कर रही है। सूर के प्रभु श्याम की प्रतीक्षा करते-करते आँखे गुंजा के समान लाल हो गई है।

(विरह मे आनन्ददायी शीतल पदार्थ भी सन्तापदायी हो जाते है ऐसी कवि लोकप्रसिद्ध है। इस प्रकारके वर्णन भारतीय सस्कृत और हिन्दी साहित्य मे भरे पड़े है। विरहाग्नि का प्रचण्ड रूप जायसी ने बड़ा व्यापक दिखाया है मिलाइए—अस पर जरा विरह कर गठा, मेघ साम भए धूम जो उठा। दाढा राहु केतु भा दाधा, सूरुज जरा चाँद जरि आधा। औ सब नखत तराई जरईं टूटहिं लूक, धरनि महँ परहीं। विरह साँस तस निकसै झारा, दहि-दहि परवत होहि अँगारा। इत्यादि)।

देखिए सस्कृत मे एक विरहणी की उक्ति—सम्प्रत्य योग्य स्थिति रेष देषः करा हिमाशोरपि तापयन्ति। पुनश्च श्रीहर्ष की दमयन्ती का कथन—अयि विधुं परिपृच्छ गुरो· कुतः स्फुटमशिक्षयत दाहवदान्यता इत्यादि।

विशेष—इस पद्य मे अतिशयोक्ति एव उपमालकार है।

८६ कृष्ण के सन्देश पाकर उन्हे प्रति-सन्देश भेजना शिष्टाचार का तकाजा है। परन्तु निर्मोही को प्रेम का प्रति-सन्देश भेजना कहाँ तक उचित होगा और वह भी ऐसे के हाथो सन्देश भेजना जो विरक्त है, प्रेम पन्थ से विमुख है। जिसके पास वियोग से छटपटाती हुई अबलाओ के लिए सहानुभूति के दो शब्द तक नहीं है। ऐसे हृदय-शून्य व्यक्ति के लिए प्रेम-सन्देश निरर्थक ही है गोपियाँ पहले ही कह चुकी हैं 'तुमसो प्रेम कथा को कहिबो मनहु काटिबो घास।' वस्तुतः गोपियों के सन्मुख प्रेम प्रति-सन्देश भेजने में उद्धव की शुष्क मुद्रा ही सबसे बड़ी विभीषिका है। इसीलिए वे कहती हैं—

अब सन्देश किस प्रकार से कहूँ। प्रियतम की निष्ठुरता जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब उसके लिए प्रेम का प्रतिसन्देश देना निरर्थक हो जाता है। इस निष्ठुर सन्देश को सुनकर यह शरीर चलबसना चाहता है पर मेरे नेत्र अभी तक इस पर पहरा लगाये रहे हैं कि कहीं भाग न जावें। परन्तु इस प्रकार मार-मार कर मैरा एर कब तक बिठाया जा सकता है। इन आँखों से इसका पहरा कब तक लगाया जा सकता है। हृदय मे प्रति सन्देश देने के हेतु विचार उठते हैं। बड़ी कठिनाई से मैं उन्हें सोच-सोच के उठाती हूँ परन्तु

कथन के लिए मुँह मे आते ही वे उद्धव को देखते ही विलीन हो जाते हैं और मै तथा विचार सब विश्रृङ्खल एव विलीन हो जाते हैं। ऐ चतुर सखियो अब तो कुछ ऐसी शिक्षा दो कि जिससे प्रियतम से भेट हो सके। मेरी राय मे तो सूर के प्रभु श्याम के सखा उद्धव से भी निहोरे करके ही निर्वाह होना सम्भव है। भले ही ये हृदयहीन हो तो भी हमारा काम तो तभी बन सकता है जब कि हम इनसे अनुनय-विनय करे। अपनी गरज हो तो गधे को भी बाप कहना पड़ता है नीति भी यही कहती है—स्कन्धेनापिवहेच्छत्रु कालमासाद्य-बुद्धिमान्। इसलिए आओ उद्धव से ही विनती करें ताकि वे किसी तरकीब से प्रियतम से भेट करादे।

८७ उद्धव के चले जाने के अनन्तर फिर ब्रज मे कृष्ण की कोई खबर नहीं मिली। अब गोपियो की आशा बिलकुल टूट गई। वे निरवलम्ब होके दुःख मग्न हो गईं। ऐसी अवस्था मे राधा ने उन्हे बुला भेजने की एक युक्ति निकाली। उसने पथिको से कहा कि मथुरा जाके उनके द्वार पर यह पुकारकर कह देना कि यमुना मे कालिया नाग फिर से आ गया है। सम्भव है कि उनके अन्तस् मे लोकरक्षक भावना उद्दीप्त हो जाय और वे फिर से उसके वध के लिए पधारें तो इस बहाने से उनसे भेट हो जायगी। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई विरहोन्मत्त राधा कह रही हैः—

ब्रज मे फिर से वह बात भी न चली। तब उद्धव उनका सदेश लाये तो थे चाहे वह हमारा अनभिमत ही रहा हो! इसीलिए वह कहती है कि वह जो एक बार पुण्डरीकाक्ष कृष्ण ने उद्धव के हाथ चिट्ठी पठवाई थी वह भी चर्चा ब्रज मे फिर न सुनी गई। हे राहगीर! मै निहोरे करती हू कि तुम मथुरा मे जहाँ कृष्ण रहते हैं जाओ और उनके द्वार पर खड़े होकर पुकार लगाना कि यमुना मे काली नाग फिर आ गया है। पर क्या कृष्ण इस खबर को सुन के आ जावेंगे? क्यो नहीं? उनकी पुरातन प्रीति को देख के तो यही भरोसा होता है। हम पर जब उन यदुनाथ की कृपा थी उस समय की उनकी अनेक अभिलाषाओ से प्रतिपालित प्रेम का क्या ठिकाना था। यदि वनस्थली में विहार करते समय फूलों को देखकर हम उनके लिये मनचलाती तो वे ऊँचे पेड़ो पर लटकते हुए फूलो को हमे गोद में लेके डाली झुका के ले देते थे।

पर सखि ! हमारे जैसी उनके छोटी बड़ी न जाने कितनी हैं। (मिलाइये— साहब तुम जनि बीसरौ लाख लोग मिलि जाहि हमसे तुमको बहुत हैं तुमसे हमको नाहि)। सूर कहते हैं कि इस प्रकार से पुराने प्रेम का स्मरण करके राधा का हृदय व्यथित हो गया।

८८ मानव हृदय का स्वभाव हैं कि विरोधी परिस्थितियो के उपस्थित होने पर वह अपने प्रियतम के लिए और भी अधिक उत्कंठित हो जाता है। इसी कारण उद्धव के मुख से निर्गुण का सदेश सुनके गोपियो के हृदय मे प्रेम और भी तीव्र हो उठा और उनके नेत्र उस सर्वाङ्ग सुन्दर कृष्ण को देखने के लिए अकुलाने लगे। अतएव गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश से व्यथित होके कहने लगी—

उद्धव बताओ कि इन अपने नेत्रो को कैसे रोकूँ ? तुम्हारी बाते सुनके गुणो की याद करके ये उन्हें देखने की उत्कण्ठा से और भी अधिक सन्तप्त होते हैं। हमारे ये नेत्र उनके सुन्दर मुखचन्द्र के लिए कुमुद और चकोर हैं जिन्होंने उसे देख के ही विकसित होना सीखा है और जो उसी ओर एकटक देखकर ही सन्तुष्ट होते हैं। ये नेत्र उन सजल घनश्याम की रूप माधुरी के लिए परम प्यासे मयूर और चातक हैं और उनके चरण कमलो पर अटल अनुराग करनहारे ये भ्रमर और हस है। यदि उनका गतिविलास (लीला-पूर्णगमन) जल प्रवाह है तो ये हमारे नेत्र उसी जल प्रवाह के मीन है। उनके उरस्थल पर चमकते हुये मणि प्रभाकर के लिए ये नेत्र चक्रवाक है और उनकी मुरली माधुरी के लिये मृग है। इस प्रकार हमारे नेत्र उनकी प्रत्यङ्ग व्यापिनी रूप माधुरी पर मुग्ध रहे है और उस रूप के अभाव मे सारा ससार सूना प्रतीत होता है। सूर के प्रभु श्री नन्दन का सर्वाङ्ग सौन्दर्य सर्वथा अद्वितीय है। यदि वह अद्‌भुत शोभावान् न होता तो ससार का सौन्दर्य उनके अभाव मे फीका न पड़ता। वस्तुतः वही सौन्दर्य तो सासारिक सौन्दर्य का मूल है उसके सन्निधान से ही ससार सुन्दर है उसके हट जाने पर इस असार संसार में रमणीयता कहाँ ?

विशेष—इस पद्य में रूपक अलंकार है।

८६ प्रेमी के वियोग में मानव हृदय का उन्माद इतना बढ़ जाता है कि उसका विवेक जाता रहता है। इस उन्माद दशा में वियोगियों के विविध व्यापारो मे से एक यह भी है कि वे अपने प्रेमी से अपने हृदय की दशा का निवेदन करे। चिट्ठियाँ लिखे और सदेश भेजें। गोपियो ने भी कृष्ण के वियोग मे यही किया। अनेक सदेश भेजे परन्तु कोई भी उत्तर न मिला। इस उत्तर न मिलने का कारण कल्पित करती हुई गोपियाँ कह रही हैं—

हमारे सदेशो से तो मथुरा के कुए भर गए। जो भी राहगीर यहाँ से एक बार निकले उन्होने फिर आने का नाम नहीं लिया। ऐसा मालूम होता है कि कृष्ण ने उन्हें समझा बुझा दिया जिससे कि वे फिर इधर नहीं आए या शायद वे बीच मे ही मर गए। नन्द नन्दन अपने तो भेजते नहीं हमारे भी समेट कर अपने ही पास रख लिए। कृष्ण के पत्र न लिखने के कारण बताती हुई वे कहती हैं कि शायद वहाँ (मथुरा मे) स्याही भी चुक गई, कागज भी गल गये और दावानल से शरकड़े भी जल के भस्म हो गए फिर बताओ चिट्ठी कैसे लिखी जाय विशेष कर तब जब कि नेत्रो के पलक कपाट भी बद हो रहे हैं। साधनों का अभाव लिखने मे बाधा उपस्थित कर रहा है।

विशेष—अतिशयोक्ति एव रूपक अलकार है।

६० प्रेमी का हृदय अपने इष्ट से प्रेम पाकर ही पुलकित होता है और यदि उसे प्रेम नहीं मिलता तो वह अस्वस्थ रहके अन्त मे प्रेमी से विमुख हो जाता है। यह है प्रेम की सामान्य परिपाटी परन्तु दृढ़ प्रेम एक तरफ होके भी प्रेमी से अवहेलना होने पर भी अटल रहता है। गोपियो का प्रेम जैसा कि वे इस पद में वर्णन करती हैं दूसरे प्रकार का अर्थात् दृढ़ प्रेम है। अतएव उनके इष्ट श्रीकृष्ण से प्रेम न पाकर भी वे निरुत्साह नही होतीं वे उद्धव से कहती हैं—

हे मधुकर ! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण से प्रेम कैसा ? प्रेम तो वहीं सफल है जहाँ वह दोनों ओर समान हो। परन्तु यहा तो प्रेम एक ओर से ही है। हमारे प्रियतम की रीति तो जल सूरज और बादल की सी है। उनसे प्रेम करने वाले मछली कमल और चातक की आयु प्रेम साधना मे ही बीत जाती है और उन्हें प्रियतम का प्यार नहीं मिल पाता। मीन को जल के विछोह में

तड़पते ही रहना होता है और कमल सूर्य के अभाव मे जलकर ही दम लेता है। चातक भी जन्म भर पिउपिउ की पुकार करके भी अपने प्रियतम जलधर के प्रेम से बंचित रहता है। किन्तु हे शठ ! प्रेम की यह पद्धति तो नहीं है ! यह सब जानते हुए भी वे अपने प्रेम में अटल रहते हैं। उनके आग्रहपूर्ण मन इस प्रेम का ऐसा निर्वाह करते हैं कि प्रियतम का प्यार पाने मे पराजित होकर भी वे विजयी हैं ! जिस प्रकार युद्धभूमि में सच्चे योद्धा सिर कटने के बाद भी केवल धड़ से ही लड़ते हुए प्रतिष्ठा पाते हैं, मर जाने पर भी विजय प्रशस्ति के अधिकारी होते हैं उसी प्रकार मीनादि प्रेम भी अपने अटल सकल्प के कारण पराजित होके भी विजयी हैं। सूर कहते हैं क्यो न हो प्रेम का पारावार प्रियतम से की हुई अवहेलनाओ की बालू की दीवालो के समान अकिंचित्कर विचारो के बन्धन मे थोड़े ही रह सकता है। सच्चा प्रेम प्रियतम से पुरस्कार न पाकर आराधना का आदर्श बन जाता है जो भक्ति पथ के पथिको के लिए प्रज्वलित दीपशिखा का काम करता है।

विशेष—इस पद्य में क्रमालकार और निदर्शनालकार हैं।

६१ अपने प्रियतम के प्रेम में दृढ़ता न देख के गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हुई ब्रज मे रहते हुए तो कृष्ण ने प्रेम दिखाया पर मथुरा जाके बिलकुल निर्मोही होगए। यथार्थ में लालन पालन करने वाले नन्द यशोदा से नाता तोड़ के अपने माँ बाप से जा मिले यह भला प्रेम की पुजारिनो को कैसे सह्य होता। इसलिए कृष्ण की तोताचश्मी पर फबतियाँ कसती हुई गोपियाँ उद्धव से कहने लगी—

अरे भाई उद्धव ! मथुरावासियो का कौन विश्वास करे। उनके मन में कुछ और तथा मुख (वचन) मे कुछ और होता है। कुछ सोचते और कुछ करते हैं। बना-बना के चिठ्ठियाँ लिख भेजते हैं। केवल स्वार्थ के मित्र हैं। जिस प्रकार कौआ बड़े चाव से चुग्गा खिला के कोयल के बच्चो को पालता है पर बसन्त आने पर वे कू-कू करके अपने कोकिल-कुल में जा मिलते हैं ठीक इसी प्रकार नन्द-यशोदा ने चाव से कृष्ण को पाला पर जब यौवन का बसन्त आया और वे किसी योग्य हुए तो अपने माँ-बाप के यहाँ चले गए। ऐसे ही जैसे भौरा पुष्पो का अशेष गन्ध ले के चलता बनता है फिर लौट के उनकी

खैर खबर भी नहीं लेता ऐसा ही कृष्ण ने हमारे (गोपियो के) साथ किया। मनमानी रँगरेलियाँ करके फिर बात भी न पूछी। सूर कहते हैं कि वस्तुतः श्याम शरीर वालो से मन लगाने से पश्चात्ताप को छोड़कर और कुछ नहीं हाथ लगता। इसलिए उनसे सम्बन्ध न रखना ही श्रेयस्कर है।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

६२ श्रीकृष्ण से आये हुए योग के सन्देश को सुनके गोपियाँ बड़ी विस्मित हुई। उनके मन को खुद हथियाके अब योग बताना कितना बेतुका है। योग चित्त-वृत्ति के निरोध का नाम है परन्तु जब उस वृत्ति का आश्रय ही कृष्ण ने ले लिया फिर योग का आधान कहाँ और कैसे हो सकता है। आधान छीनकर आधेय सौंपना सरासर अनीति है। इसीलिए गोपियाँ आपस में कह रही हैं—

कृष्णजी राजनीति (कूटनीति) के पण्डित हो गए हैं। तुमने उद्धव की बात कुछ समझी ? इसका कुछ निष्कर्ष निकाल पाया ? उनकी बातो को समझना सहज नही है। एक तो वे यो ही बड़े चतुर थे फिर प्रेम-प्रदर्शन में तो उनकी चतुरता और भी अधिक निखर आई है। उनकी प्रतिभा का महत्त्व तो तभी समझ लिया जब उन्होने युवतियो के लिए योग भेजा। सखी ! सचमुच पुराने लोग बड़े भले होते हैं जो बेचारे पराई भलाई करने के लिए सब कुछ छोड़के इधर-उधर भटकते फिरते हैं। भावार्थ यह है कि ये जो उद्धव सब काम-धन्धा छोड़के इधर-उधर घूम रहे हैं सो इन्हे भला न समझो ये जरूर कोई दाव-पेच है। खैर जो हो पर यह तो देखो कि उन्होंने चलते समय जो हमारे चित्त चुराये थे वे तो हम आज तक न लौटा सकीं फिर इस योगका आधान कहाँ है ? हमारे मनोवृत्ति के आधार को हमसे छीन योग अपनाने को कहा जा रहा है यह कितना बड़ा अन्याय है। परन्तु जो दूसरो को मोहित करके नीति-रीति को तिलाजलि देने पर विवश कर देते है। उनसे नीति-पालन की आशा करना व्यर्थ है। परन्तु कूटनीति को राजनीति कहना अनीति है। सूर कहते है कि राजनीति तो राजधर्म के पालन को कहते है और राज-धर्म का यथार्थतः पालन वहीं सम्भव है जहाँ कि प्रजा नहीं सताई जाती। मिलाइये—राजा प्रकृति रञ्जनात्—कालिदास)।

६३ सन्देश मे हम सहानुभूति के दो शब्दोंकी आशा कर रही थी पर मिला

नीरस योग। इससे सात्वना के स्थान पर सन्ताप बढ़ रहा है। इसीलिए कोई गोपी उद्धव के सन्मुख अपनी सखियो से कह रही है—

इस योग के ज्ञान को सुनते ही मेरे शरीर में आगी व्याप गई, यो पहले ही हम विरहानल से सुलग रही थीं कि उद्धव ने योग का उपदेश दे के उसे और फूँक दिया फिर क्या था झॅड फूट निकली। हमारे लिए योग और कुब्जा के लिए भोग। कैसी बेतुकी बात है। उद्धव! तुम्हें शिक्षा किसने दी? सिंह भी हाथी के मॉस को छोड़कर घास खाता है यह अनहोनी (केहरि तृन नहि चरि सके जो व्रत करे पचास) बात सुनरही है। तात्पर्य यह है कि अटल सगुणव्रती है निर्गुण को कभी नहीं अपना सकती। विधि के विधान की बात ही दूसरी है जो उसने निश्चित करके लिखदी वह कर्म रेखा कैसे मिट सकती है? यह वियोग संकट और कृष्ण की उदासीनता सब कुछ मिलकर भी हमें अपने व्रत से विचलित नहीं कर सकता। यो रूप-रग से यही अनुमान होता है कि भगवान् ने हमारे लिए भोग और कुब्जा के लिए योग बनाया होगा पर कृष्ण की कृपा विधि के लेख का भी विरोध कर सकती है उनकी जिस पर भी कृपा हो जाय उसे सभी सिद्धियॉ हो जाती हैं। वस्तुतः सिद्धि भगवत् की कृपा पर निर्भर है लौकिक या अलौकिक उपकरणो पर नहीं।

विशेष—अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है।

६४ जब उद्धव ने योग का सदेश गोपियो के सन्मुख रक्खा तो वे बड़ी विस्मित हुईं। सोचने लगीं आखिर यह अघटनीय घटना घटी कैसे? उन्होने अनेक मनगढ़न्त कल्पनाओ के आधार पर उसके कारणो का अन्दाज लगाया। उन्हीं कारणो में से कुछ कारण इस पद में वर्णन किए गए हैं। गोपियॉ उद्धव से कहती हैं—

तुम्हारे ज्ञानोपदेश का रहस्य अब खुला! वह हमारा प्रियतम राजकीय गति विधियो को क्या जाने आखिर बेचारा अहीर ही तो ठहरा। हम सबको अज्ञानी जान के वे विचारे छोड़ गए और हमें शायद ज्ञानी बनाने के लिए यह ज्ञान भिजवा दिया और उन्हें अकेली कुब्जा ही ज्ञानी दिखाई दी इसलिए उसी से मन लगा बैठे। पर वास्तव मे बात ऐसी नहीं थी यह उन्हें बाद में मालूम पड़ा। पर अब पछताने से क्या होता है? सो बेचारे खिसियाके लज्जा

के मारे अब यहाँ नहीं आते। (और खिसियाना भाड़ दिवाली गाता है सो वह भी ज्ञान बघारने लगे)। परन्तु उद्धव ! हम विश्वास दिलाती हैं कि उन्हे इसके लिए बनाएंगी नही तुम जाके उन्हे बाँह पकड़ के लिवा लाओ। भले ही कृष्ण लाखो ब्याहले और कुबरी सरीखी दसो के धरौने करलें पर अन्त को कृष्ण रहेंगे हमारे ही। इस प्रकार से कहती हुई गोपी को दूसरी यह सोच कर कि कही उद्धव उन्हें जाके यह सब जतला न दे ताकि वे और भी सतर्क हो जावे और फिर न आवे—रोककर कहती है कि सखी ! सुनो अभी से कुछ मत कहो। माधव को आ जाने दो और जब वे सूर के स्वामी श्रीकृष्ण मिल जायँ तो खूब जी भरके मजाक कर लेना।

विशेष—अन्त अहीर विचारो से प्रियतम विषयक रति को अप्रिय शब्दों से व्यक्त करने के कारण बिब्बोक नामक हाव है।

६५ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे अन्तःकरण मे कृष्ण ऐसे अड़ गए हैं कि निकल ही नहीं सकते फिर दूसरे के लिए यहाँ स्थान कहाँ से आ सकता है। वे भले हो या बुरे हम उन्हे छोड़ नहीं सकते। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

उद्धव हमारे हृदय मे माखन चोर गढ़ रहे हैं। योग को अपनाने के लिए उन्हे उखाड़ भी फेकें पर क्या करे वे किसी भी प्रकार नहीं निकलते। बात यह है उद्धव कि वे हृदय में जाके तिरछे होके फँस रहे हैं इसलिए अन्तर्घट को बिना फोड़े वे नहीं निकल सकते। भाव यह है कि कृष्ण की बाँकी अदाए हृदय मे ऐसी जम गई हैं कि उन्हे अलग करना हमारे हृदय को तोड़ फोड़ के नष्ट करना है। पर यदि कहो कि वे तो गँवार अहीर हैं उनसे प्रेम करना हमें फबता नहीं तो हमारा कहना यही है कि यशोदा पुत्र यद्यपि अहीर है तो हम से छोड़े नही जा सकते। यदि वे अहीर हैं तो हम भी तो अहीरिन ही हैं। इससे क्या ? अब तो वे महाकुलीन यदुवशी हैं इसलिये तुम्हारा प्रेम तुम्हारे सम में होना चाहिये ? इसका उत्तर देती हुई गोपियाँ कहती हैं—वे अभी मथुरा जाके यदुवशी कुल के बन गये अवश्य पर हमे बड़े नहीं लगते। जिनके वे पुत्र कहला रहे है वे वसुदेव और देवकी कौन है उनसे हमारी जान पहिचान नहीं है। हम तो उन्हे नन्द यशोदा का प्रियलाल समझती हैं और उनके

कृत्रिम महत्व हमारे प्रेम में बाधक नहीं हो सकता। सूर कहते है कि गोपियों ने अन्त में साफ साफ कह दिया कि हमे कृष्ण को बिना देखे चैन नहीं। हमें इस वियोग में भी और कोई सूझता ही नहीं है। हम क्या करें लाचार हैं।

६६ सगुणोपासना को तिलाजलि देके निर्गुण को अपनाना असम्भव है विशेषकर गोपियो के लिए। वैसे भी निर्गुण पथ बड़ा गहन और कठिन है। ऐसी परिस्थित में गोपियाँ कहती हैं कि हम अपने सगुण को निर्गुण से किसी प्रकार नहीं बदल सकतीं। वे उद्धव से कहती हैं—

अरे! हम गोपाल को कैसे दे सकती है अर्थात् उन्हें अपने मन से कैसे हटा सकती हैं? और उद्धव की चिकनी चुपड़ी बातो से निर्गुण को कैसे अपना सकती हैं। उद्धव हमको निर्गुणोपसाना के वाद धर्मार्थ काम मोक्ष सभी परम पुरुषार्थों की प्राप्ति बताते हैं परन्तु यह नहीं सोचते यह असि धारा व्रत कितना कठोर है। आखिर उसे हम पाये कहाँ? उसकी व्यापकता पर मनन करते हुए शास्त्र नेति नेति कह के गाते हैं अर्थात् वह असीम और हम ससीम हैं ससीम को असीम की प्राप्ति कैसे हो सकती है। यदि कहो मन मे उसका मनन करना ही उसकी प्राप्ति है तो वह भी शास्त्र सगत नहीं है। यदि विचार करके देखा जाय तो मन भी वहाँ भटकता ही रहता है कभी लक्ष्य पर तो पहुँचता नहीं। इसीलिए तो उपनिषदो मे कहा हैं—यन्मनसान मनुते। इसलिये सूर की गोपिया कहती हैं कि मनसा भी अचिन्तनीय उस निर्गुण के लालच मे सगुण श्याम को कौन छोड़ सकता है और सखी! इस सरल मार्ग को छोड़ के उस कठोर दुर्गुण पथ से कौन लक्ष्य तक पहुंच सकता है। किसकी इतनी ताव है?

६७ कृष्ण के वियोग में गोपियो का सौन्दर्य विदा हो गया। उनके नेत्रों को अब विविध उपमानों की समता देके वर्णन करना अनुचित है। वास्तव मे व्रजलोचन बिना उनके लोचनो के लिये प्रसिद्ध उपमानो में से किसी से साम्य करना अन्याय है। इसीलिए गोपिया उद्धव से कहती हैं—

हमारे नेत्र अब एक भी उपमा ग्रहण करने योग्य नहीं। सदा से कवि लोग नेत्रों के लिये विविध उपमान प्रस्तुत करते चले आए है परन्तु उन्होंने हमारी वियोगावस्था के नेत्रों का स्मरण करके कोई उपमान नहीं

चुना । नेत्रो के लिए कवि लोगों के प्रसिद्ध उपमान चकोर से यदि हमारे नेत्रो की समता की जाय तो वह मिथ्या है । क्योकि यदि ये चकोर होते तो उस प्रियतम के मुखचद्र के बिना कैसे जीते परन्तु ये उनके अभाव में भी जी रहे हैं अतः इनको चकोर कहना उसके नाम पर बट्टा लगाना है । ये भ्रमर से भी साम्य नहीं क्योकि भ्रमर होते तो श्रीकृष्ण के मुख रूपी कमल-कोष से बिछुने पर ये यो ही निठल्ले न वैठे रहते अपितु जहाँ भी वह कमल है वहीं उड़ जाते । इनका तीसरा उपमान है खजन सो वह भी ठीक नही । यदि ये लोगो के मन को प्रसन्न करने के लिए खंजन कहे जावें तो भी अनुपयुक्त है । खजन किसी के पास जाने पर यों ही आसानी से पकड़ में नहीं आता वह वहाँ से उचटकर भाग जाता है । परन्तु हमारे ये नेत्र कभी भागने का उपक्रम नहीं करते और काम के पास आते ही उनके हाथों बिक जाते हैं । नेत्रो के लिए एक और उपमान मृग चुना है । वहभी हमारी आँखो के लिए ठीक नहीं जँचता । क्योकि यदि ये मृग होते तो आज जब कि उद्धव व्याध बनके शिकार करने आए हैं तब इन्हें इनके देखते-देखते बन में ऐसी जगह भाग जाना चाहिए था जहाँ इनके साथ कोई न लग पाता । (विशेष द्रष्टव्य—नेत्रो का उपमान यद्यपि मृग के नयन हैं परन्तु मृगो के नयनो का साम्य अधिकतर 'मृगनयनी' इस लुप्तोपमा द्वारा व्यक्त किया जाता है । अतएव लुप्त पद नयन का विचार न करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मृग की नयनों का उपमान है । इसी आधार पर यह कल्पना युक्ति सगत ठहरती है) वस्तुतः व्रजलोचन श्रीकृष्ण के अभाव मे हमारे ये नेत्र कैसे ? अर्थात् नेत्र नेत्र ही न रहे फिर इनके लिए कोई उपमान कैसे घटित हो सकता है । यह सोच कर क्षण-प्रतिक्षण हमारा दुःख बढ़ता ही जाता है। सूरदास कहते है कि गोपियो ने नेत्रो के सब उपमानों को अनुपयुक्त बताके अन्त मे कहा कि हमारी वियोगावस्था मे इन नेत्रो के लिए अशतः उपयुक्त एक ही उपमान है और वह है मीन । क्योंकि ये मीन के समान पानी का साथ कभी नहीं छोड़ते । वियोग दुःख मे आँसुओ से प्लावित नेत्रो के गढ़ों मे ही ये मत्स्य समान शबल नेत्रों की पुतलियाँ रहती हैं ।

विशेष—इस पद मे रूपक तथा हीनोपमालकार है ।

९८ अभिमत होते हुए भी अतिथि के आग्रह को अस्वीकार कर देना अशिष्टता है। परन्तु विवषता मे सभी मर्यादाएँ टूट जाती है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम आपके कथन खूब समझती हैं। आप हमारे अहित की नहीं कहते पर क्या करे हमारी आँखे नही मानतीं। हम विवश हैं। इन नेत्रो का हाल बड़ा विचित्र है—

उन्होने हरि जू के मुख को देखकर पलक मारना भी भुला दिया। पलक एवं पट से अनावृत होने के कारण ये पुतलियाँ उस दिन से नगी ही रह रही हैं। इन्होंने उस दिन से घू घट के वस्त्र को तिलाँजलि दे दी और नगी उघारी रात दिन गलियो में ही (कृष्ण के दर्शन की आशा मे) घूमती रहती है। प्रियतम की रूपकान्ति की ओर टकटकी लगा के देखती हुई ये अपनी स्वाभाविक समाधि में तल्लीन रहती हैं। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि हम अपनी सुमति से जब विचार करती हैं तो आपके वचनो का मर्म अन्तःकरण से समझ लेती हैं। हम जानती हैं कि आपका कथन अहितकारी नहीं है। परन्तु करे तो क्या करे ये हमारे हठी नेत्र हमारा कहना नही मानते। हमारे लाख समझाने पर भी ये लोभी नेत्र उसी रूप माधुरी पर मस्त रहेते हैं और किसी भी प्रकार उसे छोड़ कर आपके हितकारी वचनो पर चलना नहीं चाहते। यही विवशता है कि हमें आपके कथन की अवहेलना करनी पड़ रही है।

विशेष—इस पद में उत्प्रेक्षालकार है।

९९ वियोग की व्यथा मर्मान्तक होती है और बढते २ इतनी वढ़ जाती है कि वियोगी की जान पर आबनती है। इसी दशा में वियोगी अपने हितू लोगों के लिये विशेष चिन्ता का पात्र बन जाता है। वे लोग उसका विविध प्रकार से उपचार करते हैं। परन्तु ये उपचार सन्ताप को कम करने के बजाय उसे और भी बढ़ा देते हैं और हितू अपने 'नारद कुर्पाणो वानरं चकार' वाले उपचारों को देखकर विस्मित एव बञ्चित होकर हाथ पर हाथ रख के बैठ जाते हैं। प्रस्तुत पद में वियोगिनी राधा के इसी प्रकार के उपचारो का वर्णन है। वियोगिनी के मन बहलाव के लिए गान वाद्य का आयोजन किया गया है। वीणा के तार झनझनाकर एक मादक मोहकता उड़ेलने लगे। पर यह

क्या ? 'मर्ज बढता गया ज्यो-ज्यो दवा की' वाली मसल हो गई । बेचारी वियोगिनी चिल्ला उठी—

हाथ मे रक्खी हुई बीणा को दूर हटा दो । देखते नही ? इसकी मोहक तानो से चन्द्र के रथ मे जुते हुए मृग रुक गए और अब चन्द्र अस्त नहीं होता और रात नहीं बीतती । लोगो को यह बात अद्भुत लगेगी कि मनो-विनोद के साधन भी मनोव्यथा को उकसाने वाले हो रहे हैं । परन्तु वियोग व्यथा की तीव्रता मे यह सब सभव है और वियोग-व्यथा अनुमान से नहीं जानी जा सकती । प्रेम पाश के बन्धन की व्यथा कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है । 'जाके पॉव न गई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई ।' ऐ सखी ! जब से कमलनयन प्रियतम कृष्ण बिछुड़े हैं तब से ऑखो से ऑसू गिरना रुकता नहीं । यह शीतल चन्द्रमा भी अगारे बरसाता है । (मिलाइए—चन्दन शीतल लोके चन्दना दपि चन्द्रमाः' परन्तु वियोगियों के लिए' 'करा हिमाशो-रपि तापयन्ति' दधिसुत किरन भानु भइ भु जै—सूर) फिर बताओ धैर्य कैसे रक्खा जा सकता है । उपचारो से वियोग व्यथा बढने पर सूर कहते हैं कि हे प्रभु तुम्हारे वियोग से पीड़ित लोगो का कोई इलाज नहीं । सभी उपचार व्यर्थ हैं । (राम वियोगी ना जिए जिए तो बौराहोहि—कबीर ।

विशेष—इस पद्य में अतिशयोक्ति अलकार है ।

१०० प्रोषितपतिका राधा की विषएण मूर्त्ति और उस पर "त्वतेत्वार भिवा-हितम्" है निर्गुण का उपदेश । इससे उसकी क्या दशा हुई होगी यह सहृदय स्वय जान सकते हैं । गोपियॉ राधा की अवस्था और उस पर उद्धव के निर्गुणो-पदेश के प्रभाव को वर्णन करती हुई कहती हैं—

बृषभानु की पुत्री राधा नितान्त मलीन है । उसने अपनी साड़ी को इस-लिए नहीं धुलवाया कि रति केलि के समय वह साड़ी प्रियतम कृष्ण के स्वेद से आलिगनावस्था में भींग चुकी है । धुलने पर उसका महत्त्व भी धुल जाने का भय है । वह सदा नीचे मु ह किए रहती है ऊपर को नही देखती उसकी मुद्रा पराजय के कारण शिथिल हुए जुआरी की मुद्रा के समान है । बिखरे हुए बाल और कु भलाने हुए मुख से वह चन्द्रकिरणो से आहत कमलिनी सी श्री हीन होरही है । श्रीकृष्ण के योग संदेश को सुनके वह अनायास ही मर गई ।

एक तो बेचारी विरहिणी और उस पर भी मधुकर की भयकर मार ! फिर भला कैसे बचती ! सूर कहते हैं कि अकेली राधा ही नही अपितु श्याम के वियोग मे सभी श्याम को प्यार करने वाली ब्रज बनिताए इसी प्रकार जी रही हैं।

विशेष—उत्प्रेक्षा और उपमालकार है ।

१०१ गोपियो के सगुण के प्रति आग्रह को देख के उद्धव अवश्य विस्मित हो रहे होंगे परन्तु गोपियाँ कहती हैं कि जिसने सगुण का स्वाद ले लिया उसे और कुछ नहीं सुहाता । पर हाँ यह जरूर है कि यह प्रेम भी एक बड़ी बला है। वह सचमुच भाग्यशाली है जो इस प्रेमपाश मे पड़े ही नहीं । उनके लिए ज्ञान और वैराग्य की बाते करना आसान है। गोपिया कहती हैं—उद्धव ! सचमुच तुम बड़े भाग्यशाली हो । क्योंकि तुम स्नेह के बन्धन से सदा दूर रहते हो और तुम्हारा मन कहीं आसक्त नहीं होता । जिस प्रकार कमल पत्र पानी में रहते हुए भी जल के द्रव से अलग रहता है उसी प्रकार तुम भी (पद्म पत्र मिवाम्भसा) रागादि के प्रपच रूप इस विधि प्रपच मे रहते हुए भी उसकी आसक्ति आदि से सर्वथा अछूते हो । तुम वह चिकने घड़े हो जिसे पानी में डुबा देने पर भी उस पर पानी का तनिक भी असर नहीं होता । तुम धन्य हो जिन्होने प्रेम नदी मे प्रवेश ही नही किया और तुम्हारी आँख किसी सौन्दर्य मे नहीं उलझी । (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा) परन्तु हम तो भोली-भाली अबलाए हैं (तुम तो सबल होने से इन चीजो से बचे रहे) जो प्रियतम की रूप माधुरी पर गुड़ पर चींटी की तरह एकदम आसक्त होगईं ।

विशेष— इस पद मे रूपक और उपमालकार है ।

१०२ उद्धव से निगु'ण का उपदेश सुनके गोपियाँ कहती हैं कि हमारे मन पर श्याम रग ऐसा गाढ़ा चढ़ रहा है कि धुल नहीं सकता। फिर यह निगु'ण का रग कैसे चढ़ सकता है । यदि कहो उसी पर निगु'ण का रग भी चढ़ा दिया जाय तो हानि है क्या यह कैसे सम्भव है क्योंकि 'कारी कामरी' पर दूसरा रग कैसे चढ़ सकता है । कोई भी रग उससे मिलके श्याम रग को ही पक्का करेगा । अतएव वे कहती हैं—

हे उद्धव ! हमारा मन अब और अन्यासक्त नहीं हो सकता । इस पर श्याम का रग पहले ही चढ़ चुका है और श्याम रग ऐसा पक्का रंग होता है कि लाख

धोने पर भी नही छुट सकता। 'धोएहूँ सौ बेर के काजर होय न सेत' वाली बात है। इसलिए भलाई इसी मे है कि कृष्ण अब कपट बचनो को छोड़ के वही करें जो शुरू से करते रहे हैं। प्रेम की सरस बातें ही हमारे लिए हितकर होगी यह नीरस योग हमारे किस काम का है? अरे मधुप! हमें यह योग तो इस प्रकार हेय लगता है जैसे तुझे चपा का फूल। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी चपा भ्रमर को अच्छा नही लगता। किसी ने ठीक ही कहा है–'चपा तो मे तीन गुण रूप रग अरु बास। अवगुण तो मे एक है भँवर न आवे पास'॥ इसी प्रकार सर्व गुण सम्पन्न होने पर भी योग हमे नहीं रुचता। जो भाग्य का लेख है वह अब कैसे मिटाया जा सकता है। हाथ की रेखाए अमिट हैं। इसलिए आप ही बताए कि क्या तरकीब की जाय कि जिससे यह भाग्य का लेख मिट सके। पुराने लोग तो यह कह गए हैं—'यत्कि चिद्विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितु कः क्षमः'। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि अच्छा हो आप हमे श्याम मुख के दर्शन करावे क्योकि वही मुख हमारे जीवन का आधार है।

विशेष—उपमालंकार।

१०३ उद्धव ने व्रज मे आके गोपियो को अपना परिचय देते हुए अपने को श्रीकृष्ण का सेवक बताया। अब उनके मुख से योग और निर्गुण की बातें सुनके वे सोचने लगीं कि यह दास कैसा कि जो अपने स्वामी को छोड़कर दूसरो के गीत गाता है। यह तो वही बात हुई कि 'खाए खसम का और गीत गाए भैया के' पर यह तो आदर्श स्वामिभक्ति नही है। गोपियाँ अपने प्रेम को अपरिपक्व और आदर्श की सीमा से बहुत नीचे देख के पश्चात्ताप करती हुई उद्धव से कहती हैं —

उद्धव! न तो हमीं लोग सच्चे अर्थ मे हरि के वियोगी हैं और न तुम्हीं उनके यथार्थतः दास हो। हम लोग तो सच्चे वियोगी इसलिए नहीं कि कम से कम नाम मात्र को ही सही पर हमारे अन्तस् में प्राण रह तो रहे हैं और तुम आदर्श सेवक इसलिए नहीं कि हरि को छोड़कर शून्य की सेवा करते हो। आदर्श वियोगी मीन है जो पानी से बिछुड़ते ही जीवन की आशा छोड़के मरण की शरण लेते हैं। और आदर्श दास्य पपीहा का है जो प्यासे रहकर भी

अपने दास्य भाव का सदा निर्वाह करता है। किसी ने ठीक ही कहा है—एक एव खगो मानी चिरजीवतु चातकः। म्रियते वा पिपासाया याचते वा पुरन्दरम्। सच्चा प्रेम था राजा दशरथ का जिन्होने प्रियतम राम के बनवास जाते ही उनके वियोग मे प्राण त्याग दिये। हमारा प्रेम और वियोग सब विडम्बना ही है। यद्यपि हमने भी ससार के उपहास की अवहेलना करके सूर के प्रभु श्याम से दृढ प्रेम करने का दावा किया था पर उनके वियोग में इन प्राणों का परित्याग करके उस प्रेम को बदनाम ही किया है।

विशेष—उदाहरण अलकार है।

१०४ उद्धव के बार-बार योग का उपदेश देने पर अत्यन्त व्यथित हो के गोपियाँ कहने लगी—उद्धव! जो तुमने निर्गुण और योग की बात कही है उसे फिर मत कहना। यदि तुम हमारा जीवन चाहते हो तो बस अब चुप ही हो जाओ वरना तुम्हारे मर्मान्तक व्यथादायी उपदेशो से हमारा प्राणान्त ही होना निश्चित है। तुम्हारे वचनो से हमारे प्राणो पर चोट लगती है और तुम हँसी समझ रहे हो। सचमुच इस विरह व्यथित जीवन से तो काशी करवट ले के (काशी जाके अपने को आरे से चिरवाके) प्राण देदेना कही अच्छा है। हमारा अभाग्य कि जब कृष्ण पूरब गए तब उन्होंने यह योग हमारे लिए लिख भेजा। इसकी व्यथा से हमारा शरीर जलकर भस्म ही होकर रहा। अब जो आप कह रहे हैं वह केवल श्मशान को जगा रहे हैं। उद्धव! हम निर्जीव ही हो चुकी हैं इसलिए या तो उस सौन्दर्य राशि को लाके मिलादो या हमे अपने साथ ले चलो। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहाकि यदि तुमने किसी तरह हमें उनसे न मिलाया तो हमारा मरण ही समझो और इसकी हत्या तुम्हारे सिर लगेगी। इसलिए इस पाप से बचने के लिए उन्हे लाके मिलादो इसी मे भलाई है।

१०५ गोपियो के बार-बार मना करने पर भी उद्धव अपनी ही धुन मे गाये जा रहे हैं—इस पर गोपियाँ व्यंग्य करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव! तुम हमे वियोग का प्रतीकार बताने आए हो पर पहले अपना तो इलाज करो। हम तुम्हारी भलाई की कहती हैं पर तुम्हे अहित ही लगती है। इसलिए तुम हमारी न मानके अपनी ही हाँके जा रहे हो। हम हृदय से कहती

हैं कि तुम जाके कुछ अपना इलाज करो। कुछ कहना चाहते हो और कुछ कह डालते हो। यह तुम्हारी जक-जक अच्छा लक्षण नहीं है। अब हम चुप ही रहेंगे क्योकि जबाब भले को दिया जाता है पागलो और सन्निपात के बक-वादियो को नहीं। हम तुमसे तो हार मान गई हैं। मालूम ऐसा ही होता है कि इसी जक-जक की बीमारी के कारण कृष्ण ने तुम्हें इधर खेद दिया। तुम जल्दी ही इन्ही पैरो मथुरा चले जाओ क्योकि तुम्हारा शरीर रोग ग्रस्त है और घर पर तीमारदारी अच्छी होगी। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव को परा-मर्श देते हुए कहा किसी अच्छे वैद्य को तलाश करके इलाज प्रारम्भ करदो क्योंकि तुम्हारा रोग असाध्य हो रहा है और तुम मरणासन्न हो रहे हो।

१०६ अपने दिनो को इस प्रकार फिरा हुआ तथा कुब्जा को सौभाग्यवती देखके गोपियाँ झल्ला उठीं और उद्धव से कहने लगीं—

उद्धव ! जिसके भाग्य में जो लिखा है वही उसे भोगना होता है। यह हमारा अभाग्य है कि कृष्ण ने कुब्जा को अपनी पटरानी बना के हमारे लिए यह वैराग्य का सँदेशा भेजा है। देखो भाग्य का खेल कि ब्रज सुन्दरियाँ तो बियोग व्यथा से उन्मत्त हो छटपटाती फिरती हैं और दासी के 'माथ सुहाग को टीको' लगाया जा रहा है। लोग कहते हैं कि राजाओ के होते गुलामो को टीका नहीं होता पर भाग्य सब करा देता है। इतना उद्धव से कहके गोपियाँ रह गईं। इतने मे एक गोपी बोली-सखी ! अबकी बार कुब्जा और कृष्ण की जोड़ी कौए और हस की जोडी के समान खूब मिली है। दासी के घर श्याम के प्रेम की शहनाइयाँ बज रही हैं। आज वह खुशी से श्याम के अनुराग मे सरा-बोर होके बारहमासी फाग खेल रही है। आनन्द में सदा होली और दिवाली है—'सदा दिवाली साहु की जो घर गेहूँ होयँ' वाली बात है। यह अपने-अपने भाग्य की बात है वहाँ वह प्रेम महोत्सव और यहाँ आप हमारे प्रेम का बाग काटके जोग की बेल पौड़ाने आए हैं। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि तुम हमसे प्रेम छुड़ाके योग अपनाने की आशा छोड़ दो क्यो कि बुद्धिमान लोग कभी गन्ने को छोड़के उसके आगों को नही चूसते। सो हम लोग इतने मूर्ख नहीं कि मधुर श्याम को छोड़के इस स्वादरहित निर्गुण को

ग्रहण करलें। (आचार्य शुक्ल के आग का अर्थ आक=मदार किया है। परतु गन्ना छोड़के अकौआ या मदार किसी को चूसने को देना ठीक नहीं जॅचता। ब्रज भाषा में आग गन्ने के अगले भाग को आग कहते हैं इसी अर्थ में हमें विशेष चमत्कार जॅचता है)।

विशेष—रूपक अलकार है।

१०७ नन्दनन्दन पर सर्वस्व निछावर करके प्रेम करने वाली ब्रजबनिताओं के लिए रूखा योग का सन्देश भेजकर कृष्ण ने एक अपूर्व रहस्य का उद्घाटन किया है। गोपियॉ कहती हैं कि आज दिन तक उनके अङ्ग प्रत्यङ्गों के लिए कवियो द्वारा प्रस्तुत किए हुए उपमानो को हम केवल उनके सौन्दर्य के प्रतीक ही समझती थी। पर आज पता चला कि वे उपमान साभिप्राय थे और उनके अन्दर कृष्ण के चरित का प्रतिबिम्ब था। अतएव वे कहती हैं—

उद्धव ! हमें अब समझ पड़ा कि नन्दनन्दन के अङ्ग प्रत्यङ्ग के वर्णन करने के लिये कवियों ने जो उपमाएँ दी हैं वे न्याय सगत हैं। उनके बाके बालों को भ्रमर कहना केवल उनके रूप साम्य को ही व्यक्त करने के लिये नहीं हैं अपितु उसमें भ्रमर का साधर्म्य भी निहित है। जिस प्रकार भौरा चक्कर काट-काट के भोली भाली मालतियो को भरमाके उनसे रगरेलिया करके जब उन्हें नितान्त नीरस कर देता है तो अविलम्ब ही वहां से नौ दो ग्यारह हो जाता है। इसी प्रकार उन्होंने अपने चक्करदार (छल्लेदार) कुटिल कुन्तलों से इन ब्रजवनिता मालतियों को मुग्ध करके खूब भोग किया और जब ये शिथिल होगईं तो चलते बने। ऐसे ही उनके मुख को 'चन्द्रवर्ण कहके कवियों ने न्याय ही किया है। चद्र का भी साधर्म्य उनके मुख मे पूर्णतया घटित होता है। बेचारी कुमुदिनी चन्द्र की ओर सदा टकटकी बाध के निहारती रहती है यहा तक कि यदि कोई खींचकर उसे नीचे झुकाने का प्रयत्न करे तो भी वह नीचे नहीं झुकती। क्योंकि वह थोड़ी देर के लिये भी अपने प्रियतम का अदर्शन नहीं चाहती। परन्तु जिस पर वह इतना मरती है वह इस कदर निठुर है कि उससे स्नेह नहीं करता और स्वय हिमकर होते हुए भी अनुरक्त कुमुदनी को अन्त में हिम के हाथों अपनी जान से हाथ धोने पड़ते हैं। यही हाल कृष्ण के मुख चद्र का भी है जो उसे देखे जीती थी उन्हीं ब्रजबनिताओं को अपने मुख के सन्देश से

मारे डाल रहे हैं। केश और मुख ही क्या उनके समस्त कलेवर के लिये घन-श्याम की उपमा भी श्यामघन के साधर्म्य से भी पूर्णतया युक्त है। सूर कहते हैं कि श्यामघन की सेवा चातक रात-दिन करता है उसी की पुकार करते २ उसकी वाणी क्षीण हो जाती है परन्तु निर्मोही बादल उसे क्या पुरस्कार देता है ? उस बेचारे मूढ चातक के मुँह मे उसकी दी हुई एक बूँद भी नहीं जाती यों इतना देता है कि जल थल सब एक कर देता है पर अपने भक्त को एक बूँद देने मे भी कृपणता दिखाता है ? इतनी निठुरता देखकर भी चातक उसकी वे रुखाई पर ध्यान नहीं देता यही बेचारे की मूर्खता है। इसी प्रकार रात दिन कृष्ण का नाम लेने वाली हम बनिताओं को वे तनिक भी दर्शन नहीं देना चाहते।

विशेष—इस पद मे काव्यलिंग अलंकार है ?

१०८ उद्धव के मुँह से योग का सदेश पाके युवतियाँ कभी झींकती, कभी रोतीं कभी उद्धव को फटकारतीं और कभी उनसे अनुनय विनय करती हैं। विविध प्रकार की शङ्का और सदेहो ने उनके चित्त मे ऐसा खभार पैदा कर दिया है कि उनका मन अनेक भाव तरंगो मे डूबता उतराता चलाय मान रहता है। कभी अपने प्रेम की दृढ़ता की शेखी और कभी अपनी व्यथा का कच्चा चिठ्ठा उनके सम्मुख खोलके रखती हैं। लक्ष्य यह है कि ये किसी न किसी तरह पसीजकर उनके प्रियतम को लाके उनसे मिला दे। इस पद मे गोपियाँ बड़ी दीनता से अपनी प्रेम कहानी कहकर उद्धव को द्रवित करने का प्रयत्न कर रही हैं। वे कहती हैं—

उद्धव ! हम नितान्त अनाथ हैं। जिस प्रकार शहद का छत्ता तोड़ने के बाद मधु मक्खियाँ निराश्रय हो जाती हैं उसी प्रकार ब्रजनाथ श्रीकृष्ण के चले जाने पर हम निराश्रय हैं। हाय ! उस अधरामृत की नठी स्पृहा को बाल्यकाल से सहेजकर सञ्चित किया था। पर उस संचित मधुर मनोरथ को वह बहेलिया सुफलक का पुत्र अक्रूर तोड़ ले गया। जब वे लेजा रहे थे तब भला हमे चेत कहाँ रहा था। चेत लाने के लिये ज्योही हम अपनी आखे हाथो से मल रही थी त्यो ही वे हमारे हरि जू को दूर ले गए। हम पीछे भी चली पर उन्होने रथ के नीचे धूल उड़ाकर हमे रोकने में सफलता प्राप्त की। हम निराश हो

गई और हमारे मनोरथ अधूरे ! उद्धव ! हमने सचयशील कृपण के समान भोगों की स्पृहाओं का सदा संचय ही किया और भोग कभी नहीं किया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने अन्त में उद्धव से कहा कि हम भोग करतीं—भी कैसे? भाग्य मे तो विधाता ने कुब्जा के मुख से योग का उपदेश लिखा था।

विशेष—इस पद मे उपमा अलकार है।

१०६ पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने पर ही उपदेश सार्थक होता है। ब्रज की गोपिया योगोपदेश की अनुरूप पात्र नहीं है यह वे पहले कह चुकी है। अब वे उद्धव को ब्रज की दशा दिखाके यह निवेदन करती हैं कि यहा की दशा भी आपके योगोपदेश के अनुरूप नहीं हैं। वे कहती हैं—

उद्धव ! पहले ब्रज की दशा पर भी कुछ विचार कर लो उसके बाद तुम अपनी योग सिद्धि की कथा का बखान करो तो समीचीन होगा। (वे मौके की बात वे मजा होती है। किसी ने ठीक ही कहा है—नीकी हू फीकी लगे बिन अवसर की बात। जैसे वरनंत युद्ध में रस सिंगार न सुहात।) नन्दनन्दन ने तुम्हे किस कारण यहाँ भेजा है उसका आशय मन में सोचो और समझो। भाव यह है कि नन्द नन्दन ने शायद तुम्हें विरह व्यथिताओं को सान्त्वना देने के लिये भेजा होगा और उसी साँत्वना का एक उपाय यह उपदेश भी बताया होगा। पर लक्ष्य सात्वना देना ही रहा होगा न चाहते हुए भी जबरदस्ती योग लादना नहीं। तुम विचार से काम न लेके अपनी ही गाए चले जा रहे हो। ज़रा तो सोचो कि वियोग व्यथा और अध्यात्मवाद में कितना अन्तर है। एक जमीन की ओर खींचती तो दूसरा आसमान की ओर खींचता है। वियोगी आसक्ति को ही सर्वस्व मानना हैं और परमार्थ अनासक्ति सिखाता है। तुम तो श्याम के निजी दासों में से हो। सदा उनके पास रहते हो। तुम्हे उनका आशय समझने का अभ्यास होगा। साथ ही उनके वियोग के दुःख का अनुमान करने मे भी तुम अवश्य समर्थ होगे। तब फिर पानी में डूबते हुए को बार बार झागो का सहारा लेने के लिए क्यो आग्रह कर रहे हो? तुम जानते हो कि वे अत्यन्त सुन्दर मनोहर मुख वाले हैं उन्हें हम कैसे भुला सकती हैं। हम तुम्हारी सब योग की प्रक्रियाओं और सब प्रकार की मुक्ति के आनन्द को उस मुरली की माधुरी पर बलि करने को प्रस्तुत हैं—क्योंकि मुरली की माधुरी के आगे

तुम्हारे योग और मुक्ति सब नगण्य हैं जिसके हृदय में श्याम सुन्दर रूप घन बास करते हैं फिर भला वह निर्गुण का बखान कैसे कर सकता है। गोपियो की इस अनन्यता पर मुग्ध होके कृष्ण के अनन्योपासक सूर कहते हैं कि उसके भजन भक्ति किस काम की अर्थात् उसका न होना ही अच्छा जिसे अपने इष्टदेव के अतिरिक्त कोई और भी अच्छा लगता है।

विशेष—इस पद में रूपक अलकार है।

११० जब गोपियों ने निर्गुण और निराकार की उपासना के लिए आपत्ति उठाई तो उन्हें समझाया गया कि वह ब्रह्म विश्वरूप है और घट २ वासी है। यदि चाहो तो उस अन्तर्यामी को अपने प्रियतम के रूप में अपने हृदय में देखो और वियोग व्यथा से मुक्ति प्राप्त करो। निराकार वादी कहा करते हैं—"दिल के भीतर है सदा तस्वीर यार की जब जरा गर्दन झुकाई देख ली"। तब फिर उस प्रियतम का दर्शन हृदय में कराना एक वियोगी के लिये हित की बात ही कही जायगी। इस बात का विरोध करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

उद्धव! तुम्हारी यह बात कि वे घट घट वासी हैं हमें कैसे हितकारी लगे। तुम कहते हो कि वे हृदय में हैं और हम विरहानल के दाह से सतप्त होरही हैं। नींद हराम है। चारों ओर (टुकुर-टुकुर) निहारती हुई रातें काटती हैं। इतने असह्य सन्ताप को वे हृदय से निकाल कर ठण्डा क्यों नही करते? यदि वे यहीं हैं तो वे इस सन्ताप को अवश्य शान्त करते और हम सुख की नींद सोतीं। पर ऐसा नही है इसलिए तुम्हारा यह कथन कि 'हिरदय माँझ हरी' बिलकुल असत्य है। इसलिए भैया! तुम्हारे निहोरे करती हैं तुम हमें इसी प्रकार अवधि की आशा रूप जल की थाह के सहारे बना रहने दो। अर्थात् अवधि पूरी होने पर उनके मिलन की आशा में हमें जीवन बिताना अच्छा लगता है क्योंकि वहाँ आशा का सहारा तो है। (आशा ही वियोग मे स्त्रियों के सुकुमार हृदय को सँभालने वाली होती है। देखिए—आशाबन्ध: कुसुम सदृश प्रायशोह्यङ्गनानां; सद्यःपाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि ।। मेघ दूत।)। इसलिए उद्धव! हमें आशा के सहारे कालयापन कर लेने दो और अथाह निर्गुण के समुद्र में मत डुबाओ। भाव यह है कि अवधि के समाप्त होने की आशा जीवन यापन का एक अच्छा सहारा है निर्गुण को अपनाने का अर्थ

है पुनर्मिलन की आशा का भङ्ग। आशा के अभाव के कारण ही निर्गुण को समुद्र कहा है। यदि आप हठवश हमें इस समुद्र मे डुबाकर ही दम लेना चाहते हैं तो एक बात सोच लीजिए कि फिर हम कभी आप लोगोके चाहने पर भी नहीं मिलेगीं। उसी समुद्र मे ऐसी विलीन हो जायँगी कि नामो-निशाँ मिट जायगा। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से अन्त में निवेदन किया कि जो जिससे प्रेम करे उसका उससे निर्वाह करना (निभाना) ही अच्छा है। क्योकि यह अपनी रुचि की बात होती है। जिसमें रुचि होती है उसी में पुरुष का आग्रह होता है। देखो इतने तालाब और नदियाँ हैं पर चातक को उनसे क्या सरोकार?

विशेष—रूपक और उदाहरण अलंकार है।

१११ उद्धव का दिया हुआ योग का उपदेश निरर्थक हो गया। बेचारे बड़ी आशा से ब्रज मे आए थे। सोचा था कि मथुरा में तो हमारा ज्ञान का सिक्का जमा हुआ ही है चलो ब्रज में भी हमारे ब्रह्मवाद की तूती बोलेगी। पर नक्कार खाने में तूती की आवाज क्या करती। इसलिए हुआ क्या? निराशा से भेंट। गोपियो ने उन्हे इस उपदेश के लिए खूब छकाया। यहाँ वे इन्हें चिढ़ाती हुई कह रही हैं—उद्धव! तुमने भी ब्रज मे खूब दूकान लगाई पर तुम्हारी यह निर्गुण की गठरी यहाँ निरर्थक ही रही। चलो अब इसे उठाते क्यो नहीं? तुम मनमानी नफा लेने के लिए सब चीजे मँहगी भर लाये थे। हम गँवार सीधे-साधे और गरीब. लोग इस मँहगी चीज को ले के क्या करेंगे यह तो ज्ञानियों की चीज है। तुम अपनी इन चीजों को बड़े शहरों में ले जा के बेचो वहाँ तुम्हे इनके ग्राहक मिल जावेगे। हम तो सस्ते के गाहक हैं ग्वालिन ही तो ठहरीं। यदि दूध दही बेचो तो अभी सब की सब लेने को तैयार हैं। (सूर कहते हैं कि) गोपियो ने कहा कि यहाँ इनका कोई गाहक नहीं है। हमें देना तो हमारी जान में जबर्दस्ती का भेड़ना होगा। इसलिए अच्छा है कहीं और चलफिर के देखो।

विशेष—समासोक्ति अलंकार है।

११२ राधा उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण मथुरा जाके रूखे हो गये हैं। जब तक वे गोकुल रहे तब तक तो उन्होंने ऐसा प्यार किया कि उसका वर्णन

करना कठिन है। प्रेम की बातें गुप्त रक्खी जाती हैं। कहने से उनका रस क्षीण हो जाता है। इसलिए राधा कहती हैं कि—

उद्धव ! आज हम तुमसे एक रहस्य कहरही हैं। देखो इसे किसी से कहना मत। यह बात हमारे और तुम्हारे बीच में ही रहनी चाहिये। कम से कम इतनी सी प्रार्थना तो तुम्हें मान ही लेनी चाहिए। एक बार की बात है कि वृन्दावन में खेलते हुए मेरे पॉव में कॉटा लग गया तो कृष्ण ने अपने हाथ से कॉटा लेकर सहज स्वभाव से कॉटा निकाला। एक और दिन की बात कि वन में बिहार करते हुए मैने उनसे कहा कि भूख लगी है बस फिर क्या था वे सौन्दर्यराशि इतने कृपालु हुए कि पक्के फल देखके एकदम पेड़ पर चढ़ गए। सो गोकुल में रहते हुए तो उनकी और हमारी ऐसी मुहब्बत रही है पर हाय ! क्या किया जाय कि मथुरा रहके वे सूर के प्रभु श्याम सब कुछ भूल गए।

११३ कृष्ण के विरह में मर्मान्तक व्यथा होने पर भी और प्रियतम के निठुर होने पर भी गोपियों को योग किसी भी तरह ग्राह्य नहीं है। इसीलिए वे उद्धव से कह रही हैं—हे मधुकर ! तू योग की बात रहने दे। श्यामसुन्दर की बातें सुना-सुना के हमारे सन्तप्त शरीर को शीतल कर। गुणों से शून्य निर्गुण की बात सुनके सुन्दरियो को बुरा लगता है। क्योंकि कागज की नाव पर चढ़के लम्बी-चौड़ी नदी को कोई नहीं पार कर सकता। अर्थात् निर्गुण के अवलंब से इस कठिन भवसागर को कोई नहीं पार सकता। निरालम्ब मन की रागात्मिका वृत्ति को टिकाने के लिए किसी ठोस आश्रय की आवश्यकता होती है। हम अपनी ओर (देख) तथा अपने कपड़े की ओर देखके उसके अनुसार पैर फैलाती हैं। ठीक भी यही है—तेते पॉइ पसारिए जेती लॉबी सौर। ऐसे पॉय नहीं फैलाना चाहिए कि चद्दरे के बाहर निकल जायॅ। अपनी समझ के अनुरूप ही किसी मार्ग को अपनाना चाहिए। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि सगुण के वियोग में एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहा है। यह वियोग-व्यथा सगुण रूप के मिलने पर ही शान्त होगी निर्गुण के उपदेश से नहीं। इसलिए इसे छोड़कर सगुण की कथा कहो जिससे शान्ति मिले।

विशेष—निदर्शना और लोकोक्ति अलकार है।

११४ गोपियाँउद्धव से कहती हैं कि आपके निर्गुण सन्देश का प्रभाव हमारे हृदय पर नहीं जम सकता क्योंकि उस पर कृष्ण भक्ति का प्रभाव इतना अधिक चढ़ा हैं कि और कोई बात भाती ही नहीं है। एक ही चीज भिन्न २ व्यक्तियो मे भिन्न २ गुण दिखाती है। "भटा एक को पित करे करे एक को बाय"। इसलिए आपके लिए लाभप्रद होने पर भी योग हमारे लिए अग्राह्य ही है इसमे कोई आश्चर्य नहीं है। इसी आशय को प्रकट करती हुई वे उद्धव से कहती हैं—

उद्धव! आप तो काफी बुद्धिमान हैं आपको तो यह जानना चाहिए कि जो पहले ही से श्याम रंग में रंग चुकी हैं उन पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता। हमारी श्याम (कृष्ण) के प्रति आसक्ति इतनी गहरी है कि कोई दूसरा भाता ही नहीं। काले रंग पर कोई रग नहीं चढ़ता। विराट् के दो नेत्र चन्द्र और सूरज हैं। वेद दोनो का महत्त्व समान रूपसे प्रतिपादित करता है। परन्तु चकोर को देखो उन दोनो में भेद भाव रखता है। चन्द्र को प्रियतम और सूर्य को शत्रु समझता है। इसलिये विरहिणियाँ विरह के सेवन मे ही खुश हैं। हम आपके चरण छूके निवेदन करती हैं कि आप हमें यो ही विरह रत ही रहने दे और आपको आपका पूर्ण ज्ञान मुबारक हो। यह तो अपने मन माने की बात है प्रेम निर्वाह में भी सीमाए हैं। मेंढक जल से बिछुड़ जाने पर वायु भक्षण करके अपना जीवन यापन करता है परन्तु मछली उसके अभाव में बरबस प्राण ही दे देती है। हमारा अनुराग श्याम के प्रति इतना गाढ़ा है कि हम सदा यही सोचतीं रहतीं हैं कि हमारे ये नयन रूपी भ्रमर श्याम के कमल बदन के मकरन्द का कब पान करेंगे? अर्थात् हम कृष्ण की अनुपम छवि देखने का आनन्द कब लूटेंगी। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि–उद्धव! गोपियो की यह प्रतिज्ञा है कि विरानी (दूसरे) चीज योग को नहीं छू सकतीं।

विशेष—इस पद में श्लेष और रूपक अलकार है।

११५ गोपियाँ बसन्त के आगमन में भी योग का उपदेश सुनके उद्धव से कहती हैं कि—अरे उद्धव! तुम्हे कुछ बसन्त की भी खबर है? वह देखो वन मे कोयल कूक कर बसन्त के आगमन की सूचना दे रही है। ऐसे सुहावने और उत्तेजक समय में भी तुम हमें मुँह पर भस्म लगाने की शिक्षा दे रहे हो

तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि बसन्तोत्सव मे मुँह पर अबीर और गुलाल लगाया जाता है। हम तुम्हारे उपदेशानुसार सब कुछ छोड़ के पाषाण शिलाओ पर आरूढ़ होके अवश्य सिंधी फूकती परन्तु क्या करें हमें तो काम नहीं चैन लेने देता। वह तो पपीहा के बोलों को लेके अपने कुसुमबाणो से हम पर सदा चोट करता है। हम तो (प्रेम में) नितात पगली अहीरिन है। इस योगके पात्र तो ज्ञानी हैं। कृपया उन्हीं को इसकी शिक्षा दें तो उचित होगा। यदि कहो कि तुम्हारे प्रियतम ही जब योग पर विशेषबल दे रहे हैं तो हम क्या करें तो इसका जबाब यह है कि तुम नहीं जानते कि कृष्ण यथार्थतः योगी है या भोगी ? हम हैं उनकी नस-नस से जानकार। इसलिए हमारे आगे उन्हें योगी कहके हमारे ऊपर रौब डालना व्यर्थ है। हमारे आगे उनका यह बनावटी रूप नहीं टिक सकता क्योंकि हम उनकी रग रग से वाकिफ हैं। भला कोई माई के आगे ननिहाल की शेखी क्या वघार सकता है। माई उसके नानी और नाना तक को खूब जानती है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि नानी के आगे ननिऔरे की बाते। इसलिए इस योग की चर्चा छोड़ो हमे तो श्यामसुन्दर की मनोहर मूर्त्ति के ही कीर्तिगान भाते है। (सूर की गोपिया कहती हैं) तुम्हारी मुक्ति का आनन्द उस मुरली तानो के आनन्द की तुलना कैसे कर सकता है ?

विशेष—अपन्हुति और लोकोक्ति अलङ्कार हैं।

''११६ उद्धव के योग को सुनकर गोपियाँ उनसे पात्रानुसार योग का उपदेश देने का आग्रह कर रही हैं। वे कहती हैं कि—

उद्धव ! हम तो ज्ञान से रहित है और हमारी बुद्धि भी अपरिष्कृत है। योग के मर्म को पहिचानने वाली शहर की रहने वाली नवयुवतियाँ हो सकती हैं। वे अपनी शिक्षा और ज्ञान सहारे इतनी प्रगतिशील हो सकती हैं कि इस योग को परखके इसे अपनावैं पर हम नहीं। भला कभी किसी ने स्वर्ण मृग भी देखा है। (यदि कोई सीता का उदाहरण देके कह उठे 'हाँ' तो इसके उत्तर में कहती हैं) देखा भी हो तो कभी उसे रस्सी से बाँध के पकड़ा भी है ताकि निश्चय हो जाता कि वह सोने का ही है। ऐ मधुकर ! तुम्हीं बताओ कभी किसी ने पानी को मथके मक्खन निकाल के अपनी मटकी भरी है ? बिना

भित्तिरूप आश्रय के किसी ने कभी कोई चित्र भी खींच पाया है ? क्या किसी ने कभी आकाश को झोली में बाध पाया है ? यदि कभी किसी ने दुराग्रह से भुसी को फटका भी तो क्या कुछ दाने भी निकाल पाये ? उद्धव ! तुम्हारा भी यह कार्य ऐसा ही असम्भव है। हम तुम्हारी बलि जाती हैं। हम पर कृपा करो हम तो अल्प बुद्धि वाली अबलाएं हैं। हमारी आँखो ने तो सूर के श्याम मुखचन्द्र को चकोरी की तन्मयता से देखना सीखा हैं। उसी की ओर इकटक देखने का अभ्यास किया है।

विशेष—इस पद में निदर्शना, रूपक और उपमालकार है।

११७ कृष्ण के वियोग की व्यथा गोपियो के लिए सर्वथा असह्य है। इसलिए वे उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! पुण्डरीकाक्ष कृष्ण के बिना रहना कितना व्यथा दायक है इसे हम जानती हैं। एक तो हमें वे अनाथ करके छोड़ गए और उस पर भी योग द्वारा अनवधिक वियोग की व्यथा देना कितना असह्य है ? जिस प्रकार उजड़े खेड़े की मूर्त्ति को कोई नहीं पूजता न कोई उसका सम्मान करता है ऐसे ही गोपाल से परित्यक्त हम लोग ससार में अपमान और अवहेलना की पात्र हैं। इसकी कठिन व्यथा को कौन जान सकता है ? हम इस प्रकार तन से मलीन होकर भी मन मे उन पुंडरीकाक्ष से मिलने की आशा रख के जी रही हैं। सूरदास के स्वामी उन कृष्ण को बिना देखे हमारे तृषित नेत्र उनके दर्शनाशा की पिपासा में मरे जारहे हैं। (तुम्हारी सहृदयता इसी में है इन तृषित नेत्रो को जीवन दो)

विशेष—इस पद में उपमालङ्कार है।

११८ जब उद्धव का योगोपदेश इस प्रकार व्रजवनिताओं द्वारा दुत्कार दिया गया तो वे बड़े निराश हुए। उनके निराश एवं खिन्न चित्त को देखके गोपियों ने उन्हें समझाया कि तुम्हारे योग का निरादर तुम्हारे ही अविवेक का फल है इसमें हमारा दोष नही है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई वे उद्धव से कहती हैं— हे उद्धव ! तुमने यह तो सोचा होता कि योग का अधिकारी कौन है। तुम अपने इस योग को वापिस क्यो नहीं ले जाते ? इसमे दुःख मानने की क्या बात है ? यह योग हमारे योग्य नहीं। यह तो वेद और उपनिषदो के मतानुसार ज्ञानी महापुरुषो के लिए ही है। हम व्रज की रहने वाली अबलाएं

हैं हमसे यह नही संभल सकता। यहाँ इसे सुनने वाला कौन है ? तुम किसे यह उपदेश दे रहे हो तुम्हरी उपदेश कथा को समझने वाला यहाँ है कौन ? सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से अपनी अपात्रता के साथ-साथ यह भी कहा कि हमारा मन भी यहाँ नहीं है इसलिए प्रयत्न करने पर भी हम इसे सुन समझ नहीं सकतीं। हमारा मन तो इस प्रकार निर्जीव है जिस प्रकार साँप की केंचुली। अर्थात् जिस प्रकार साँप निकल के चला जाता है और उसकी निर्जीव केंचुली पड़ी रह जाती है इसी प्रकार असली मन श्याम के साथ चला गया और यह मन की केंचुली हमारे अन्तस् में रह गई है जो किसी काम की नहीं है।

विशेष—इस पद में उपमालंकार है।

११९ उद्धव द्वारा प्रस्तुत किया हुआ योग किसी प्रकार से ग्राह्य भी हो सकता था परन्तु गोपियाँ कहती हैं कि लाख समझाने पर भी हमारा मन बार-बार उचटकर नन्दलाल के चरणों में ही पहुंच जाता है। वे कहती हैं—उद्धव ! जो योग की बात तुमने हमसे कही हैं वह हमने बड़ी कड़ाई के साथ अपने मनको समझाई। हम अनेक युक्ति और यत्नो से उसे पकड़ के उस अच्छे मार्ग के पन्थ तक लाए पर वह तो उस मार्ग को छोड़के भटकता हुआ जहाज के पक्षी के समान हरि के ही पास जा लगा। तुम जिसे अति-हितकारी बताते हो वह हम सब को अहितकारी प्रतीत होता है। नदी और ताल के पानी से हवन करने से क्या आग कभी तृप्त हो सकती है वह तो हवि के हवन से ही सन्तुष्ट होती है। इसलिए अब ऐसा उपदेश दो जिससे प्राणो मे जान पड़े। किसी एक बार सूर प्रभु कृष्ण मिल जावें फिर तुम जो चाहो सो करना पर कम से कम एक बार उन्हें जरूर मिलादो।

विशेष—इस पद में उपमा एव दृष्टान्त अलकार है।

१२० गोपियाँ उद्धव से लाये हुए योग को अपने लिए नितान्त अग्राह्य बताती हैं। इस निरर्थक चीज को भी उद्धव परमावश्यक समझे बैठे हैं। इस-लिए वे उन्हें बनाती हुई कह रही हैं—उद्धव ! देखो इस योग को कहीं भूल न जाना। इसे खूब अच्छी तरह गाँठ मे बाँध लो देखो कहीं गाँठ छूट न पड़े नहीं तो योग कहीं गिर जायगा और तुम हाथ मलते रह जाओगे यह तुम्हारी

चीज बड़ी अतुलनीय है। मधुकर! इसका रहस्य तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं जानता। यह ब्रजवासियों के काम की नहीं है इसके लिए तो तुम्हारे ही यहाँ जगह है। देखिए जो हमारे प्रियतम ने बड़े प्यार के साथ हमारे लिए भेजा है वह हम तुम्हें भेंट कर रही हैं। क्योंकि (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि) हमारे लिए तो यह जहर भरे हुए नारियल के समान है और हम इसे हाथ जोड़के दूर से नमस्कार करती हैं।

विशेष—इस पद में उपमालकार है।

१२१ गोपियो ने जब इस प्रकार से योग को दुरदुराया तो उद्धवने कहा होगा कि तुम योग को अपनाती नहीं और कृष्ण भी अब आने से रहे। फिर तुम्हारे निरवलम्ब मन के लिए मरण को छोड़कर अन्यत्र शरण कहाँ है? इसलिए हम तो तुम्हें जीवनोपाय बताने आए थे। आगे तुम्हारी इच्छा। इसके प्रत्युत्तर में गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव! सच्ची प्रीति मरण की परवाह नहीं करती। प्रीति के कारण ही पतगा आग में कूद कर प्राण दे देता है और जलते हुए अपने अङ्गों को जरा भी आग से हटाता नहीं है। प्रीति के कारण ही कबूतर आकाश में ऊँचा चढ़ जाता है और गिरते हुए फिर अपनी सँभार नहीं करता। प्रीति के वश भौंरा केतकी के फूलो में निवास करता है तथा उसके काँटों की चोट की परवाह नहीं करता (मिलाइये—डरै न काहू दुष्ट सों जाहि प्रेम की बान। भौंर न छोड़े केतकी तीखे कण्टक जान॥) सच्ची प्रीति और दूध के मिलन के समान है जो ऐसे एक रस मिलते हैं कि आत्मभाव को बिलकुल जला डालते हैं। वे बिलकुल अभिन्न और एक हो जाते हैं कि जरा भी पार्थक्य नहीं रहता। इसी दूध और पानी की मित्रता का वर्णन करते हुए भर्तृहरि लिखते हैं—क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताःपुरा तेऽखिलाः, क्षीरेतापभवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः। द्रष्टु पावक मुन्मनस्तद भव दृष्ट्वा तु मित्रापदं, युक्त तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी।) अतः ऐसी है पानी और दूध की प्रीति। हिरण की भी सरस नाद से सच्ची प्रीति है—जिस सरस नाद पर मोहित होके वह ऐसा आत्म-विभोर हो जाता है कि शिकारी द्वारा बाण मारने की वह किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करता। इसी प्रकार सच्चा प्रेम माता का पुत्र के प्रति होता है। माता बच्चे के प्रेम मे अपना

सर्वस्व त्याग देनी है । गोपियो ने उद्धव से कहा कि उद्धव ! गोपियो का प्रेम भी सूर के श्याम से इसी प्रकार का है । बताओ वह कैसे हटाया जा सकता है । निर्गुण के उपदेश से उसका हटाना सर्वथा असभव है ।

विशेष—इस पद मे दीपक अलङ्कार है ।

१२२ योग का उपदेश गोपियों को कृष्ण की अनुरागमयी प्रकृति के इतना विपरीत लगता है कि वे उद्धव पर घोर अविश्वास करती हुई कहती हैं—

उद्धव ! जाओ हम तुम्हे खूब जान चुके हैं । श्याम ने तुमको यहाँ नहीं भेजा है । हो सकता है उन्होंने योग का सदेश किसी दूसरे पर पहुँचाने के लिए कहा हो और तुम जाते जाते रास्ते मे भटक के यहाँ दूसरे स्थान पर आ पहुंचे हो । जरा सोचो तो तुम ब्रजवासियो के लिए योग का उपदेश दे रहे हो तुम्हें बात करने का भी शऊर नहीं है । तुम्हें नहीं मालूम किस मण्डली में कैसी बात करनी चाहिये । हमें तो तुम्हारा ज्ञान बहुत बड़ा नहीं जच रहा है । तुम तो एक नए ढग के अज्ञानी हो अर्थात् ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए भी निरे अज्ञानी हो । हमसे जो कुछ तुमने कहा है उसे मन में रखके ज़रा विचार तो करके देखो । कहाँ तो अबलाए और कहाँ योगियो की नग्नता की दशा ज़रा सोच के दोनों की सगति मिला करके तो देखो । तुम्हें अपनी कसम है सच बताना हम यह आखिरी बात तुमसे पूछती है । क्या जब सूर के श्याम ने तुम्हें यहाँ भेजा था तब कुछ मुसकराये भी थे ? यदि हाँ तो उस मुसकराहट के व्यंग्यार्थ को समझने की चेष्टा करो तो अच्छा हो ।

१२३ गोपिया कहती हैं कि हमारे लिए अननुरूप और कृष्ण की प्रकृति के इतना विरुद्ध यह योग तुम से सुनकर हमे कृष्ण की मसखरी याद आरही हैं । हमारा विचार है कि तुम्हें भी बहुरूपिया बनके दूसरों को डराने की आदत है । जो कुछ कहते हो सो हृदय से नही गले के ऊपर से ही कह रहे हो । गोपियाँ इसी आशय से उद्धव से कह रही है—

उद्धव ! तुम सचमुच ही श्याम के सखा हो । हमें मालूम होता है कि तुमने राह के बीच से ही यह मित्र बनने का स्वाँग भर लिया है । कुछ भी हो पर तुम भी अपने विचारों में कच्चे प्रतीत होते हो । जैसी तुमने हमसे कही यदि कहीं और किसी से कहते तो तुम्हें कहने की ऐसी सज़ा मिलती कि पछ-

ताना पड़ता। यहाँ तो हम लोग समझ रहे हैं कि यह सब तुम स्वाग भरके बनावटी बातें कर रहे हो। वरना जो तुम्हारी बातें सच कर के ग्रहण करतीं तो तुम अपने प्रियतम को छोड़कर दूसरे पति को अपनाने को कहने के उपलक्ष में अच्छा पुजापा प्राप्त करते अर्थात् तुम्हारी खूब धुग पूजा होती। अब अच्छाई इसी में है कि तुम इन्ही पैरों मथुरा को पधार जाओ। यह योग यहाँ कहा लिए घूमते हो। सूर कहते है कि उद्धव ने ज्योही गोपियों का यह कथन सुना त्योंहीं उनके सामने सिर झुका दिया। उनके कथन से उनकी आँखे खुल गई और पश्चात्ताप करते हुए उन्होने क्षमायाचना की। गोपिया उद्धव के लिए उपदेश्य नहीं रह गई वे एक यथार्थ आदर्श बन गईं जिससे उद्धव की शिरोधरा श्रद्धा से स्वतः झुक गई।

विशेष—वक्रोक्ति अलङ्कार है।

१२४ गोपियाँ उद्धव से प्रार्थना करती हैं कि कृपया कृष्ण से आप ब्रज की यथार्थ दशा वर्णन कर दे ताकि वे यहा पधारें और हमे पुनर्जीवन प्राप्त हो। वे कहती हैं कि— उद्धवजी! आप व्रज की दशा देखे तो जा रहे हैं। आप श्रीकृष्ण से इस विरह के उपद्रव को ठीक-ठीक वर्णन कर देना। कहना कि आपके वियोग मे व्रजवासियो के नेत्रो से कुछ दिखाई नहीं देता न कानों से कुछ सुनाई पड़ता है। श्याम के बिना सब आसुओं की बाढ़ में डूबे जा रहे हैं और साधारण बात भी लोगो को दुःसह ध्वनि के समान असह्य है। आना है तो शीघ्र ही आइये ताकि व्रजवासियो के शरीर मे प्राणो का पुनः प्रवेश हो जाय। हे सूर के प्रभु (श्रीकृष्ण) यदि समय चूक के मिले तो बाद में पछताना पड़ेगा। क्योकि जिनसे मिलने के लिए आप पधारेंगे वे रहेंगे ही नहीं।

विशेष—अतिशयोक्ति अलकार है।

१२५ योग के दुरदुराने से निराश हुए उद्धव से गोपिया परामर्श दे रही हैं कि आप निराश न हो। आप यह योग शहर मे ले जावे वहाँ इसके गाहक आपको मिल जायँगे। इसी आशय से वे कह रही हैं—

हे उद्धव! तुम शीघ्र ही मथुरा जाओ। देखो अपना योग सम्भाल कर रख लो। इसे लेजा के वहीं बेचो जहाँ लाभ की आशा है। हम तो श्याम की वियोगिनी अबलाए हैं हरि के बिना हमारा गुजरा और कहाँ हो सकता है।

तुम्हें व्यवसाय वहीं करना चाहिये जहाँ पर कम से कम तुम्हारी लगाई हुई पूंजी तो वसूल हो ही जाय कुछ लाभ भी खास हो। यदि ब्रज मे नहीं बिका तो कोई बात नहीं। निराश मत होओ नागरी स्त्रियो को जाके बेचो। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव को आशा बँधाते हुए कहा कि तुम पछतावा न करो नागरी स्त्रियाँ इसे सुनते दी ग्रहण कर लेगी।

विशेष—इस पद में अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है।

१२६ योग का उपदेश सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि—हे उद्धव! अब हमें कुछ २ समझ मे आया है। आप जो हमारे लिये योग लाये हो यह आपने बड़ा ही अच्छा किया। एक तो हम वैसे ही श्रीकृष्ण के वियोग में जल रही थीं आपके इस सन्देश को सुनकर हम और भी जल रही हैं। अब यहाँ से चलते बनिए। अब जले पै नमक मत छिड़को हमे तो तुम्हें देख के डर लगता है। हमारे प्रियतम कृष्ण ने तुम्हें चतुर समझ के तुम्हारे हाथ जोग की पत्री दी परन्तु तुमने आके उनकी आशा को निराशा मे परिणत कर दिया। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि उद्धव! हम तो तुम्हारी बात सुनके दहल गई हैं।

१२७ उद्धव के योग सन्देश को सुनकर गोपियाँ अत्यन्त व्यथित हुई। वे दुःखित होके उन्हे बुरा भला कहने लगीं। वे कहती हैं—

उद्धव! तुम्हारी बात हमने सुनली। धन्य है तुम्हें! तुम कृष्ण की कुशलता क्या लाए तुमने तो यहाँ घर-घर मे गडबड़ी मचादी। उद्धव के कथन की यह आलोचना सुनके एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि अरे इसे कहने भी दो हमारा क्या बिगाड़ लेगा। थोड़ी देर में ही इसका कथन यो ही प्रभाव हीन होकर विस्मृत हो जायगा। जिस प्रकार कोई चीज़ जल कर राख बनके उड़ जाती है ठीक इसी प्रकार इसका भी उपदेश हवा मे उड़ जायगा। हमने तो इन्हें आते ही जान लिया था कि ये बड़ हजरत है हमेशा खूब ओछा तोलने वाले हैं अर्थात् सदा अन्याय और कपट की बाते करने वाले हैं। जिनके लिये हम कहने सुनने के सोच (सकोच) में रही अर्थात् जिन्हें कुछ भी कहने में हम संकोच करती रहीं वे बहुत अमूल्य गुणी निकले अर्थात् वे बड़े घुटे हुये निकले

सूर कहते हैं कि अन्त मे वह बोली कि हमने इनकी जाति पहिचानली ये बड़े लबार और वकबादी हैं।

१२८ उद्धव के योग संदेश को सुनके गोपियाँ कहती हैं कि योग हमें किसी भी दशा में अभिमत नहीं। जिस प्रकार मधुप पद्म को छोड़कर गाँव में रहना नहीं पसन्द करता उसी प्रकार हम कृष्ण से अलग होकर किसी की उपासना नहीं अपना सकती हैं। इसीलिए वे कहती हैं—

हे उद्धव ! ऐसी बात मत कहो। हमारे बार-बार मना करने पर भी तुम अपनी ही जोते चले जा रहे हो। जैसे सन्निपात में किसी को जक लग जाती है और वह अण्डबण्ड वके ही चला जाता है। ठीक इसी प्रकार तुम भी अनर्गल प्रलाप किए जा रहे हो। तुम्हारे मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। रोगी वैद्य दूसरे की चिकित्सा क्या करेगा इसलिए उद्धव ! तुम पहले अपना इलाज करो तब औरो को शिक्षा दो। 'रासि पराई राखता अपना खाया खेत। औरन को पर-बोधता मुख में परया रेत' वाली बात मत करो। मेरी कही मानो तो कहीं जम करके घर क्यो नहीं बना लो ? इस प्रकार चक्कर काटते रहने से क्या लाभ ? यदि तुम पद्म पराग को छोड़कर कहीं गाँव में निवास करलो तो (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि) हम भी क्षणभर का उनका सामीप्य छोड़के तुम्हारे कथन का पालन करके देखेंगी। इस पद मे भ्रमर और उद्धव के अभिन्न होने से गोपियाँ उनमे भ्रमर का आरोप करके कहती हैं कि यदि तुम पद्म के पराग से उदासीन हो करके दिखादो तो हम भी उन्हें छोड़ देखेंगी। परतु इस पद्य में मधुपवाची शब्द कोई नहीं है। अतएव यदि उद्धव के ही लिए इस कथन को लेने का आग्रह हो तो इन पक्तियो का यह अर्थ करना उचित होगा कि उद्धव यदि तुम उनके चरणकमल के पराग से उदासीनता करके दिखादो तो हम भी यह करके देखलेंगी। इस अर्थ के लिए ५६ वें पद में आई हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेष द्रष्टव्य है—'मन जु तिहारो हरि चरनन तर अचल रहत दिन-रात। सूर स्याम ते जोग अधिक केहि कहि आवत बात।' ......परन्तु फिर भी प्रथम अर्थ अधिक अच्छा है। इस प्रकार का उद्धव और मधुप में अभेद कितने ही पदो मे पहले आ चुका है। देखिए—पद ११६, उद्धव से कहना प्रारम्भ किया और पद के बीच में उनके लिए मधुप ! सम्बोधन भी किया है।

विशेष—त्रिदोष का अर्थ यहाँ सन्निपात है। इसमें रोगी के तीनो दोष बात, पित्त और कफ प्रबल रहते हैं और वह बेहोश होकर आँय-बाँय शाँय बका करता है।

१२६ योग का उपदेश सुनाने वाले उद्धव को गोपिया बनाती हैं और उसे स्वीकार करने मे अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती हैं कि—उद्धव! आपकी चातुरी की कलई तो खूब खुल गई है। आप स्त्रियो के लिए योग लाए हैं। आपकी महत्ता और बुद्धिमत्ता तो इसीसे प्रकट हो गई। अरे ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसका पार शास्त्रो ने भी नहीं पाया है। नेत्रो के बीच त्रिकुटी की सिद्धि करके जिस ज्योति का अनुमान करते हैं वह आसान नहीं है। उसके लिए प्राणायाम पूर्वक सूर्य की ओर एक टक देखना होता है तथा मन को बिलकुल मारके रखना पड़ता है। इतनी बड़ी साधना उस कल्पित आनन्द के लिए आपके अनुरोध के कारण हम अवश्य करती। परन्तु (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि) हम करे तो करे क्या? मन तो हमारे पास है ही नहीं। वह तो हमारा साथ छोडकर हमें भुला कर चला गया है।

विशेष—काकु-वक्रोक्ति अलङ्कार है।

१३० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम आपके योग का निरादर करके आपका अपमान नहीं करना चाहती हैं। यदि किसी प्रकार हमारा मन फिर से हमे मिल जावे तो हम आपके कथन को मानने के लिए प्रस्तुत है। वे कहती हैं कि उद्धव! हम आपका आदेश पालन करने मे विवश हैं क्योकि हमारा मन हमारे अधिकार मे नहीं। वह तो वे हाथ हो चुका है। जब प्रियतम रथा-रूढ होके मथुरा सिधारे तब वे हमारे मन को भी साथ ले गए। अन्यथा क्या हम कभी भी इस योग को ठुकराने की घृष्टता करतीं जिसे आप हमारे लिए बड़े चाव से लाए हैं। हमे आपसे कुछ नहीं कहना है हम तो श्याम की करतूत पर झींक रही हैं कि हमारे मन को लेकर और यह योग भेज रहे हैं। यदि योग कराना था तो मन को भी वापिस भेजना था। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि उद्धव! तुम्हारी एक नहीं करोड़ो सौगन्द खाती है कि हम अब भी तयार हैं परन्तु हमारा मन हमे वापिस मिल जाय। शायद तुम्हारे पास हो श्याम ने योग भेजते समय मन भी हमारा तुम्हारे हाथो वापिस किया

होगा यदि ऐसा है तो कृपया वह हमारा मन हमें दे दो फिर जो कहोगे हम करने को तयार होगी परन्तु बिना मन के तुम्हीं बताओ कि योग कहाँ और कैसे रक्खा जाय।

१३१ योग की नीरसता सगुणोपासना की सरसता के आगे अकिंचित्कर हैं इसी विषय का प्रतिपादन करती हुईं गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! योग तो हमने सुना है कि बड़ा कठिन है। आपके कथन को सुनके हमें बड़ा आश्चर्य है। आप तो अपने मनमें इसे सुलभ माने बैठे हो। जिसकी रूप रेखा नहीं उसी निर्गुण निराकार का उपदेश तुम हमे दे रहे हो। (वेदो मे ईश्वर का निराकार होना—सपर्यगाच्छुक्रमकायम ब्रणमस्ना विरॅशुद्धमपोप विद्धम्। आदि-न तस्य प्रतिमा अस्ति। 'एव अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्पचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः' आदि मन्त्रो मे वर्णन किया गया है इससे व्यक्त होता हैं कि उसकी कोई रूप रेखा नही है)। उद्धव! अपना हाल बताओ कि तुम उस प्रकार के रूपरेखा विहीन निराकार का दर्शन कभी भी कर पाते हो, क्या तुम्हारा निर्गुण भी हमारे श्याम के समान अधरो पर मुरली रखके बजाता है? क्या कभी बन-बन घूम के गौओ को चराता है? क्या वह भी कभी विशाल नेत्रों से और बाँकी भौहों से देखता है? क्या कभी तुम्हारा निंर्गुण भी हमारे प्रियतम के समान नटवर वेष धारण करके त्रिभगी मुद्रा में पीताम्बर धारण करके सुशोभित होता है? सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से पूछा कि सच कहना कि जिस प्रकार हमारे प्रियतम हमे सुखी करते हैं उसी तरह क्या वह निर्गुण भी तुम्हे आनन्दित करता है? भावार्थ यह है कि वह इस प्रकार का ऐन्द्रियिक आनन्द दे ही नही सकता। स्वय उपनिषद् कहती है—पराचिखानि व्यतृणत्स्वयभू स्त स्मात् पराङ् पश्यतिनान्तरात्मन् आदि।

१३२ जैसा रोगी हो वैसा ही उपचार होना चाहिए और जैसा पात्र हो वैसा ही उपदेश उचित होता हैं। उद्धव के योग को अपने अनुरूप न देख के गोपियाँ उनसे कहती हैं कि उद्धव! हमारे योग्य शिक्षा दीजिए! आपका यह उपदेश हमारे अनुरूप न होने से हमें अग्नि से भी अधिक सतापकारी प्रतीत होता है। फिर बताइए हम इसका पालन कैसे करें? आप ही बताइए यहाँ इतनी गोपियों में इस योग को सीखने की अधिकारिणी कौनसी है? यह योग

मत उनको फबता है जो कि विरक्त योगी और यती हैं; सासारिक माया मोह से रहित है। जो कपूर और चन्दन का शरीर पर लेप करते रहे हैं उन्हे भभूत लगाना कैसे भावेगा ? सूर कहते हैं कि गोपयियो ने उद्धव से कहा कि तुम स्वय सोचकर देखो कि अन्धी आंखो मे काजल क्या अच्छा लगेगा ? ज्ञानचक्षु से विहीन पुरुषो के लिए योग कैसे उचित ठहर सकता है ?

१३३ योग का उपदेश गोपियो के लिए नितान्त विपरीत है। प्रवृत्ति में आसक्त और ज्ञान से शून्य भी यदि बातों से निवृत्ति पथ पर लाए जा सके तब तो विन्ध्याचल भी सागर में तैर सकता है (विन्ध्यस्तरेत्सागरम्) अतएव वे उद्धब से कहती हैं कि—

अरे उद्धव ! तुम उल्टी बाते क्यों कर रहे हो, तुम युवतियो को योग सिखाने आए हो। यह तो उलटी रीति है। तुम्हारी अनीति पूर्ण बाते तो ऐसी हैं जैसी गायो को हलादि मे जोतना और बैलो से दूध दुहना। अर्थात् जिस प्रकार गैयों को जोतना और बैलो से दूध दुहना असम्भव और हास्यास्पद है इसी प्रकार युवतियो से योग की आशा करना एक दुराशा मात्र है। भला चक्रवाक का चन्द्र से क्या वास्ता वह तो सूर्य से प्रसन्न होता है इसी तरह चकोर का सूर्य के क्या रिश्ता वह तो चाद पर मरता है। यदि पत्थर जल मे तैरने लगे और लकड़ी डूबने लगे तो हम आपकी इन बातो को भी नीतिसगत मान सकती हैं। सूर कहते हैं कि आखिर गोपियाँ उद्धव के उपदेश को किस प्रकार नीति एव युक्ति सगत कह सकती हैं। वे तो श्याम के अङ्ग प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य से सर्वथा विजित अर्थात् परास्त हो चुकी हैं।

विशेष—इस पद मे निदर्शनालंकार है।

१३४ गोपियाँ फिर उद्धव को यही सलाह देती है कि पात्र के अनुरूप उपदेश देने मे ही बुद्धिमत्ता है। पात्रापात्र के विवेक से शून्य उपदेश पर कोई कान नहीं करता। वह अरण्यरोदन (भयो जो वन को रोयो) के समान निरर्थक होता है। इसलिए गोपिया उद्धव से कहती है कि—

उद्धव ! पहले युवतियो की ओर आखे खोलकर देखलो तब हृदय में खूब सोच समझकर अपनी यह योग की पोटली हमारे सामने फैलाओ। ज़रा सोचो जिन केशो को केशव अपने हाथो से अनेक सुगन्धित तैलादि से सजाते थे

उन्हीं मे तुम भभूत घोलके जटाओ के साथ लगाने आए हो। जिन मुखों पर कस्तूरी और चदन का उबटन होता रहा है, जिन्हें क्षण-क्षणमें धोया और माजा जाता था उन्हीं मुखो पर राख लिपटाने को कह रहे हो यह हमे कैसे रुचिकर हो सकता है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि हमारे इन नेत्रो को तभी तृप्ति होती है जब कि ये काजल लगाके श्याम रूपी शशी के दर्शन करते है उन्हें तुम सूर्य की ओर देखने की आयोजना कर रहे, हो यह सुन-सुन के ये दुख रही है।

विशेष—इस पद मे रूपक अलकार है।

१३५ गोपिया उद्धव से कहती है कि योग की जगह हमे तो कृष्ण से मिलन की जुगत बताओ। बिना उनके हमारा जीवन खतरे में है तुम उन्हें हमसे मिलाकर सुयश के पात्र बनने की चेष्टा करो। वे कहती हैं कि उद्धव ! तुम हमें ज्ञानाजनशलाका के स्थान पर यथार्थतः अजन दो अर्थात् कृष्ण दर्शन कराओ। जिनसे हमारा प्रेम जुडा हुआ है उस श्याम रग के काजल को यहा क्यो नहीं लाते ? हे मधुकर हम रात-दिन उनके विरहानल से सतप्त होती रहती हैं हमें घरबार की कौन कहे यह तन भी नहीं सुहाता। जल से बिछुड़ी हुई मछलियो के समान हम भी उनसे विमुख होके मर रही हैं। इस मरण व्यथा का वर्णन करना असम्भव है। यह सब होते हुए भी हमने अपने दृढ़ सकल्प को खूब दृढ़ता से पकड़ रक्खा है। स्नेह को सुरक्षित रखने के लिए हमने उसे दृढ़ सकल्प के साथ इसी प्रकार बाध दिया है जैसे कपूर को सुरक्षित रखने के लिये खडिया के साथ मिलाकर बाध रखते हैं। इसलिये उद्धव तुम कम से कम एक बार सूर के स्वामी श्याम को मिलादो और हमें जिलाने की कीर्ति कमालो।

विशेष—इस पद मे रूपकातिशयोक्ति तथा उपमालकार है।

१३६ उद्धव का योग सदेश इतना उपहासास्पद है कि गोपियाँ उनकी इस वेतुकी बात पर ऐसी दुरवस्था में भी हँस पड़ी और कहने लगीं कि उद्धव तुमने यहाँ आके बड़ा अच्छा किया। इन बेढङ्गी बातों को बार बार कहके इस कठिन दुःख में भी ब्रज के लोगो को हँसा दिया। हा ! अब हमारा रमणीय वृन्दावन में रहने का सुख निरर्थक है और निरर्थक है दही भात का कलेऊ।

क्योकि कृष्ण तो कुब्जा पर लट्टू हैं। दोनो ही एक तार मिले हैं। खैर जो होना था सो हुआ अब कृपा करके मयूर पख का मुकुट, मुरली तथा पीताम्बर आदि हमारे ब्रज का सामान भिजवा दीजिए और अपनी भेजी हुई जटा समूह, मुद्रा भस्म और अधारी उन्हें ले जाके सौंप दीजिए। वे ठहरे बड़े आदमी और आप हैं उनके मित्र! आप लोगो के लिए अनीति करना बड़ा सहज है (देखिये—समरथ को नहिं दोष गुसाईं–तुलसी) सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि कृष्ण के क्या कहने हैं, उनके सभी ढंग भले ही कहने चाहिए (हों चाहे कैसे ही)। देखो न उनकी बेढंगी बाते—दुनियाँ तो पतित पावन गंगाजल से प्रेम करती हैं पर आप यम की बहिन कालिन्दी के जल से। हो भी क्यों न "मुरारे स्तृतीयः पन्थाः।"

विशेष—इस पद में परिवृत्ति अलकार है।

१३७ गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव! हाय तुमसे हमारा वासना रहित शुद्ध प्रेम भी नहीं देखा जा सकता। जो योग का उपदेश देकर इसे उखाड़ फेकना चाहते हो। जहा बुराई हो उसे दूर करो। इसलिये वे उनसे पूछती है कि उद्धव! हम तुमसे एक रहस्य पूछ रही हैं। तुम बड़े ज्ञान पाड़े हो सबके मन की जानने का दावा किए बैठे हो तो सचमुच तुम्हें घट-घट का ज्ञान है या यों ही ठगमूरी बाधे डोल रहे हो अर्थात् ठग विद्या जमाके भोले भाले लोगों को बहकाते फिरते हो यदि जानते हो तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि कृष्ण का पीताम्बर ही पीत-ध्वजा है जो उनके हृदय में विद्यमान कुछ न कुछ राग की विद्यमानता को बताता है। उधर कुब्जा की लाल ध्वजा है जिससे राग का व्यभिचार प्रकट होता है। अर्थात् कुबड़ी का राग इतना रजोगुण परिपूर्ण है कि वह जग जाहिर हो रहा है परन्तु ब्रजजनों की सतोगुण की वैजयन्ती फहरा रही है। उनका शुद्ध सात्विक प्रेम है। परन्तु उद्धव! तुम्हारे यहाँ वह शुद्ध सात्विक प्रेम अपयश का कारण समझा जाता है जिससे तुम्हारे कृष्ण पल्ला छुड़ाना चाहते हैं। और कुब्जा का राग सदोष होने पर भी वह उन्हें प्यारी लगती है। उनकी मुहब्बत मन बहलाव के लिए लिए है परन्तु यहाँ सब शीलवान हैं और प्रेम का अटल ब्रत धारण करने वाले हैं। भावार्थ यह है कि हमारे लिए प्रेम मन बहलाव की वस्तु नहीं है वह हमारे जीवन का एक

ठोस आधार है ! साथ ही हमने प्रेम के अटल व्रत को शील के साथ-साथ निभाने का निश्चय किया है। यदि दोनो में से एक बात भी शिथिल हो हो जाती तो हम भी अपने मन बहलाव के लिए तुम्हारे निर्गुण को ही अपना लेतीं। यह सब होते हुए भी उद्धव ! हमारे प्रेम को त्याज्य बता रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि वास्तव मे बात यह है कि उद्धव झूठी बातें बनाने में और लबारपन में अपना जोड़ नहीं रखते। इसीलिए तो निर्दोष को त्याज्य और सदोष को उपादेय करके बखान रहे हैं।

विशेष—प्रतिवस्तूपमालङ्कार है।

१३८ कुब्जा और कृष्ण के प्रेम पर व्यंग्य करते हुए गोपियो ने उद्धव से से कहा—

उद्धव ! इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। यह तो अपने मन की रुचि की बात है। किसी को कुछ अच्छा लगता है तो किसी को कुछ। कितने ही सङ्कट क्यो न हो पर अपना प्यारा प्यारा ही लगता है। पतगा दीप में जल जाता है परन्तु वह यह जानकर भी हटता नहीं है। बार २ दीपक से लिपटता ही जाता है। प्यारा कहीं भी रहे परन्तु उसे चाहने वाला सदा उसी को ध्यान में रखता है। हे मधुकर ! देखो चकोर पृथ्वी पर रहता है और उसका प्रियतम चन्द्रमा आकाश में घूमता है। परन्तु वह सदा उसी की ओर अपलक नेत्रों से देखता रहता है उसे दूसरा नहीं भाता। हमारा भी ध्यान कृष्ण पर ऐसा ही अटल है। वे भले हीं न आवें पर हमारी आँखे दूसरे को नहीं देखना चाहतीं। देश और काल प्रेमी के प्रेम में न तो प्रतिबन्ध ही उपस्थित कर सकते हैं और न उन्हें उत्तेजना ही दे सकते हैं। मेंढ़क सदा पानी में रहता है और कमल का पड़ोसी है पर कमल के पास भी नहीं फटकता परन्तु भौरा कमल के प्रेमपाश में बँध जाता है। अपने तीक्ष्ण दांतो से लकड़ी तक को काट कर उसमें घर बना लेता है परन्तु प्रेमवश कमल की कोमल पंखड़ियों को काटता नहीं उनके भीतर बन्द हो रहता है। और उद्धव ! रात दिन पानी बरस कर पृथ्वी को तृप्त कर देता है पर पपीहा फिर भी स्वाति की बूँद के लिए ही रट लगाए रहता है। हमारा प्रेम ऐसा दृढ़ है तो कृष्ण को इससे क्या। सेही अमृतफलों की अवहेलना करके कड़ुई घीया के लिये ललचाया करती है इसी

प्रकार कृष्ण का कुब्जा पर अनुराग है और इन अटल प्रेमिका गोपियों को देखकर वे शर्माते हैं। इनके प्रति प्रेम नहीं दिखाते।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(मिलाइए—काठफोरि घर कियो इत्यादि। बन्धनानिखलु सन्ति बहूनि प्रेम रज्जु कृत बन्धनमन्यत् दारु भेद निपुणोऽपि षडंघ्रिर्भवति पङ्कज कोशन्निबद्धः)

१३९ राधा उद्धव से कहती हैं कि जब कृष्ण ब्रज में थे तो उनसे कितना प्यार करते थे कि उसकी सुध आते ही वे आज भी व्यथित हो जाती हैं। वे कहती हैं उद्धव! कृष्ण जी के प्रेम की व्यथा बड़ी दाहक है। कहाँ वह प्रेम और कहाँ आज यह रूखा सन्देशा! जब वे यमुना कूल के कुंजो में हमसे रंग रेलियाँ करते हुए सब सुध बुध खो बैठते थे उस विस्मृति की याद अब उन्हें भूल गई। ब्रज में रहते हुए नए पेड़ों की छाया में वे हमें गोद में भर लेते थे। यमुना कूल के कुंजो मे प्रकट की हुई उस प्रीति का हम कैसे वर्णन करें? वे हमारी बाँहें पकड़ कर बन में झूलते थे वह अद्‌भुत शोभा आज भी हमारे नयनो को तृप्त कर रही है। सूर कहते हैं कि राधा ने व्यथित होके कहा कि उन्होने जो अपने हाथो मेरे वक्षःस्थल पर माला भेंट की थी वह तो याद आते ही एक कसक उठा देती है।

१४० अपने प्रेम की दृढ़ता और सात्विकता वर्णन करती हुईं गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि–हे मधुकर! हम वे बेले नहीं हैं जिन्हें तुम बिना प्रेम के ही अपनाते और त्यागते रहते हो। उनके कुसुमों के मधु को ले ले के खिलवाड़ करते हो। हम तो वे बेले हैं जिन्हें बलवीर के भाई कृष्ण ने बाल्य काल से ही अपना स्नेह जल देकर पाला पोसा है। प्रातःकाल ही उठकर यदि प्रियतम का स्पर्श न मिला तो विकसित होने में भी अपनी हित हानि समझने वाली हैं। ऐसी ये लताएँ वन मे बिहार करती हुई श्याम तमाल (कृष्ण) से उलझ चुकी हैं। हमारे प्रेम पुष्प की मधु और पराग केवल गोपाल मधुप के लिए ही है। ये लताएँ ऐसी धीर (दृढ़) हैं कि योग की वायु इन्हें विचलित नहीं कर सकती। क्योंकि श्याम तमाल के न होने पर भी उसकी रूप शाखा उन्हे सहारा दे रही हैं। इसीलिए (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) हमारे हृदय ऐसे दृढ़ हैं कि

उनका पराग झड़ नही सकता और दूसरा कोई उसका उपभोग कर नहीं सकता। ये लताएँ केवल पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करने वाली है।

विशेष—इस पद मे अन्योक्ति एव रूपक अलकार है।

१४१ उद्धव से निर्गुण का उपदेश सुनकर गोपियाँ उनसे कह रही हैं कि यह निर्गुणाराधना और योग साधन उनके अनुरूप नहीं है। उनके मन मे कृष्ण का अनुराग है फिर उसमें निर्गुण कैसे समा सकता है? सगुण रूप अधिक उपयोगी है इसलिए उसे निकाल फेकना बुद्धिमत्ता नही है। अतएव वे कहती हैं कि उद्धव! श्रीकृष्ण हमारे भगवान् हैं जिनका ध्यान हम अपने हृदय के अन्दर करती हैं। उनको छोड़ के अन्य के सामने हमने कभी सिर नहीं झुकाया। योगियो को योग का उपदेश जाके सुनाओ जिनके शायद दस बीस मन होगे किसी एक मन में योग भी पड़ा रहेगा। भाव यह है कि जिनका मन किसी एक जगह स्थिर नही हुआ है इधर उधर भटकता फिरता है उनके लिए योग का उपदेश सार्थक हो सकता हैं। यहाँ तो तीसो दिन अर्थात् सदा ही यह एक मन उस एक मूर्त्ति मे सलग्न रहता है। उद्धव! तुम अपने निर्गुणोपदेश को इधर-उधर बखेर कर क्यो नष्ट करते फिरते हो? जहाँ उपयोगी नहीं वहाँ इसका उपदेश देके इसे नष्ट करना ही है। तुम्हारे योग में ईश की प्राप्ति है हमें सगुणोपसना में श्याम की प्राप्ति हुई हैं। सूर कहते है कि गोपियाँ कहती हैं कि प्रभुवर नन्दनन्दन से बढ़कर और कौन जगदीश्वर हो सकता है। उस सर्वश्रेष्ठ जगदीश्वर को हम प्राप्त कर चुकी है फिर हमे कौन प्राप्य रहा जिसके लिए हम योग साधन को अपनावें।

१४२ गोपियों के बार बार मना करने पर भी उद्धव! योग का गीत गाते ही रहे। तब गोपियो ने झल्लाकर योग साधन की निरर्थकता बताते हुए उद्धव से कहा कि—हे मधुकर! आप श्याम जू के मित्र हैं। श्याम के उपासकों को आपका श्याम के समान ही आदर करना चाहिए। अतएव आपके उपदेश पर हम जो कुछ टीका टिप्पणी कर रही है उसके लिए आप हमें क्षमा करे। हम प्रणाम पूर्वक आपके सम्मुख निवेदन करने की धृष्टता कर रही हैं। कृपया बताइए कि क्या कभी कोई सोने की चिड़िया को अपनी डोरी से बाँध के उससे खेल सका है? आकाश मे उड़ते हुए धूओं के घर में कोई अपनी बैठक

बना सका है ? आकाश से तारे तोड़कर पृथ्वी पर ले आना किसी के वश की बात नहीं । बौर की माला अपने हाथ से किसी ने नहीं गूथ पाई । बिना पानी के नाव चलती भी कभी किसी ने नही देखी और उस नाव पर बैठ के कोई नहीं गया । इसी प्रकार कृष्ण से दृढ़ प्रेम की प्रतिज्ञा करके फिर किसकी ताव है जो समाधि लगा सके । सूरदास कहते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि आप जानते हैं कि यह असम्भव है फिर बार २ उसी उपदेश को सुनाने के लिए आने में कौनसी बुद्धिमत्ता है ? जाइए अपना काम देखिए ।

विशेष—इस पद मे निदर्शनालङ्कार है ।

१४३ गोपियाँ योग की अनुपयुक्तता बताती हुईं उद्धव से पुनः कह रही हैं कि अरे मधुकर ! जरा सोचो तो मन कोई दस बीस थोड़े ही है ? वह तो एक ही है । उसे भी श्रीकृष्ण जी अपने साथ ले गये हैं, अब आप योग की शिक्षा किसे दे रहे हैं ? अरे धूर्त्त ! बे तुकी बात करने वाले स्वयं रस के लोभी ! ज़रा औरतों की दशा देख के बात करो । विरहाग्नि से शरीर को सन्तप्त करके बार २ जले पर नमक क्यों छिड़क रहे हो ? अध्यात्मवाद का उपदेश देके परमार्थ सिद्धि की राह बताने से हमारी विरह व्यथा नहीं मिट सकती । भला संनिपात की उग्र अवस्था में जब कफ घर घराने लग जाता है तब उसे दही खिलाना कहाँ तक उचित है ? वह तो उसके सर्वनाश का ही कारण होगा । इसी प्रकार विरह में परमार्थ का उपदेश हमारे लिये उलटा पड़ेगा । हृदय को शान्ति नहीं और अधिक सन्ताप ही बढ़ेगा । सूर कहते हैं कि गोपियाँ ने उद्धव से कहा कि जब हृदय मे सुन्दर सलोनी श्याम की मूर्त्ति व्याप्त हो तो उसे छोड़कर निर्गुण के दुस्तर सागर का अवगाहन कर सकना किसकी सामर्थ्य है । अतएव आपका यह निर्गुण का उपदेश हमारे लिए सर्वथा निरर्थक है ।

विशेष—इस पद में निदर्शनालङ्कार है ।

१४४ गोपियाँ निर्गुण गाथा से व्याकुल होके उद्धव से उसके लिए मना करती हुई कहती हैं । अरे मधुकर ! इन बेढगी बातो को बन्द करो । तुम बार-बार वही शिक्षा देते हो जिससे हमें दुःख प्राप्त होता है । हम तो प्रतिदिन प्रातःकाल उठ करके तथा नित्य नहाते सोते सभी समय तुम्हें शुभ आशीर्वाद देती हैं परन्तु तुम रातदिन अपने मन में हम ब्रज युवतियो के लिये नए दाव

पेच सोचते रहते हो। तुम से न जाने बार बार वही बात कैसे कही जाती है। कम से कम इस सम्बन्ध से ही कुछ जान लेते तो अच्छा था। (सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि) तुम कम से कम यह जानकर कि जो श्याम रग में रगी हुई हैं उन पर फिर लाल रग चढ़ना असम्भव है चुप रह जाते तो अच्छा था।

१४५ गोपियाँ उद्धव से अपने प्रेम की दृढ़ता के विषय मे कह रही हैं। वे कहती हैं कि हमारा प्रेम भ्रमर के प्रेम के समान कपट पूर्ण नहीं है। उसमें स्थिरता और गम्भीरता है। इसीलिए वे प्रियतम के वियोग से इतनी दुखी हैं। यदि भ्रमर की भाति वे भी बहुरगी होती तो इतनी व्याकुलता न होती। इसी लिये वे कहती हैं कि हे मधुप ! तुम्हारा परिचय (प्रेम) हमारे प्रेम से दूसरे प्रकार का है। तुम्हारा जो प्रेम फूलो के प्रति है उसमें फूलों की मर्यादा नही बधी है। एक फूल के गध और मधु का स्वाद लेके दूसरे पर जा बैठे और दूसरे से फिर तीसरे पर। यह बन्धन नहीं कि एक के नीरस होने पर तुम्हें वियोग सतावे क्योंकि तुम्हारे लिए एक नहीं अनेक हैं। अनेक वन और उपवनो में अनेक पुष्पो में से एक जो कुम्हला भी जाय तो भी उनकी कमी नहीं है। वन में अनेक सघन फूल फूले हैं किसी पर भी जाकर अपना मनो विनोद कर सकते हो। परन्तु यहा तो एक ही आधार है वह भी हमें प्राप्त नहीं है। अतएव हमारा हृदय कामानल से सतप्त क्यो न हो ? तुम आके सान्त्वना देने की जगह हमारे जले हुए हृदय पर नमक छिड़क रहे हो। इस योग का सन्देश हमारे हाथ मे देके हमारे तन मे और भी जहर चढ़ा दिया है। जिनकी शिरोमणि छिन गई हो उन मे कान्ति कहाँ से आ सकती है। शायद इसी कान्ति हीनता को अपने हृदय मे अनुमान करके सूर के प्रभु नद-नन्दन ब्रज छोड़ गए हैं। वे तो आभा के साथी हैं चमक दमक और रूप के साथी हैं पर हमारा तो और कोई अवलम्ब ही नहीं है। हम क्या करें ?

विशेष—अन्योक्ति अलंकार है।

१४६ श्री कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर ! श्याम हमारे चोर हैं। उन्होने अपनी माधुरी मूरति की झलक दिखाके और नयनों के कटाक्ष से हमारा मन चुरा लिया है। हमने

उन्हें हृदय में सम्पूर्ण प्रेम और प्रीति के बन्धनो से बॉधकर रक्खा परन्तु वे सब बन्धन छुड़ाके चलते बने और प्रत्युपहार मे अपना मन्दहास दे गए। हम रात को सोते-सोते उनकी इस माधुरी को सोच-सोच के चौक पड़ीं। अर्थात् रात को उसी माधुरी मुस्कान के चक्कर में पड़ी रहीं कि प्रातः मुझे ये दूत महाशय मिले। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कृष्ण के दूत उद्धव से कहा कि देखो भाई नन्दकिशोर अपने मन्दस्मित से हमारा सर्वस्व ले गए हैं। आप न्याय करना चाहते हैं तो उन्हें बुलाके हमारा माल पहले वापस कराइये।

१४७ योग का उपदेश और निर्गुण की आराधना गोपियों के लिए कभी भी अनुरूप नहीं हो सकती है। इस बेतुकी बात पर उन्हे अत्यन्त दुःख होता है इसलिए उद्धव से कह रही हैं—अरे मधुप ! जरा सोच-समझ के मुँह से बात निकाला करो। तुमने तो नशा पी रक्खा है इसलिये तुम विवेकशून्य हो रहे हो कुछ भी सूझता नही है। ज्ञान के गर्व से यों ही अकड़ रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जो मध्यस्थ होता है उसका सत्य बोलना कर्तव्य होता है। मुँह देखकर न्याय करना मध्यस्थ का काम नहीं है। चाहे राजा हो या या रक किसी की लल्लो-चप्पो या लगालेसी की बात कहना मध्यस्थता के विरुद्ध है। परन्तु तुम्हारा अजब हाल है तुम कुछ कहना चाहतेऔर मुँह से कुछ निकलता है। दूसरों की निन्दा करने वाले हो इसीलिए तुम दोषमुक्त नहीं, अपितु दोषी ही ठहरोगे। ब्रज की युवतियों को योग सिखाके तुमने अच्छी कीर्ति कमाई है। हम भौरे को खूब जानती हैं। वह बड़ा रसिया है उसे ये योग की युक्तियाँ कहाँ से मिल गईं ? उसके इतना अधिक रसिक होने के कारण ही परम गुरुविधाता ने उसका सिर मुँड़वाकर राख पोतकर मुँह काला कर दिया है। परन्तु विधाता ने सब करम कर दिए फिर भी उसकी आँखे नहीं खुलीं। जो कोई दूसरे के लिए कुआ खोदता है वह स्वय उसी कुए में गिरता है। दूसरे की बुराई करने वाले के हाथ स्वयं बुराई लगती है। (देखिए खाड़ खने जो और को ताको कूप तयार) मधुकर ! तुम्हें सजा तो मिल गई पर तुम बाज नहीं आए। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि कृष्ण हमारे घट-घट के वासी हैं हमारी व्यथा को जानते हैं। फिर भी ऐसे दूतो को भेजकर हमारी छीछालेदर में योग देते है तो अब हम किससे शिका-

यत करें क्योंकि भाई ! "राजा हो चोरी करे न्याय कौन पै जाय" वाली बात है। अतएव किसी की भी शिकायत करना व्यर्थ ही है। वरना उस समय अक्रूर ने कृष्ण को मथुरा ले जाके और अब इन उद्धव ने योग का संदेशा देके जैसे हमारे हृदय को सतप्त किया है वह हमी जानती हैं।

१४८ कोई गोपी उद्धव से कहती है कि हम लोग किसी न किसी तरह आपके योग को अपनाकर आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हैं। परन्तु हमारी आखें तो साथ देती ही नहीं है। वे तो सगुण के लिए ही मचली रहती हैं। वे उनसे कहती हैं कि मधुकर ! तुम जो बताओ हम करने को तयार हैं। हमारे प्रियतम कृष्णजी ने कृपा करके यह निर्गुणोपासना हमारे लिए भेजी है तो मैं भी उनकी आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हूँ। रात दिन श्याम-श्याम रटने वाली रसना को काटके नौ टुकड़े करके उसे निर्गुण के हाथ सौंप सकती है। परन्तु तुम बुरा न मानो हमारी आखें हमारे काबू में नहीं हैं। तुम्हारी बताई हुई आराधना बड़ी कठोर है। उसमें जिस ज्योति का दर्शन बताते हो वह भी बड़ी अजीब है। इसलिए मैं फिर से तुमसे कह रही हूँ कि सूर के प्रभु श्याम से कह देना कि बड़ी विषम समस्या है। तुम्हारा योग हमारे लिए ऐसा दुःखदायी है जैसे केले को बेर का पड़ोस दुःखदायी होता है। इसलिए इसका अभी से निराकरण होना उचित है वरना फिर तो पछताना ही होगा। केर बेर के संग के विषय्य में कबीर कहते है—कह कबीर कैसे निभै केर बेर को संग, वे डोलत रस आपने उनके फाटर्त अङ्ग। केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर। अबके चेते क्या भया काटन लीन्हो घेर ॥

विशेष—इस पद में लुप्तोपमालकार है।

१४६ उद्धव ने जब कृष्ण के प्रेम को हटाकर गोपियो से निर्गुणोपासना की बात कही तो उन्होने उत्तर दिया कि उपदेश देना उसीका सफल है जो उसको करके दिखाये। तुम कृष्ण के प्रेम को हृदय से हटाने का उपदेश दे रहे हो परन्तु स्वयं उनके प्रेम मे लवलीन हो। इस तरह तुम्हारे 'मनस्यन्यद वचस्यन्यद्' है। ऐसी परिस्थिति में तुम्हारा उपदेश किस प्रकार कारगर हो सकता है। इसलिये हे मधुकर ! तुम तब औरो को शिक्षा दो जब पहले प्रेम की गभीरता पर खूब अच्छी तरह विचार कर लो। जब तुम्हारे लगेगी तब इसकी गभीरता

को समझ पावोगे। तब पता लगेगा कि स्नेह का घाव बड़ा कठिन होता है। तुम भी इस बात को समझते तो हो पर जान बूझ कर अनजान बन रहे हो। तुम्हारा भी मन श्रीकृष्ण के चरणों में ही अब भी विद्यमान है केवल शरीर मात्र से यहाँ गोकुल पधारे हो। यदि मन भी यहाँ तुम्हारे साथ होता तो तुम औचित्यानौचित्य का विवेक करने मे अवश्य समर्थ होते और इस प्रकार आँय बाय शाय न बकते। वास्तव मे बात भी ऐसी ही है कि पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण से वियुक्त होके किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि उद्धव! यदि हमारा कथन निराधार एवं मिथ्या है तो हम तब जाने जो तुम अब यही रहो मथुरा कभी न जाओ क्योकि साँसारिक माया मोह तो सब झूठा ही है फिर तुम्हारी मथुरा और वहां पर विद्यमान हरि से ममता क्यों है? इसलिए जिस माया मोह को हमें त्यागने के लिये कह रहे हो उसका परित्याग करके हमारी ही तरह तुम भी सदा के लिये कृष्ण वियोगी बन जाओ। यदि स्वय उस ममता का परित्याग नहीं कर सकते तब तो हमे आपके लिए यही कहना पड़ेगा कि—

परोपदेशे पाण्डित्य सर्वेषा सुकर नृणाम्

धर्मे स्वीय मनुष्ठान कस्यचित्तु महात्मनः। अथवा तुलसी के शब्दों में "पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचरहि ते नर न घनेरे।" (रामचरितमानस)

१५० उद्धव के निर्गुणोपदेश सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि महाराज यह निर्गुणोपदेश हमारे कल्याण के लिए नहीं है। यह तो कृष्ण को कुब्जा के साथ प्रेम निभाने की छूट देने का प्रपच रचा गया है। इस वास्तविकता को समझ लेने पर हमें और भी अधिक दुःख होता है। इसी आशय से वे उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर! तुम वात की वास्तविकता तो जानते नहीं। बार-वार ऐड़ी बेड़ी बाते करके हमारे हृदय को जला रहे हो। इससे तो तुम रास्ता नापो तो अच्छा है। तुम जानते हो कि जिस हृदय मे यशोदानन्दन कृष्ण निवास करते हैं उसमे निर्गुण के लिए स्थान कहाँ मिल सकता है? और निर्गुण को छोड़ कर सगुण में हमारी आसक्ति होना ऐसा ही है जैसा कि हे मधुप! तुम्हारा बन २ के फूल और पत्तियो में भटक कर उन्हें परित्याग करके सब बल्लियों से विहार करके अन्त मे कमल की पखड़ियो मे आश्रय

लेना है। तुम सब फूलो को छोड़ के कमल मे आश्रय लेते हो और हमारा मन सब पथो को छोड़के अन्त मे कृष्ण चरणो में आश्रय प्राप्त करता है। ये सब बातें हमारे समझाने की नही हैं तुम भी ये सब रामझते हो परन्तु फिर भी अपनी ही कहे जारहे हो। सूर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यह सब समझ बूझ के भी तुम्हारे आग्रह का कारण हमे समझ मे आगया। यह सब निर्गुण उपदेश हमारे कल्याण के लिए नहीं अपितु इसलिए है कि यदि कहीं कृष्ण हमारी व्यथा से द्रवित होके व्रज आगए तो कुबरी महारानी की कुशलता कैसे रह सकेगी ? उसकी कुशलता के लिए ही यह प्रपच रचा जारहा है।

१५१ कृष्ण की वियोग व्यथा की असह्यता वर्णन करती हुईं गोपियाँ कहती है—

हे कृष्ण ? तुम्हारा प्रेम प्रेम है या तलवार है। हे श्याम ! तुम्हारी उस तलवार की कटाक्ष रूपी तीव्र धार से सभी व्रजाङ्गनाए घायल हो रही हैं। यद्यपि वे आरत होके वृन्दावन के धर्म क्षेत्र मे धराशायी हो रही हैं पर फिर भी हार नहीं मानती अर्थात् तुम्हारे वियोग में सब करम हो जाने पर भी वे तुम्हारे प्रेम का परित्याग नहीं कर सकतीं। वे क्षत विक्षत होके पुण्य रण भूमि में रोती चिल्लाती रहीं और तुम्हारे चन्द्र मुख की शोभा-पानी को पी पी करके अपने जीवन की रक्षा करती रही। सूर कहते हैं कि गोपियो ने अन्त मे कहा कि हम इस अवस्था मे भी उस सुन्दर श्याम की मनोहारी मूर्त्ति की शोभा को सदा देख-देख जीतीं रहेगी। उद्धव ! अब बहुत गई थोड़ी रही ! इसके लिए अब यो ही जीने दो हमे बिलकुल मार न डालो। वियोग सन्ताप मे जलते हुए प्रेम को निभाना हमारे लिए कहीं अच्छा है। इसमे मर कर भी हमें अमरता की प्राप्ति होगी और प्रेम तोड़के निर्गुण को अपनाने में हमारा कलङ्क पूर्ण मरण होगा जो हमे स्वीकार नही है।

विशेष—इस पद मे रूपक अलकार है।

१५२ गोपियाँ उद्धव से निर्गुण का उपदेश सुनके कहती हैं कि हमारा मन मनाने पर भी तुम्हारी बात मानने को तयार नहीं। इसलिए तुम हमे ऐसे ही रहने दो हमे कल्याण नहीं चाहिए हम तो इस वियोग में ही खुश हैं। वे कहती हैं कि हे मधुकर ! तुम्हारे कथन को मनाने पर भी कौन मानने को तयार

है अर्थात् कोई नहीं है। हम उस रसिक शिरोमणि से नाता तोड़ के उस निर्गुण से प्रेम किस प्रकार से जोड़े? वह तुम्हारा अविनाशी अत्यन्त अगम्य तथा अप्रत्यक्ष निर्गुण प्रेम के रस को पहचानने की क्षमता कहां रखता है। जन्मजन्मान्तरो की साधना के पश्चात् भी वह निर्मोही अपने उपासको को दर्शन नहीं देता। इससे अधिक हृदय हीनता क्या हो सकती है? इसलिए हमे तो तुम्हारी बात जचती नहीं है। तुम अपनी समाधि की बाते उन्हें सिखाओ जो ज्ञानी है। हमे तो तुम अपने ब्रज मे कृष्ण विरह के सन्निपात मे उन्मत्त जीवन ही व्यतीत करने दो इसी मे हमारे लिए अच्छाई है। हम सोते जागते स्वप्न मे या प्रत्यक्ष मे सभी दशाओ में उन्हीं को पति मान के रही हैं और रहेंगी। हम तो वाल-गोपाल के लीला सागर मे अभिन्न होके ऐसी सन रही हैं कि हमारी पृथक् सत्ता ही शेष नहीं रह गई। भला समुद्र मे पड़ी हुई छोटी सी बूंद को क्या कोई अलग कर सकता है? इसी प्रकार हम भी उस लीलाधर की अभिन्न अङ्ग होगई हैं उससे पृथक् हमारी कोई सत्ता नहीं है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे तन मन धन सब हरि के मुखस्मित के क्रीतदास हैं।

विशेष—यहाँ पर गोपियो का लीलासिंधु के साथ अभिन्नता का प्रतिपादन दो प्रकार से हो सकता है। एक तो जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में कहा है—यथानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तगच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुण्डक-२-२-८) अर्थात् जिस प्रकार नदियाँ अपने नाम रूप भेद से भिन्न होकर बहती हैं परन्तु समुद्र मे लीन होके अपने नाम रूप से विमुक्त होके समुद्र के साथ अभिन्न हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् मुमुक्षु जीवन मे नाम रूप के भेदो से युक्त रहता है और बाद मे अखण्ड ब्रह्म मे अपना नाम रूप खोकर ब्रह्म के साथ अभिन्नाकार हो जाता है।

दूसरा अभेद गुण और गुणी का है। गुण गुणी से पृथक् होता हुआ भी अपनी भिन्न और स्वतन्त्र सत्ता कहीं भी रखता दृष्टि-गोचर नहीं होता। सविशेष सिद्धान्त मे इसी प्रकार का विशिष्टाद्वैत

स्वीकार किया गया है।

हमारे विचार से गोपियो की लीलासिन्धु के साथ दूसरे प्रकार की अभिन्नता ही सूर को इष्ट है। वास्तव में साधक और साध्य की अभिन्नता सूर के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं पड़ती।

१५३ गोपियाँ निर्गुण का सन्देश सुनकर उद्धव से कहती हैं कि हमारी सगुणासक्ति अप्रतीकार्य है। उनका आग्रह पूर्ण उसे त्यागने के लिए कभी भी तयार नहीं है। इसलिए वे कहती हैं कि हे मधुकर! हमारे मन बड़े बाँके विगड़ैल हैं। इन्हे गीता का कर्मयोग या ज्ञानयोग नहीं समझ में आता ये तो कृष्ण की मुसकान के लिये ही मचले रहते हैं। बात यह है कि इन्हे पहले से यदि वह रूप माधुरी न मिलती तो ये उसके लिये रूठना न जानते। पर ये तो सदा बाल-गोपाल की रूप माधुरी के सुरस में अनुरक्त रहे हैं इसीलिए तो अब नीरस निर्गुण की बात सुनके टेढ़े खड़े हैं। आप भी इसे सुधारने का प्रयत्न व्यर्थ कर रहे हैं। करोड़ों उपाय करने पर भी कुत्ते की पूंछ सीधी नही होती। इसी प्रकार नाना हानि लाभ दिखाके प्रबोध करने पर भी इन्हें हरि-चरण कमल नहीं भूलते! भला जिन चरणो ने प्रविष्ट होके हृदय को सर्वथा सन्तुष्ट किया उन्हे भुलावे भी तो कैसे? तुम्हारा योग तो इन्हें अन्धे कुए की तरह डरावना लगता है जिसे देख के वे दूर से ही भाग खड़े होते हैं। आज दिन तक वे हरि जू के प्रेम सौभाग्य से भरे पूरे रहे आज योग सुनके उन्हे ऐसा लगता है कि कोई उन्हें अमृत से निकाल के जहर मे गलाने जा रहा हो। इसलिए सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा—कि हमे तुम कृष्ण के वियोग से व्यथित ऐसे ही रहने दो सो अच्छा परन्तु निर्गुण की आराधना अच्छी नहीं।

विशेष—इस पद मे निदर्शना रूपक और उत्प्रेक्षालकार है।

१५४ गोपिया उद्धव के अप्रिय योग को सुनना नहीं चाहतीं। अतएव वे उनसे कहती हैं कि हे मधुकर! यदि तुम वास्तव में हमारे हितैषी हो तो तुम हमारी सगुण भक्ति के अमृत सागर में योग का खारा जल मत डालो। अरे धूर्त्त! कभी दूध दैने वाली गैया को हल मे जोतना अच्छी रीति कही जा सकती है। अर्थात् नवनीताङ्गी व्रजाङ्गनाओ के लिये कष्ट साध्य योग का उप-

देश देना सर्वथा अनीति ही कही जायगी। भला जो रस्सी को देखके ही डर जावे उनके आगे काले साँप फेकना कितना घातक है ? हे मधुकर ! ज़रा तू अपनी करनी की ओर तो देख। तू बिना काटे छत्ते को भी छोड़कर नहीं जाता। परन्तु वही बल रहते हुए भी रात को तू कमल में बन्द रहता है अपने उस पौरुष से कमल की कोमल पखड़ियों के किवाड़ को नही काटता। (मिलाइये—दारुभेद निपुणोऽपिषडङ्घ्रि र्भवति पङ्कजकोशनिबद्धः)। इसलिए अरे चपल रङ्गरेलियो के लोभी मधुकर ! तुम क्यो व्यर्थ में बकबाद कर रहे हो। दूसरो को उपदेश देने से पहले अपना मुँह तो शीशे मे देख लो। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा मधुकर ! सोचो तो सही जिस श्याम शोभा ने हमारे सर्वाङ्ग में घर कर लिया है उसे हम कैसे भुला सकती हैं।

१५५ निर्गुणोपासना और योग साधना गोपियो के नितान्त अननुरूप है इस आशय से वे उद्धव से प्रश्न करती है—हे मधुकर ! यह कौन गाव की रीति है ? तुम व्रजयुवतियो के लिये योग का उपदेश दे रहे हो ये तो सब उल्टी बाते हैं। भला सोचो तो जिस सिर मे तेल और फुलेल लगाके श्रीकृष्ण ने अपने हाथों पटियाँ गूथीं और छोरी हैं उसी सिर में तुम श्मशान में रहके भस्म लगाके भारी-भारी जटाएं बाँधने को कहते हो। जिन कानो मे रत्न-जटित कमलो के समान चमकने वाले कर्णफूल पहरे हैं उन्हीं कानो में कनफटे योगियो की मुद्राए पहिराते हुए तुम्हे दया नही आती ? जिनकी नाक में नथ गले मे मणिमालाए तथा मुखो मे कपूर की सौरभ सुशोभित होता था उन्हीं के मुँहमें तुम सिंगी बजाने तथा मदार और ढाक के पत्तों का भोजन करने के लिये बता रहे हो। जिस शरीर पर कस्तूरी और चन्दन का लेप करके महीन वस्त्र धारण किये उसी शरीर के लिये क्या श्रीकृष्ण ने पुराने चिथड़े (कन्थादि) भिजवाये हैं ? हमारे प्रियतम कृष्ण अविनाशी है। यदि इस प्रकार से वे हमें योगी की शिक्षा देंगे तो उनके ज्ञान की महत्ता मिट जायगी क्योंकि ज्ञान की महत्ता इसी में है कि ज्ञानोपदेशक पात्रापात्र को देखके ज्ञान की शिक्षा दे। सूर कहते है कि गोपियो ने कहा कि इतने पर भी यदि आप लोग नहीं मानते तो जाके उनसे कह देना कि मथुरा में जब तक रहे तब तक भोग करले बाद में

यहा व्रज में आके योग साधना करे । भावार्थ यह है कि तुम जाके उन्हे यहाँ भेज दो फिर हम और वे साथ २ योग की साधना करेंगे ।

१५६ गोपियाँ निगु णोपासना की निस्सारता और अननुरूपता दिखाती हुई भ्रमर को सम्बोधन करके उद्धव से कह रही हैं—हे मधुकर, यद्यपि हमारे नेत्र उन पुण्डरीकाक्ष की बाट देखते-देखते नितान्त श्रान्त हो गए हैं तथापि ये सदा अत्यन्त प्रेम मग्न रहते है । निराशा में वैराग्य हो जाता है परन्तु इन नेत्रों को निराशा मे भी आसक्ति बढ़ रही है । जिस दिन से वे वियुक्त हुए हैं उस दिन से हमारी नींद भी समाप्त हो गई है । भय और शका से ये नेत्र अधिकाधिक चौकते रहते हैं । जागृत, स्वप्न और तुरीया सभी अवस्थाओं में वे हमारे हृदय में विद्यमान रहते हैं । (यद्यपि अवस्थाएँ चार मानी गई है—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) परन्तु सूर ने इस पद मे सुषुप्ति का कथन नहीं किया । गोपियो की निद्रा खत्म हो चुकी है इसलिए सुषुप्ति का कथन न करके सूर ने पहले आये हुए जागरण की पुष्टि की ही है । स्वप्न का तात्पर्य अर्ध निद्रावस्था से है जब पुरुष अर्धनिद्रा अवस्था मे होके कभी कुछ कभी कुछ अनुभव करता रहता है । जीव की तुरीयावस्था मोक्ष मे होती है । यहाँ पर सब सुध बुध खोकर विदेहावस्था के भाव से ही तुरीय का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है)

सूरदास कहते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि तुम अपने निगु ण का उपदेश उसको दो जो इसका तत्व जानते हो । हमे तो सुस्वादु गोपाल को छोड़ कर खारी टेटियो का खाना अच्छा नहीं लगता । सगुणोपासना में जो रस है वह भला निराकारोपासना में कहाँ ?

१५७ गोपियो के प्रेम में दृढ़ता देख के उद्धव ने सोचा कि ये तो कृष्ण पर जान दे रही हैं और वे इन्हें योग का सन्देश देकर इनसे पल्ला छुड़ा रहे हैं । ऐसा प्रेम भला कितने दिनों टिकेगा ? उनकी शंका का समाधान करती हुई गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर ! तुम्हें काले की जाति के गुण भी मालूम है ? ये किसी के सगे नही हुआ करते । जिस प्रकार मछली जल से प्रेम करती है और भौरा कमल से उस तरह ये किसी से प्रेम नहीं करते हैं । क्रूर कोकिल कपट व्यवहार से कौए को छलती है और अपना बनाके चलती

बनती है फिर उस बन मे भूलकर भी नहीं जाती। उसी प्रकार कृष्ण ने भी हमारे साथ खूब रगरेलियों का आनन्द भोगा और फिर चलते बने। अब आने का नाम भी नहीं लेते। इतना ही नहीं काले की जाति मे कूट-कूट कर क्रूरता भरी हैं। जिस पुत्र के लिए लोग अनेको यज्ञ, योग और तप करते है उसी दुर्लभ पुत्र को नागिन जनते ही निर्मम होके खा जाती है। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि इन सब बातों को सोचकर उनके कृत्यो पर विस्मय करना व्यर्थ है। उनकी छाती तब तक ठण्डी ही नही पड़ती जब तक वे औगुन नहीं कर लेते। इसलिए कृष्ण के रूखे व्यवहारो पर आश्चर्य मत करो वे भी काले हैं इसलिये अपनी बिरादरी वालों के सुर में सुर मिला के उन्हें बोलना ही चाहिये इसमें अनहोनी बात कौन सी है?

विशेष—इस पद में उपमालङ्कार और वृत्त्यनुप्रासालङ्कार है।

१५८ योग का सन्देश हमारे लिये किसी भी तरह माननीय नहीं है। यह तो हमे और भी अधिक पीड़ाकारी है इसलिये गोपियाँ भ्रमर को सम्बोधन कर के उद्धव से कह रही हैं—

मधुकर! अच्छा तो आप योग का सदेशा लाए हैं! आप ने अच्छी श्याम की कुशलता सुनाई! जिसे सुनते ही हमे तो आशका होने लगी। मन मैं कभी न कभी तो मिलने की आशा लगी ही थी आपने आते ही उस पर भी पानी फेर दिया। अब आप युवतियो से जटा बाध के योग साधना से अविनाशी की प्राप्ति के लिए कह रहे हैं। ठीक है पर एक बात याद रखिये आपको जिन्होने यहाँ गोकुल भेजा है, वे वसुदेव के पुत्र हैं। हम उनकी बात मानने को तयार नहीं, वे राजा है तो अपने घर के। हमारे यहाँ ब्रज में तो मनोहारी श्याम शरीर नन्दकुमार बिहार करते हैं यहां तो उनकी चलती है। इसलिए आप अपने राजा साहब की चीज़ उन्हे ही जाके सादर सौप दे।

१५६ श्याम की रुखाई पर व्यग्य करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

अरे! तुम्हारे मथुरा निवासी कृष्ण बड़े विनोदी रसिया हैं। भला अब वे गोकुल क्यों आने लगे? उन्हे तो नवयुवतियाँ भाती हैं। उन्हे उन दिनो की याद अब कहाँ आती है जब हमने उन्हे गोदी मे खिलाया करती थी। जब नन्द बाबा और यशोदा उनके बालो मे काच के गुरिया गूँथ दिया करती

थीं। अब चार दिन से पीताम्बर और कुरती पहनना सीख गये तो पिछली बातें सब भूल गये। सूर के प्रभु श्याम को अब वह कमरिया भूल गई। अब तो भाई! वे छैला हो गये।

१६० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमने बड़े आनन्द भोगे। पर आज यह विरह दुःख की विपत्ति सामने आई। इस सब उपद्रव का कारण हम स्वयं हैं। दूसरे को दोष देने से क्या लाभ? अपना ही दाम खोटा तो पारखी की क्या लाग? इसलिये वे कहती है कि उद्धव! हमी पगली है। उनके सुन्दर शरीर को केसर के तिलक, गुंजाओ की माला और पीताम्बर की शोभा से युक्त देखके हमारे नेत्र उनके सङ्ग लग गए। परन्तु हाय! उस मूर्त्ति ने तो हमारा चित्त चुरा लिया। जिसका फल हम इस समय भर भुगत रही हैं। इसीलिये तो चतुर लोग हमें पगली कहते हैं (अथवा इसीलिये हम अपनी मति को पगली कहती हैं) जो कुछ भी हो, सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि श्याम की बड़ी कठोरता है कि योग का सदेश हमारे लिये भेजा। यह उपदेश तो पागलो के लिए हैं।

१६१ कृष्ण के वियोग मे जीवन धारण करने को भी एक अपराध मानती हुई राधा उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! मै अपनी भूल कहाँ तक मानूँ गोपाल के वियोग में यह मेरा हृदय दो टुकड़े क्यो न होगया? अब साँप की फूँक के समान यह तन और यौवन सब व्यर्थ जा रहा है। हृदय में विरह का दावानल जल रहा है और बड़ी घातक हूक उठती है। जिस साँप की मणि हर ली गई हो वह क्या कर सकता है सिवा इसके कि वह इसकी मूक वेदना को मन मारके सहता रहे। इसी प्रकार मेरे लिए भी अब मौन रह कर इस असह्यवेदना को सहन करने के अतिरिक्त और क्या चारा है। सूर कहते हैं कि इन घातक विपत्तियो के पहाड़ टूटने से गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमें ब्रज में निवास करने पर शुक्र दक्षिण की ओर था जि जिसका परिणाम हम आज भोग रही हैं।

विशेष—इस पद में रूपक और अन्योक्ति अलंकार हैं।

१६२ गोपियाँ उद्धव की योग की शिक्षा को अपने लिए सर्वथा अनुपयुक्त बताती हुए कहती हैं कि उद्धव! यहाँ योग को कौन जानता है? हम स्त्रिया

हैं। जब हमारे पति जीवित हैं तो हमारा योग से क्या वास्ता ? जीवत्पतिकाओं के लिये तो केवल पति की सेवा ही सब कुछ है। हमसे योग साधन नही हो सकता न मौन धारण किया जा सकता है। हमारे लिए प्राणायाम करके मन रूपी पक्षी को बाँध रखना असम्भव है तुम्हीं बताओ जिन्हें सूक्ष्म वस्त्र पहनने की आदत रही है वे मृगछाला कैसे ओढ़ सकेंगी ? हमारे गुरु वे ही हैं जो आज कल कुबरी के हाथ की माला बने हुए हैं। उसी के घुमाये घूमते हैं। परन्तु मदन मोहन श्रीकृष्ण के बिना हमारे तो मन में कोई बात ही नहीं जमती। इस लिए उद्धव ! हमें तो यह बताओ कि सूर के प्रभु श्याम जो सब दुःखो का दमन करने वाले हैं वे कब आयेंगे; क्योकि उन्हीं के आने से हमारा दुःख शात होगा। इन उपदेशो से नहीं।

इस पद में रूपक अलङ्कार है।

१६३ ब्रज में रहते हुये कृष्ण को प्रेम मग्न राधा ने अनेक प्रकार से तग भी किया था अब वियोग से व्यथित होने पर उन्हें व्रज निवास के लिए आमन्त्रित करती हुई उद्धव से कहती हैं कि यदि वे फिर यहाँ आ जावेंगे तो मै कोई बात ऐसी न करूँगी जिससे उन्हें कष्ट हो। वह विलाप करती हुई कहती हैं—

हे गोकुलनाथ कृष्ण ! तुम फिर से आके ब्रज मे रहो। मैं तुम्हें जगा के गौओ के साथ नहीं भेजूँगी। मैं तुम्हें अब कभी मक्खन खाने से नहीं रोकूँगी अब तुम खूब मक्खन लुटाना मैं कभी नही रोकूँगी। मैं तुम्हारी शरारतो की शिकायत यशोदा के सामने कभी नहीं करूँगी और न मैं कभी उनके हाथ में रस्सी और छड़ीही तुम्हें पीटने केलिये दूँगी। तुम्हारी चोरीका भेद अब कभी नहीं खोलूँगी और न तुम्हारे अन्य औगुनो के ही बारे में कुछ कहूँगी। मैं अब तुमसे कभी नहीं रूठूँगी और न काम केलियो के लिये कभी आनाकानी करूँगी। मैं तुमसे अपनी प्रसन्नता के लिये मुरली बजाने और गाने के लिये कभी नहीं कहूँगी। तुमसे मैं अपने पैरो में महावर देने, वेणी गूथने तथा वशीवट के नीचे बैठकर या यमुना के तट पर रह के अपना शृंगार करने के लिए भी कभी नहीं कहूँगी। मैं भूषणो के भार से बोझिल बाँहो को तुम्हारे कधे पर रखके कभी रास में नृत्य नहीं कराऊँगी। मै अब पहले की तरह स्वयं सकेतस्थल में बैठके तुम्हें दूती द्वारा बुला भेजने की उद्दडता भी कभी नहीं करूँगी। यदि तुम एक

बार भी प्रेम के पथ में मुझे बसा के दर्शन दे दो तो मैं तुम्हे सिंहासन पर बिठा के स्वय तुम्हारे ऊपर चॅवर ढलूॅगी और इन नयनों से तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यंग का आलिंगन करूॅगी। इसलिए हे नन्दनन्दन ! अब दर्शन दो। मुझे तुम्हारे मिलने की अब भी आशा है। सूर के स्वामी श्याम की कौमार शोभा के लिये आज भी ये नेत्र तृषित हैं। कवि ने 'कुॅवर-छवि' कहके स्त्रियो के सहज सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु स्वभाव की व्यजना की है। कहीं ऐसा न हो कि वे अपनी पत्नी कुॅवरानी साहिबा सहित पधारे। इससे तो उन्हे और भी क्षोभ होगा। अतएव वे उसी कुमार रूप मे उनसे मिलना चाहती हैं।

१६४ वियोग की अवस्था में भी प्रिय द्वारा अपना स्मरण सुनके प्रेमी को शान्ति मिलती है। इसलिये नन्द और यशोदा उद्धव से पूछते हैं—क्या कभी गोपाल हमारा भी स्मरण करते हैं ? यह बात पिता नन्द और माता यशोदा उद्धव से पूछती है। वे सोचते हैं कि शायद हमारी दी हुई यातनाओ के कारण वे याद न करते हो इसलिए इस प्रश्न का उत्तर तो बिना दिये ही प्राप्त है। इसी आशय से वे कहते हैं कभी अनजान में हमसे भूल तो हुई होगी अतएव यदि वे न भी याद करते होगे तो हमारे पछताने से क्या फायदा है। अच्छा होता कि हमने चूक न की होती और वे आज हमारे सद्व्यहारो के कारण हमारी याद अवश्य करते। परन्तु वह तो समय अब बीत गया अब उन चूकों पर भी पश्चात्ताप करने से क्या लाभ ? (श्री कृष्ण के जन्म होने के बाद कंस के हाथो से उन्हें बचाने के लिये उनके पिता वसुदेव उन्हे नन्द के यहा दे आये थे और उसी समय जनमी हुई उनकी कन्या को ले आए थे। इसी प्रसग को ध्यान में रख कर नन्द जी कह रहे हैं) जबकि वसुदेव हमारे घर आये थे तो गर्ग मुनि ने उनके ग्रह देखके यह पहले ही कहा था कि इस पुत्र को देखके नन्द ! तुम भूलो मत। यह तुन्हारा नहीं है और न रहेगा इसलिए तुम इससे बहुत मोह न करना। परन्तु हम गॅवार अहीर इस बात की यथार्थता न समझ पाये। पर आज वह सब सामने आया और उन सूर के स्वामी श्याम के बिछुड़ने से रात दिन हृदय व्यथित रहता है।

१६५ जब उद्धव कृष्ण का सदेश लेके ब्रज में आये तो सभी लोग इस खुश खबरी को सुनके उनके पास दौड़े आए। पश्चात् उनसे सब समाचार सुने कि

किस प्रकार कृष्ण ने कस को मारा, उग्रसेन को बन्धन से छुड़ाया और अन्त में मथुरा के सर्वेसर्वा हो गये। इन सब बातों से उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण अब ब्रज में नहीं आवेंगे। यही आशय इस पद में वर्णन किया है। गोपियाँ परस्पर कहती हैं—आज तो बड़ी खुश खबरी सुनी जा रही है कि किसी को कमल नयन कृष्ण ने अपनी सी साज सज्जा बनाके यहाँ भेजा है। चलो चलके पूछे कि प्रियवर कैसे हैं? अब आज और कुछ काम तो करना ही नहीं है। उद्धव के पास जाके पूछने पर पता चला कि कृष्ण कंस को मार के अपने पिता वसुदेव को कारा से छुड़ाके घर ले आये। कंस के पिता उग्रसेन को राज्य देदिया और स्वय शासक एव नियन्ता होने के कारण राजा होगये। सूर कहते हैं कि गोपियों ने यह जान के आपस में कहा कि भाई! अब वे राजा हो गए हैं। उन्हें अब वह सुख यहाँ गैयों के साथ ग्वालों में रह के कैसे मिल सकता है? इसलिये अब तो चाहे करोड़ो उपाय क्यों न करो पर कृष्ण ब्रज में नहीं आवेंगे।

१६६ उद्धव के आगमन पर प्रसन्नता और कृष्ण के न आने पर पश्चात्ताप प्रकट करती हुई गोपियां उद्धव से कह रही हैं कि उद्धव! आज हम अत्यन्त भाग्य शालिनी हैं। जिस प्रकार वायु पुष्पों की सुगन्ध लाके मधुपों को अनुरक्त बना देता है ठीक इसी प्रकार आपने हमारे प्रियतम की खबर लाके हमे इतना अनुरक्त बना दिया है, कि हमारे अङ्ग प्रत्यङ्ग आनन्द से उमंगित हो रहा है। आज आपके द्वारा उनकी खबर पाके जो सुख हुआ है उसे त्यागते नहीं बनता। आज तुम्हें देखके हमें सब दुःख भूल रहे हैं ऐसा लगता है कि मानों हम प्रियतम कृष्ण से ही मिल रही है। तुम्हारा दर्शन श्याम के समान ही है यद्यपि यह दर्शन यथार्थ में वह नहीं है पर उसका प्रतिबिम्ब अवश्य है। जिस प्रकार शीशे में आँखो से दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब हाथो की पकड़ से परे होकर यथार्थता प्रकट करके भी आनन्ददायी होता है उसी प्रकार सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि उद्धव! तुम्हारे रूप में श्याम की प्रतिकृति देखकर हमें ऐसा आभास होता है कि श्याम से ही मिलकर अपनी वियोगव्यथा मिट रही हैं।

इस पद मे—दृष्टान्त और गम्योत्प्रेक्षा अलकार हैं।

१६७ उद्धव के आगमन और सदेश लाने का समाचार ब्रज में सर्वत्र फैल गया। गोपियाँ उस सन्देश को सुनने के लिए उत्सुक होके चल पड़ीं और इस प्रकार चलती हुईं वे एक दूसरे से कहने लगी—अरे सखि ! मथुरा से चिठ्ठी आई है। हमारे प्रियतम श्याम ने चिट्ठी लिखकर उद्धव के हाथ यहाँ भेजी है। मैयारी ! न जाने उसमें क्या लिखा है जरा चलकर सुन तो लो। यह सुनकर सब अपने-अपने घर से दौड़ी आईं और चिठी लेकर हृदय से लगा ली। उसे देखके उनके नेत्रों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। उसकी प्राप्ति से जो प्रेम की पीर जगी वह उन अविरम अश्रुओ से भी बुझ न सकी। सूर कहते हैं कि गोपियोने आँसू बहाके और प्रेम विह्वल होके कहा कि क्या करे कृष्ण के बिना यह गोकुल सूना है। उनके बिना हमें यहाँ कुछ नहीं सुहाता। हाय ! न जाने हम से क्या अपराध हुआ कि श्याम ने हमारी याद भुला दी।

इस पद में—विभावनालंकार गम्य है।

१६८ उद्धव ने गोपियो के एकत्रित हो जाने पर कृष्ण का संदेश कहना प्रारम्भ किया। उन्होंक कहा—हे गोपियो ! कृष्ण का सदेश सुनो। तुम लोग योग समाधि द्वारा अन्तर्दृष्टि होके अन्तर्यामी प्रभु का दर्शन करो यही कृष्ण का तुम्हारे लिए उपदेश है। वे प्रभु अज्ञात अनश्वर व्यापक तथा प्रत्येक अतः-करण मे समाए हुए हैं। उसीको निश्चय करके अपनी चित्तवृत्ति को हृत्कमल में व्यस्थित करके पाने का सकल्प करो। इसी तरह तुम्हारा विरह व्यथा से छुटकारा होगा और इस भौतिक राग से ऊपर उठ जाने पर तुम्हे ब्रह्म के दर्शन होगे। शास्त्रों का कथन है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् बिना तत्वज्ञान के मुक्ति नहीं होती। माधव के इस असह्यवेदना दायक सदेश को सुनके गोपियाँ फूट-फूट विलाप करने लगी। सूर कहते हैं कि उनकी विरह दशा की कथा चलाना भी व्यथादायक है। उसका वर्णन तो दूर रहा वह तो मन में आते ही नयनों से अश्रु प्रबाहित करने लगती है।

इस पद में अतिशयोक्ति अलंकार है।

१६९ योग के नीरस और अनुचित संदेश को सुनके गोपियाँ उद्धव से भ्रमर को सबोधन करके कहने लगी—हे मधुकर (उद्धव) क्यों तुम अपनी सुमति को गॅंवा रहे हो। देखो तुम्हारी बेढगी बाते सुनके इस व्रज में तुम्हारी हँसी होने

लगी है। इसलिये अच्छा हो कि तुम अपने योग को छिपाए रहो। तुम योग के द्वारा अन्र्यामी आत्मा (ब्रह्म) के दर्शन कराते फिरते हो और अपनी निर्गुण की पोटली काख में दबाए घूम रहे हो कि कोई इसे ले न ले। परन्तु यहाँ तुम्हें इसकी इतनी सावधानी की क्या आवश्यकता है? यहाँ यह किसी के काम की नहीं है। इसका यहाँ कोई गाहक नहीं। यदि तुम्हारी कॉख से गिर पड़ी तो भी इसे कोई छुएगा तक नहीं। अरे मधुकर! प्रेम की पीर का मर्म वही जानता है जो भुक्त भोगी है। तू तो रूखा है तुझे क्या मालूम कि प्रेम क्या होता है? तुम तो तुम ज़रा अपने आका से ही पूछ देखना। यो तुम महान् दूत हो और बड़ी जगह (कृष्ण की राजधानी मथुरा) से आए हो इसलिये तुम्हारा ज्ञान बड़ा ही कहा जायगा। परन्तु तुम्हारे इस उपदेश को सुनके तो हमें बड़ी निराशा हुई। सूर कहते हैं कि गोपियो ने कहा कि सब कुछ है पर जाति का प्रभाव कहाँ जायगा? तुम षट्पद (भ्रमर-गुबड़ीले) हो न? इसलिये पुरीष (विष्टा) के स्वाद की सराहना चारो ओर करते फिरते हो। सो ठीक ही है क्योंकि—'श्वा यदि क्रियते राजा स कि नाश्नात्युपानहम्'—कुत्ता राजा हो जाय तो क्या जूते चबाना थोड़े ही छोड़ देता है।

इस पद में अन्योक्ति अलकार है।

१७० गोपियाँ अपने सुहावने अतीत की व्यथादायी वर्तमान से तुलना करती हुई कहती हैं जिन्हें स्वयं कृष्ण अपने मुख के पीयूष-प्रवाह से प्लावित वेणु का कलनाद प्रतिक्षण सुनाते थे उन्हीं को आज भ्रमर महाशय से ज्ञान की कथा सुननी पड़ रही है। जहाँ पर सखी समाज में कृष्ण की सरस लीलाओं की चर्चा करते हुए दिन बीतता था वहाँ भाग्य का ऐसा चक्र चला कि भ्रमर महाशय हमें समझा रहे हैं। अस्तु, आपको यह मालूम होना चाहिए कि जब तक रासरसिक हमारे प्रियतम विद्यमान हैं तब तक हमारा मन इधर (निर्गुण की ओर) कैसे उलझ सकता है? आप तो न जाने क्या किसी रूप-रहित के विषय में अपने मुँह से बक रहे हैं जैसे कि कोई किसी का माल हड़-पने के लिए उसे भुलावा दे रहा हो। आपके निर्गुण को श्रेष्ठ और बेदानु-कूल जानते हुए भी हमे अपने मन से प्रियतम को भुलाना उचित नहीं है। हमारे प्रियतम नन्दनन्दन के हस्त-कमलो की शोभा आज भी हमारे मुख और

हृदयो को छू रही है। अर्थात् उनका आश्वासन-हस्त हमें आज भी धैर्य बँधा रहा है। सूर कहते हैं कि उद्धव ने देखा कि ब्रज-सुन्दरियाँ एक से एक बढ़कर चतुर हैं। वे उनकी युक्तियों का तड़ाक से जवाव दे देती हैं जरा भी डरती नहीं। वे सब श्याम के प्रेम-सागर की ओर उन्मुखी हो रही हैं और किसी भी प्रकार उनकी वह दशा भूलती नहीं है।

इस पद में रूपक अलकार है।

१७१ श्री कृष्ण के वियोग में गोपियाँ ही नहीं ब्रज की गैयाँ भी व्यथित हैं। इस पद में गोपियाँ उद्धव से गौओं की व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं— उद्धव! तुम कृष्ण से जाके इतना कह देना कि तुम्हारे वियोग मे गैयाँ बड़ी दुखी हैं और अत्यन्त दुबली हो गई हैं। उनकी आँखों से अश्रु-समूह प्रवाहित होता रहता है और जहाँ कहीं कोई तुम्हारा नाम लेता है तो वे हुँकार मारती हैं। जहाँ-जहा तुमने इन गैयों को दुहा था वहीं-वहीं जाके तुम्हें ढूँढ़ती हैं। जब तुम उन स्थलों में दिखाई नहीं पड़ते तो वे अत्यन्त व्याकुल और दीन होके पछाड़ खाके गिरती हैं। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि कृष्ण के वियोग में गैया इतनी संतप्त हैं मानो वे पानी से बाहर निकाल के फेंकी हुई मछलिया हो।

इस पद में स्वाभावोक्ति तथा वस्तूत्प्रेक्षालंकार हैं।

१७२ गोपिया योग साधन के उपदेश से झल्ला के उलाहना दे रही हैं। वे कहती हैं कि ऊधो! आज आप योग की शिक्षा देने यहा आए हैं। आप कहते हैं कि सिंघी मस्म अधारी और मुद्रादि योग के उपकरण लेके आपको ब्रजनाथ नन्दनन्दन ने यहा भेजा है। पर जरा इतना तो सोचो कि यदि हमारे लिए योग लिखा था तो हम न सहीं वे तो अन्तर्यामी हैं अवश्य जानते रहे होगे। फिर उन्होने हमे सरस रास क्यों खिलवाया। हमें तभी ज्ञानका उपदेश क्यों नहीं दिया? तब क्यों अधरामृत पिला के उन्मत्त बना दिया। उस समय हमें क्या मालूम था कि हमें योग और वैराग्य से पल्ला पड़ेगा। इसीलिए तो उनकी मुरली का शब्द सुनते ही हम अपने पति, पुत्र और घर-द्वार सब छोड़के चल देती थीं। इतना होने पर भी न जाने हम उस दिन उनके साथ क्यों न चली गईं? सूरदास कहते हैं कि आज गोपियां सचमुच श्याम के संग को

छोड़ देने के कारण मन मे पछ्ता रही हैं।

१७३ गोपियां उद्धव से योग का सदेश सुनके कभी तो खीजती है पर कभी इस आशका से कि कहीं कृष्ण नाखुश न हो जावे दीनता से प्रार्थना करने लगती हैं। प्रस्तुत पद में वे उद्धव से निवेदन करती हैं कि उद्धव ! हम किसी को दोष नहीं देतीं हमें तो अपना प्राप्य ही मिल रहा है। जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे भोग रही हैं किसी दूसरे को दोष देने से क्या लाभ ? भाग्य की गति तो देखो कि कुब्जा को तो मोहन सा सुन्दर वर मिले हमें मिले योग का उपदेश ! अब आप जैसा आदेश दें मोहन से निवेदन करने के लिए आप वही सन्देश समझले और उनसे वहीं कहदें परन्तु हमारी यह प्रार्थना अवश्य सुना देना कि (सूर कहते हैं कि गोप्रियो पर) आपकी बड़ी कृपा होगी यदि उन्हें आप दर्शनामृत का पान करादे।

१७४ गोपिया उद्धव से अपनी व्यथा कहके निवेदन करती हैं कि उद्धव ! आप कृपा करके हमारी ऊटपटाग बातें उनसे न कहना। बिगड़ी को सँभाल कर उनकी हमारी ओर से खुशामद कर लेना ताकि वे हमें दर्शन देने की कृपा करे। वे कहती हैं—

उद्धव ! हम चिठ्ठी लेके क्या करेंगीं ? जब तक गोपाल का दर्शन नहीं होता तब तक हमारा अन्तस् विरह सन्ताप से यो ही जलता रहेगा। मुझे तो एक क्षण भी वे शरद् की रात्रियां नहीं भूलतीं जब हम उनके साथ रास रचाती थीं। जब से यौवन के साथ मदन का आगमन हुआ हमारा मन तो तभी से कृष्ण ने हथिया लिया है। यह सब होते हुए भी तुम पराई व्यथा को क्या समझोगे ! तुम तो श्याम के ही साथी ठहरे ! जो कुछ भी हो अब कृपाकर तुम उन सूरदास के स्वामी श्रीकृष्ण से हमारी ओरसे ठकुरसुहाती ही कह देना ताकि वे अप्रसन्न न हों और हमें दर्शन दे।

१७५ यदि गोपियो के आक्षेप को सुनके उद्धव कहें कि कोई बात नहीं जब वे यहां रहे थे तो तुमने प्रेम किया बड़ा अच्छा किया। पर अब विरह-व्यथा से शरीर सुखाना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसीसे छुटकारा पाने के लिए हम तुम्हें योग बता रहे हैं तो इसके उत्तर में गोपिया कहती हैं कि उद्धव ! विरह से भी प्रेम बढ़ता ही है। विरह-व्यथा को सहकर प्रेम में दृढ़ रहना प्रेम को परि-

पक्व करना है। जिस प्रकार कपड़े पर अच्छा रग चढ़ाने के लिए उसे गर्म किया जाता है; बिना उसे गर्म किए उस पर रंग अच्छा नहीं चढ़ता। सताप राग को सरस बनाता है। और जिस प्रकार अवा की आग में दग्ध होकर ही घड़ा शीतल जल का कारण बनता है; जिस प्रकार बड़े आकार में होने के लिए और हजारो फलों को देने के लिए पहले पेड़ के अकुर को फटकर दो होना आवश्यक है और जिस प्रकार सूर्य से भी ऊपर स्वर्गमें रथ द्वारा जाने के लिए योद्धाको रणभूमि में सम्मुख शर प्रहार सहके मरना होता है इसी प्रकार विरह के सन्ताप से नितान्त सतप्त हो जाने पर ही प्रेमकी सफलता मिलती है। इसलिए सूर कहते है कि गोपियों ने कहा कि गोपाल के प्रेम जल की अगाधता तो हमारा इष्ट ही है और वह अगाधता विरह से ही सम्भव है। अतएव हम उस जल की अगाधता और विरह किसी से भी डरती नहीं।

इस पद में उदाहरणमाला और रूपक अलकार है।

विशेष—योद्धा रणभूमि में सम्मुख मरके स्वर्गगामी होता है जैसा कि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

द्वाविमौ पुरुषौ पार्थ सूर्यमण्डल भेदिनौ।
योगी योग युक्तश्च युद्धेचाभिमुखे हतः॥

१७६ विरहानल का सन्ताप असह्य हो रहा है इस आशय को व्यग्य द्वारा गोपियां उद्धव से निवेदन कर रही हैं। वे कहती है कि उद्धव! उनसे जाके इतना निवेदन कर देना कि तुम्हारी सब प्रियतमाओ का यही कहना है कि हमारे हरिजू का इन दिनो मथुरा रहना ही ठीक है क्योंकि आजकल तुम स्वय देख रहे हो कि चन्द्रमा सूर्य के समान सन्तापदायक है और हमारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दन अत्यन्त कोमल-कलेवर हैं वे इस सन्ताप को कैसे सहेंगे? जो पिक और मयूर मधुर बोलते थे वे आज वन और उपवनो मे पेड़ों पर चढ़-चढ़ के बहुत ही कठोर बोलते है। ब्रज की प्रत्येक गली में गैया और बछड़े सिंह और भेड़ियों के समान उग्र बनके घूमा करते हैं। निवास स्थान, आसन और भोजनादि उपकरण जहर के समान हो रहे है और भूषण भण्डार और भवन सब सांप के समान दुःखदायी है। जिधर देखो उधर ही पेड़ो पर सैकड़ो काम धनुष लेके प्रहार कर रहे है। उद्धव! तुम तो बड़े सज्जन हो और तुम्हारा मन

भी कोमल है तुम सब रीतियो को जानते-पहचानते हो तुम्हीं बताओ ब्रज से बिना ये उपद्रव दूर किए सूर के प्रभु श्याम को किस प्रकार बुलाया जावे ?

विशेष—यहा अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि के चमत्कार से विपरीत अर्थ विवक्षित है।

१७७ उद्धव के उपदेशानुसार हरि को परब्रह्म के रूप मे देखना उचित है और वह परब्रह्म सबके हृदय में निवास करते है । गोपिया इसका सीधा-सादा अर्थ ले के उद्धव को उपालम्भ देती हुइ कहती हैं कि हे उद्धव ! यदि तुम्हारे कथनानुसार हरि सचमुच ही हृदय के भीतर है तो फिर उनसे हमारी इतनी अवहेलना कैसे बन पड़ती है। जब वे यहा ब्रज में रहते थे तब तो दावानल पेड़ों तक को न जला सका पर अब देह को क्यो जलाए डालता है ? सुन्दर-श्याम हृदय से बाहर आके हमें ठण्डा क्यो नहीं करते । आज उनके वियोग में इन्द्र क्रुद्ध होके हमारे नयनो के मार्ग से बरसता हुआ घड़ी भर के लिए भी विराम नहीं लेता और हम शीत मे भीग रही है ; डर के मारे शरीर थरथरा रहे है । वे हृदय मे से निकल के पहले की तरह गिरि को धारण क्यों नहीं करते ? (एक बार इन्द्र ने ब्रज पर कोप करके मूसलाधार वर्षा की थी और कृष्ण ने गोवर्धन उठाके ब्रज को नष्ट होने से बचाया था। इसी से गोपियां कहती है कि जब वे ब्रज में रहते थे तब तो उन्होने पर्वत उठाके ब्रज की रक्षा की थी अब यदि हृदय मे है तो हमे बचाने के लिए गिरि को धारण क्यों नहीं करते ?) वियोग के सन्ताप से जो दशा हुई है उसका जब प्रत्यक्षीकरण हमें हाथ मे ककण (जो ढीला हो गया है) और दर्पण लेके (मुँह देखके) होता है तब हम कुढ़न से और भी दुखी होती है । सूर कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती है कि—यह सब होते हुए भी योग की अपेक्षा विरहिणियां विरह को ही रखना अधिक पसन्द करती है ।

विशेष—प्रत्यनीक और सूक्ष्म अलंकार है।

१७८ गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि वे श्रीकृष्णजी से ब्रज में विरह की व्यापक व्यथा के विषय में अवश्य कहें। सम्भवतः उसे सुनके उनका हृदय पसीज जावे और वे ब्रजवासियों को दर्शन देने के लिए चले आवे। वे कहती हैं—हे उद्धव ! इधर कृपालु बने रहना अर्थात् हम लोगो पर कृपा भाव रखना

और जितने ब्रज के व्यवहार हैं उन सबको तुम हरिजू से जाके कह देना। तुम से इस विषय मे कुछ कहना व्यर्थ सा है विरह दावानल के प्रचण्ड दाह और उसके प्रभाव को तुम स्वय अपनी आँखो देखे जा रहे हो। इस विरह-व्यथा को जैसे हम सहन कर रही हैं वह हमीं जानती हैं उसके कहने में हमे लज्जा आती है। काम न जाने कितनी चोटे करता है कि हृदय फटा जाता है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि इस प्रचण्ड दाह से शरीर जल कर भस्म हो जाता पर निरन्तर नेत्रो से अश्रु प्रवाहित होने के करण बचा हुआ है।

इस पद में काव्यलिग अलकार है।

१७९ गोपियाँ उद्धव से विरह के व्यापक प्रभाव को वर्णन करती हुई कहती हैं—

हे उद्धव! इस ब्रज मे विरहानल बहुत बढ रहा है। यह न केवल हमारे शरीर को ही दग्ध कर रहा है अपितु बढ़ते-बढते यह घर-बाहर, नदी-वन तथा उपवनो की लता और पेड़ों तक पहुँच गया है। रात-दिन सब ओर धुँआ भरा रहता है जिससे चारो ओर अँधेरा ही घिरा रहता है और बड़ा भयावना लगता है। इस दाह ने नगर मे बड़ी प्रचण्डता धारण कर रक्खी है जहाँ देखो वहाँ इसका द्वन्द्व मच रहा है। ऐसे प्रचण्ड अनल से जो कि जल (अश्रु प्रवाह) से उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। क्षणभर में हीं सब जल कर भस्म हो जाना चाहिए परन्तु होता इसलिए नहीं कि हम लोग 'हरि-हरि' मन्त्र का जाप करती रहती हैं। इस मन्त्र के प्रभाव से यह सब जलके भस्म होने से बचा हुआ है। पर आखिर बकरे की माँ कब तक सिरनी बाँटेगी? सच्ची बात तो यह है कि सूर के स्वामी नन्दनन्दन के बिना इस प्रचण्ड अनल से उद्धार होना असम्भव प्रतीत होता है।

इस पद मे अतिशयोक्ति और काव्यलिग अलकार हैं।

१८० गोपिया उद्धव से विरह की दाहकता वर्णन करती हुई कहती है कि हे उद्धव! तुम हमारे सन्देश और विरहव्यथा का वर्णन इस प्रकार से करना कि श्रीकृष्ण गोकुल चले आवे। थोड़े दिन वहा रह लिए, अच्छा किया पर देखो अब विलम्ब न लगावे। हा प्राणपति! तुम्हारे बिना कुछ नहीं सुहाता घर न

वन कुछ नहीं भाता है । हम तो हम ये बच्चे भी बिलख रहे है, गौएँ घास नही चरतीं न बछड़ो को दूध ही पिलाती है । उद्धव ! यह सब तुम अपनी आखो देख रहे हो फिर हम तुमसे क्या कहें । सूर के श्याम के बिना रातदिन सन्ताप ही सन्ताप हैं । हरि के मिलने से ही यह सन्ताप शान्त हो सकेगा अन्यथा नहीं ।

इस पद मे अतिशयोक्ति अलकार है ।

१८१ गोपिया विरह की दाहकता का वर्णन करके उद्धव से कहती हैं कि इतने पर भी जो श्रीकृष्ण न आए तो उनसे कह देना कि हम भी अपनी सी में आके उनका फजीता करने पर उतारू हे । इसलिए हे उद्धव ! खूब कान खोलके सुनलो कि यदि अब भी श्रीकृष्ण न आए तो तुम्हीं अपने हृदय में सोचो और विचारो कि हम इतना दुःख अब कैसे सहेंगीं ? हम उनकी सब पोल खोलके रख देगीं । उनसे जाके ज़रा पूँछना तो कि किसके लड़के हैं ? तब देखें क्या जबाव देते है । हमारे साथ जो खेले-खाये है उसका अब क्या करेंगे ? (उसे कहा ले जावेंगे ?) । वे गोकुल के हृदयहार होके अपने आपको मथुरा वासी कहके कब तक निबाह करेंगे ? अब हम सब कच्चा हाल लिखके मथुरा में चिठ्ठियाँ भेजना ही चाहती हैं । ये चिठ्ठियाँ उनको कैसे भी नहीं मिलेगीं । आखिर हम भी क्या करे ? देखो इन गौओं तक ने तो उनके चराने के बिना चरना ही छोड़ दिया है । इस दशा मे भी यदि सूर के स्वामी ने दर्शन न दिए तो बाद मे पछताना पड़ेगा । बेकार में ये बिडम्बनाएँ सहनी होंगीं और फिर हमारे हाथ से भी मामला वे हाथ हो जायगा ।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है ।

१८२ गोपियाँ उद्धव से विरह दशा की असह्यता वर्णन करती हुई कहती हैं कि समझ मे नहीं आता कि हम क्या करे ? उभयतः पशारज्जु की दशा हो रही है । एक ओर कुआ तो दूसरी ओर खाई है । अतएव वे कहती हैं—

हे उद्धव ! हमें तो दोनों तरह से मुश्किल है । अगर जीना है तो आपके उपदेशानुसार ज्ञानी बनके ही जीना हो सकेगा । पर अरे धूर्त ! सोचतो प्रियतम से विमुख होके जीवन बिताना भी कोई जीवन है । इसलिए यदि मौत का आलिगन करलें तो सदा के लिए प्रियतम के रूप से वञ्चित हो जायँगीं ।

कुछ लोगो ने तन तजके सारूप्य मुक्ति हो जाने से आत्महानि बताई है। उनके मतानुसार रूपहरी का अर्थ है हरि का रूप हो जायगा जिससे कि भगवान के दर्शनादि के सुख से भक्त वचित हो जायगा। परन्तु हमारी समझ में रूपहरी का साधारण अर्थ रूप के सुख से हरी अर्थात् रहित या वचित हो जायँगी यही अर्थ ठीक जचता है। यदि हम गुण गान करती हैं तो शुक और सनकादि सिद्ध मुनियों की वीतराग श्रेणी में रहेगीं ; और यदि उनके (कृष्ण के) साथ दौड़ी फिरें तो लीला समझी जायँगी। यदि अवधि तक आशा लगाए सतोषपूर्वक बैठी रहे तो ये ब्रज-युवतियाँ धार्मिक कहलाने की अधिकारिणी होगीं। ये सब सखियाँ कुलीन और युवतियाँ हैं यद्यपि ये आज विरह व्यथित हैं तथापि ऐसी कोई बात ठीक नहीं जँचती जो हमारी कुलीनता और वयस्कता के अनुकूल न हो। हमारे लिए शोक रूपी सागर को पार करने के लिए वही अनुरूप नौका है जिसने मुख पर मुरली रक्खी है अर्थात् मुरलीधर श्री कृष्ण के दर्शन के बिना हम इस शोक-सागर से पार नहीं हो स तीं। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो यहाँ रातदिन अत्यन्त मदोन्मत्त मदन रूपी हाथी उच्छृखल (निरकुश) होके घूम रहा है। यदि उस केहरी (सिंह रूप हरि) ने इधर कृपा दृष्टि न की तो सब घर ढा देगा और यह सब खण्डहर हो जायगा। अतएव उनका यहाँ आना ही उचित है और हमे भी आशा लगाके सन्तोष के साथ अवधि तक उनकी प्रतीक्षा करनी ही उचित होगी।

विशेष—शुक व्यास जी के पुत्र थे जो जन्म से ज्ञानी और वीतरागी थे और परम पन के अधिकारी हुए थे। सनक सिद्ध-ज्ञानियो मे से सर्व प्रथम मुनियो मे से अन्यतम थे। ज्ञान और वैराग्य के लिये इनका उदाहरण प्रसिद्ध है।

इस पद में रूपक अलकार है।

१८३ गोपियाँ उद्धव से विरह की पीर वर्णन करती हुई कहती हैं—हे उद्धव ! उन चरण कमलो से विमुख हुए बहुत दिन बीत गये। उनके दर्शनो से हीन होके हम लोग बहुत दुःखी एव दीन हैं और क्षण प्रतिक्षण विपत्तियाँ सह रही हैं। रात्रि मे यह प्रेम व्यथा बहुत बढ़ जाती है। हमारे मन को न घर में

न बन में कहीं धीरज नहीं मिलता। दिन मे उनकी बाट जोहा करती हैं, हृदय का प्रवाह उमड़के आँसुओ के रूप मे नयनो से प्रवाहित होता रहता है। आने की अवधि की आशा लगा के दिन गिन के अपनी सासे पूरी कर रही है। सूर दास कहते हैं कि भला इतनी कठिन विरह की वेदना इन विरहिणियो से कैसे सही जायगी? यह तो सर्वथा असह्य है।

इस पद मे रूपक अलकार है।

१८४ गोपियाँ उद्धव से विरह-दशा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि ऐसी असाध्य दशा का प्रतीकार योग नहीं है। इसका उचित प्रतीकार श्याम का दर्शन ही है। योग तो उस पीड़ा को और भी तीव्र बनाता है। वे कहती हैं कि उद्धव! आप हमारे लिए इस असाध्य दशा से आराम पाने का प्रतीकार योग बता रहे है। इस बेढगी बात के लिये हम आपसे क्या कहे कुछ कहते नहीं बनता। भला सोचो कि प्रियतम के अधरामृत का स्वाद लेने वाली रसना योग की महिमा कैसे गायगी? जिन नेत्रो ने नखशिख सुन्दर नन्दतनय श्रीकृष्ण के दर्शन किये वे अब और मार्ग पर कैसे चलेंगे। आखिर उन्होने ही इन्हें उस रास्ते पर चलने के लिए मजबूर किया था। जिन कानो ने मुरली की धुन मे अनेक राग रागिनियाँ सुनी है उन कानो को कठोर योग के सन्देश की कक-ड़ियो से क्यों चोट पहुँचा रहे हो? सूरदास कहते हैं कि युवतिया मोहन के बिविध गुणो पर मुग्ध होके खूब विचार करके उद्धव से बोलीं कि अरे भ्रमर! लाख प्रयत्न करने पर भी स्वर्णलता से मोती नहीं उपजता।

इस पद मे रूपक अलकार है।

१८५ गोपियाँ उद्धव से अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन करके अपने लिए ज्ञान की अनुपादेयता का वर्णन कर रही हैं। वे कहती है कि उद्धव! इन नेत्रों ने व्रत लिया है। इन्होने नन्द नन्दन से पतिव्रत धर्म बाध रक्खा है इस लिए इन्हें दूसरा नहीं दिखाई देता। जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रति चकोर और मेघ के प्रति चातक दृढ़ प्रेम का निर्वाह करता है ठीक उसी प्रकार हमारे इन नेत्रो ने भी श्री गोपाल जी से दृढ़ और ऐकान्तिक प्रेम किया है। ऐ उद्धव! तुम आज इनके लिए ज्ञान का फूल लाये हो। हे चपल! तुमने यह अच्छा

हीं किया। सूर कहते हैं कि गोपियो ने उद्धव से आग्रह पूर्वक कहा कि हमारे
त्र उसी हरिमुख रूपी कमल के अमृत रस को लेना चाहते हैं। उन्हें और
ोई चीज़ अच्छी नहीं लगती।

इस पद में उपमा तथा रूपक अलङ्कार है।

=८६ गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि श्रीकृष्ण के विरह के कारण
ज के नाश के लक्षण उपस्थित हो गए हैं। जिस ब्रज को उन्होने पराक्रम
र्वक राक्षसो से बचाया था वही आज फिर मिट रहा है और उनका वह
क्षसो का बध बेकार हो रहा है। वे कहती हैं कि उद्धव! ब्रज के शत्रु फिर
जीवित हो गए। जिन शत्रुओ को नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने हमारी रक्षा के
ाए मार के दूर कर दिया था वे ही ब्रज के शत्रु मानो आज फिर से जीवित
के ब्रज को नष्ट करे डाल रहे हैं।

रात्रि के वेष मे पूतना राक्षसी आती है जिसके भारी भय से हमारे हृदय
ंप उठते हैं। उसके स्तन्य से नष्ट होते हुए हमारे प्राणों को सूर्य ही क्षणभर
लिए छुड़ा लेता है। भाव यह है कि घातक विरह व्यथा जो रात्रि मे बड़ा
ा रूप धारण कर लेती है वह प्रातःकाल कुछ मन्द होती है। वन हमारे
ाए वृकासुर के रूप मे और घर अघासुर के समान है अतएव कहीं भी किसी
ार भी तो देखते नहीं बनता। स्वय कालिन्दी (यमुना) करोडो कालिनाग के
नान है इन नागों के जहर के कारण उसका जल भी अपेय हो गया है।
नारे ऊर्ध्वश्वास तृणावर्त राक्षस के समान हो रहे हैं जिसने हमारे सम्पूर्ण
वों को उड़ा दिया है। केशव के बिना सभी कारोबार केशी राक्षस बन रहे
। सूर कहते है कि गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि तुम्हीं बताओ कि अब
ों किसकी शरण का आसरा हो सकता है। जिसकी शरण हम जा सकती थीं
तो अब सब माया मोह छोड़कर मथुरा जा बसे हैं।

इस पद में—पूतना राक्षसी तथा अन्य सब बकासुर, अघासुर, तृणावर्त
ार केसी उन राक्षसों के नाम हैं जिन्हें श्रीकृष्ण ने ब्रज में निवास करते हुए
ारा था। कालीनाग यमुना में निवास करता था। इसके जहर से यमुना का
ल जहरीला हो गया था जिसके पीने से अनेक गौएँ और गोप मर गए थे।
ीकृष्ण ने उन्हें जिला के काली नाग का दमन किया था। ये सब कथाएँ

भागवत दकमस्कन्ध में बर्णन की गईं हैं।

विशेष—इस पद मे उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमालकार हैं।

१८७ गोपियाँ उद्धव से कृष्ण की निर्ममता की कटु आलोचना करती हुई उपालम्भ दे रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव! हम किसे कहके सुनावे कि हम हरि से बिछुड़ के इतने विरह के घाव सहन कर रही हैं। अच्छा होता जो माधव शुरू से ही मथुरा रहे होते। वे यशोदा के क्यों आए थे? उन स्वामी ने गोप वेश क्यो धारण किया और क्यों हमें नाना प्रकार के सुख दिए? इससे तो अच्छा था कि जब इन्द्र ने क्रुद्ध होके ब्रज को मिटाने के लिए मूसलाधार वर्षा की थी तो इसे मिट जाने देते कृष्ण ने गिरिवर धारण करके इसे क्यो बचाया और फिर बन मे रासो की आयोजना क्यों की? पहले तो यह सब किया और अब ऐसे निर्मम हम पर क्यों हो गए कि जो योग का पाठ लिख लिखके भेज रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि बुद्धिमान के लिए सकेत ही पर्याप्त है। तुम बड़े प्रवीण हो सव जानते हो इसलिए इतना ही कहना पर्याप्त है। अरे! हम अपनी क्या कहें उनकी निर्ममता को तो देखो कि उन्होंने माता पिता तक को भुला दिया। जब वे नन्द और यशोदा को ही भुला बैठे तो हम गोपियाँ किस गिनती में है?

१८८ गोपियाँ कहती है कि विरह की प्रचडता से दह्यमान इस ब्रज मे यदि कृष्ण नहीं आते तो अच्छा ही है। वे सुकुमार हैं उन्हें इतना दाह सहन न होगा इस पद मे व्यंग्य द्वारा श्रीकृष्ण के बिरह की तीव्रता दिखाके उनके शीघ्र आने के लिए ही निवेदन किया गया है। गोपियाँ कहती है कि उद्धव! गोपाल ने अच्छा ही किया जो आजकल वहाँ रह रहे हैं और यहाँ नहीं आते। जब यहाँ रहते थे तो चन्द्रमा और चन्दन ठढे थे और कोकिलों का शब्द मधुर था। परन्तु अब इनकी क्या कहें पवन भी आग के समान लगता है। अब तो ब्रज में सभी उलटे चलन हो रहे हैं। सुन्दर हार वस्त्र और चोलियाँ काँटो के समान दुःखदायी हैं तथा मस्तक का तिलक सूर्य सा दाहक हो रहा है। शय्या सिंह सी भयावह, घर अन्धी गुफा के समान और फूलों की मालाएँ तथा रत्न हार सापो के समान संताप दायी बन गए है। इन सब कष्टों का सहन करना हमारे लिए तो न्यायसगत है क्योंकि बन के रहने वाले ग्वाले ठहरे। परन्तु सूर

ामी श्रीकृष्ण जो सुख के सागर हैं वे क्यो इतने कष्टो को सहन करेंगे ? तो विलासी भ्रमर के समान सुख और समृद्धि पर मड़राने वाले राजा न ?

इस पद मे अतिशयोक्ति अलकार है ।

८६ गोपियाँ उद्धव से विनय करतीं हैं कि कृपाकर कृष्ण से कह देना कि ारी त्रुटियो को क्षमा करके मन में कभी हमारी याद करके कम से कम एक र दर्शन देने की कृपा करे । वे कहती है कि उद्धव ! समय पाके तुम श्याम से ानी बात कह देना कि मन मे हमारी याद कर ले और उनके ब्रज निवास में ते हुए जो कुछ हमारी भूलें हुई हो उन्हे अपने हृदय मे स्थान न दे । जदुनाथ जी हमे दीन जानके हमारी यदि कोई भलाइयाँ हो तो उनके साथ । भूलो को भी सहन करें । अब विरह की राशि मे जलते हुए हमें वे दयालु ‍क बार दर्शन दे । सूर के प्रभु श्याम के लिए हम बहुत क्या कहें इतना कह ा कि कम से कम बचनों की लज्जा तो निबाहै ।

० गोपियाँ उद्धव द्वारा कृष्ण से प्रेम निर्वाह की भीख माँगती हुई कहती हैं:— द्धव ! नन्दनन्दन से इतनी कह देना कि यद्यपि आपने ब्रज को छोड़ के ाथ कर दिया फिर भी अपने चित्त मे उसी प्रकार कृपा दृष्टि रखते रहना । से सर्वथा सम्बन्ध त्याग न करे कम से कम एक जगह साथ २ रहने की ी का तो निवाह करते रहें । हमारे गुणावगुणो पर क्रोध न करें अपने ानुदासो के गुण दोषो का इतना तो सहन करना ही होगा । हे श्याम ! ारे बिना हम क्या करेंगी कैसे रहेगी ? स्वप्न मे भी हमे कोई सहारा नहीं त सकता । आपकी कृपा और प्रेम ही हमारा अवलम्ब है पर सूर के प्रभु ाम ! आपने यह क्या किया ? हमारे लिए योग भेजा । भला सोचिए तो । योग और कहाँ विरह व्यथा का यह दाह ! दोनो मे कितना अन्तर है !

१ विरह के सन्ताप मे कृष्ण को छोड़कर और कोई सहारा नहीं है इस । को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! जितना कष्ट के हरि हमारे लिये यह सब कर रहे हैं यदि मन हमारे हाथ मे होता तो उनको इतना कष्ट क्यों होने देतीं ? हमारे वज्र से भी अधिक कठोर हृदय एक अचेत चित्तवृत्ति रहती है जो न कुछ जान सकती है और न सोच सकती

है। एक दिन वह था कि जब वे यहाँ थे और उनके साथ आलिंगन करते समय अचल का व्यवधान भी हमे असह्य था परन्तु एक दिन आज का है कि हमारे और उनके बीच मीलो फैली हुई यमुना की रेती है। (देखिये विरह मे सीता की उक्ति—तदाहारोऽपि दुःसहः इदानी भावयोर्मध्ये नदी पर्वत सागराः)। सूर के प्रभु श्याम से मिलने के लिऐ अब हम उन्हीं की शरण पकड़ती हैं। उन्हें छोड़ और कोई यह मिलाप नहीं करा सकता। गोपी कहती हैं उन भगवान् कृष्ण को जिनकी महिमा वेदों के लिये भी अगम्य है उनको बिना देखे अब मुझे चैन नहीं पड़ता।

१६२ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि शायद वे हमारे अपराधो से अप्रसन्न होके यहाँ आना नहीं चाहते। यह उचित नहीं। हमने उनकी यहा रहके सदा सेवा की है यदि उसमें कोई अपराध वन पड़ा तो उसे इतना तूल नहीं देना चाहिए। आश्रित लोगो के गुण दोषो पर ध्यान नहीं दिया जाता। किसी ने ठीक ही कहा है 'नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात् ।' इसीसे गोपिया उद्धव से कहती हैं—उद्धव ! हाय ! हरि ने यह क्या किया। मथुरा जाके राजकाज सँभाला सो तो बड़ा अच्छा काम किया। इसमें क्या बुराई है ? परन्तु यह नहीं समझ में आता कि उन्होने गोकुल को क्यों भुला दिया ? अरे मथुरा में राज्य करते और गोकुल की भी सुध लेते रहते तो क्या बुराई थी ? जब तक वे यहां ब्रज में रहे हम लोगो ने उनकी सदा सेवा की। एक बार यों ही उन्हें उखली से बाध दिया उन्होने उसकी ही अपने मन मे गाठ बाधली जिससे कि अब गोकुल की ओर पैर करके भी नहीं सोते। खैर जो भी करो सब ठीक है पर हम इतना कहे देती हैं यह कि तुम ब्रज नायक से कह देना कि उन्हें राजदुलारिया तो बहुत सी मिल जावेंगी पर चाहे करोड़ो प्रयत्न करे तो भी नन्द से पिता और यशोदा सी मा कहीं भी नहीं मिल सकेगी। और फिर ये गौएँ यह ग्वालो की टोली और दूध-दही की छाक और कहां रक्खी है ? कुछ भी हो सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि अब तुम कृपा करके वही करो जिससे कि कृष्ण फिर से ब्रज मे आजावे।

१६३ गोपिया उद्धव से प्रकारान्तर से कृष्ण को ब्रज में आने के लिए कह रही हैं। वे कहती है कि उद्धव ! तुम्हें ऐसा काम नहीं करना चाहिए। जो

असम्भव है वह भला सम्भव कैसे हो सकता है ? परन्तु तुम दोनों तो एक ही से काले हो धोने से सफेद कैसे किए जा सकते हो। तुम जानते हो कि गोपियाँ योग को नहीं अपना सकती परन्तु फिर भी हमारे लाख समझाने पर भी तुम बाज नहीं आते। तुम्हारी इस बेतुकी बात को सुनके हम सब दुःख में ऐसी निमग्न हुई हैं कि अब अचेत हो रही हैं। पर तुम्हारी वही बात है। हमें नहीं मालूम कि आप इस ऊसर के मैदान में क्यों गोता मार रहे हैं। जहाँ जिस चीज की जरूरत नहीं वहाँ उसे इतने श्रम से कहने-सुनने की आवश्यकता क्या है ? अरे उद्धव ! यहाँ तो ऊसर है चाहे जितना श्रम करो यहाँ कुछ नहीं उपज सकता अर्थात् आपका योग-बीज यहाँ अंकुरित नहीं हो सकता। यह आपका परिश्रम निरर्थक है। सच्ची बात तो यह है कि कीड़ों के कुल में बाँसों के कोठे के अन्दर जन्म लेने वाले भौंरे लोग भलाई को क्या जानें। नीच नीचता को कभी नहीं छोड़ सकता। वरना मधुकर ! तू इतना तो सोच ही सकता था कि तू स्वयं ललचाकर अपने दाँतों से बार बाँसों की गाँठ फोड़ता है पर कमल में बन्द होके उसके प्रेम के कारण उसे काटकर बन्धन से मुक्त होकर तू ही भला और कहीं क्यों नहीं चला जाता ? तू इतना लबार, उद्दण्ड और दोषी है कि हमारे मन को तेरे ऊपर विश्वास नहीं आता। हम आप से बार-बार एक ही बात कह चुकीं कि आप इस कार्य के लिए कभी न आवें। हाँ, सूर श्याम से यह समझाके कहदो कि यदि योग भी सिखाना हो तो जाके स्वयं अपने ज्ञान का पाठ यहाँ आके पढ़ाजावें।

इस पद में अन्योक्ति अलंकार है।

१६४ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि ज्ञान का उपदेश हमारी विरह-व्यथा का और भी अधिक उद्दीपक है। इसलिए तुम इसे रहने दो। किसी न किसी प्रकार कृष्ण के दर्शन कराओ जो एकमात्र हमारे लिए शान्तिदायक हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! कुछ और बातें करो। कीर्त्ति को खोने वाले ज्ञान के उपदेश को बार-बार कहके तुम हमारी देह जला रहे हो। इससे तो अच्छा है कि तुम मौन हो जाओ। जिन ब्रजवासियों का मन श्याम के प्रति प्रेमपीर का अनुराग लेकर पर्वत सा अटल है। उस पर स्थित रति के वृक्ष को जो अपने नयनाश्रुओं से सींचके रात-दिन जगके हरा-भरा रखते रहे हैं। कठिनता से पनपे

हुए उस रतिवृक्ष के लिए आज अलिरूप ग्रीष्म ब्रज में प्रकट हुआ है और उस ग्रीष्म में कठोर योग रूपी सूर्य को देखकर वह रति-पादप और भी अधिक मुरझा रहा है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ व्यथित होके कहती हैं कि उस मुरझाते हुए रतिपादप को तुम्हारे (श्रीकृष्ण के) स्नेह के मेह के बिना और कौन बचा सकता है ? भावार्थ यह है कि विरह-व्यथा मे भी दृढ़-सकल्प के साथ जिस प्रेम को निभाया है उसे योग के उपदेश से सर्वथा मत नष्ट करो। उस पर नेह भरी दृष्टि डालकर उसकी रक्षा करो इसी में हमारी भलाई है।

इस पद मे सॉगरूपक अलकार है।

१६५ गोपियाँ इस व्यथादायी परिस्थिति में योग का अनौचित्य प्रतिपादन करती हुई उद्धव से प्रश्न करती हैं—उद्धव ! देखो हमारे सन्मुख सच-सच बताना कि यदि घर में आगी लग जावे तो क्या बच सकता है ? जिस दिन से गोपाल ब्रज से सिधारे हैं हमारे श्वास का अनल ही हमारे शरीरो को भस्म किए डालता है। हमारा सीधा-सादा हृदय जब उनके मुखचन्द्र पर मुग्ध हुआ तो हमने उस हृदय को निकालकर उनके अर्पण कर दिया। अब उसकी अनुपस्थिति में भी तुम विवेक से काम न लेकर हमें योग सिखाने के लिए आ गये। जिसके हृदय ही नहीं वह योग का आधान कहाँ करेगा ? इसलिए हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि इस योग को आप कृपा करके उन्हीं सूर के प्रभु श्रीकृष्ण के पास ले जावे जिन्होंने कि इसे हमारे लिए भेजा है। 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये।'

इस पद मे रूपक अलकार है।

१६६ गोपियाँ ज्ञानोपदेश पर व्यग्य करती हुईं उद्धव से कहती हैं कि अरे भाई उद्धव ! सभी लोग स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए हैं। (यह ज्ञानोपदेश केवल हमारे परमार्थ के लिए ही नहीं भेजा गया है इसकी ओट में अपना शिकार खेलने की नीयत से यह उपदेश हमें दिया जा रहा है। क्यों न हो "सर्वः स्वार्थं समीहते")। देखो ! वह स्वयं तो कुब्जा से रॅगरेलियो में लगे हुए है और हमें योग सिखा रहे हैं। पर हमारी दशा तो बड़ी विचित्र है कभी-कभी घूमते-घूमते जब वन में निकल जाती हैं तो उसी श्यामलमूर्त्ति का रूप दिखाई देता है। परन्तु उन्हें अब यमुना की रेती मे रास रचाने में लज्जा मालूम होती

हैं क्यों न हो राजा हो गये है न ? हमें तो प्रतिदिन उनकी बाट जोहते जाता है नयनों के पलक नहीं लगते। विरह का रोग असाध्य हो रहा है। इसलिए सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव ! इस असाध्य रोग की चिकित्सा के लिए तुम कृष्णकुमार रूपी अश्विनीकुमार को भेज दो जिससे हमारा रोग मिटे और हम स्वस्थ हो जावें।

इस पद में रूपक अलंकार है।

१९७ गोपियाँ उद्धव से श्री कृष्ण की रुखाई पर व्यंग्य करती हुई अपनी विरह-व्यथा का निवेदन कर रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! श्री कृष्ण ने हमारे साथ अच्छा नहीं किया। उन्होंने हमें प्रेम का प्याला नहीं जहर का प्याला पिलाया है। हमें क्या मालूम था कि ये मिठबोला श्याम कर्म के कपटी हैं। हमें जहर देके हमारा सर्वस्व चुराके चोर के समान यहाँ से दवे पाँव निकल भागे। उन्होंने अधरामृत के माधुर्य में घोलके विरह-व्यथा के बीज रूप बाघ के (मूँछ के) बाल हमें घोट के पिला दिये मालूम होते हैं। उसने भीतर तक अपना असर पहुँचा दिया है और अब किसी औषधि की सामर्थ्य नहीं कि कुछ प्रतीकार कर सके। इस जहर की तासीर भी अजीब है न मरते हैं और न जीते हैं। अब या तो मर जावें तो शान्ति मिले या फिर हमारा मनचीता ही हो तो काम बने। यह बीच की अवस्था तो बड़ी दुखदायी है। यह दुःख नहीं देखा जाता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो उद्धव ! जो चेतावनी देके मारते हैं वे शूरवीर होते हैं परन्तु मिल कर दगा देने वालों का संसार में कभी भला नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण ने मित्रता करके हमें धोखा दिया। यह शूरवीरता नहीं यह तो भयंकर पाप है। देखिये नीति-शास्त्र इस पाप के विषय में क्या कहता है—'मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः। ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ।'

इस पद में रूपक अलंकार है।

१९८ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि इस विरह व्यथा का प्रतीकार एकमात्र श्रीकृष्ण से मिलन होना है और कुछ नहीं। इसलिए वे कहती हैं कि उद्धव ! अब तो हरि के आने से ही प्राण बच सकते हैं अन्यथा नहीं। उनकी विरह व्यथा से आकुल ये प्राण बार-बार उछलते-डूबते रहते हैं। कभी निकलते कभी

फिर घट में आ जाते हैं और जीवनावधि का सहारा लेके टिक जाते है। हा! जब हमने उन्हें ऊखल से बाँधा था तो बेचारे कैसे नीचे मुँह लटकाए हुए थे। वह तथा उनकी नवनीत चुराने के समय की जो मुद्रा थी उसकी शोभा आज भी मन में चुभी हुई है। ये अद्भुत शोभाएँ ज्ञान को अपनाके कैसे भुलाई जासकती है। पर हाय! उन्होने यह सब न सोचा और यह ज्ञान हमारे मत्थे मढ़ने को भेज ही दिया। हमे नहीं मालूम कि जिन्होने हमारे कुल और पति के त्रासों को नष्ट कर दिया अर्थात् हमने उनके त्रास को छोड़के जिन श्रीकृष्ण से प्रेम जोड़ा उनसे ऐसी बात क्योकर कही जाती है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि उद्धव! जरा सोचो तो गुणों के रस सागर श्याम को छोड़कर घड़े के पानी को कौन पीना चाहेगा, तुम्हारा निर्गुण घट-नीर है उसकी सगुण रस-सागर के आगे क्या गिनती है?

विशेष—सूर के सिद्धान्त के अनुसार श्री कृष्ण की भक्ति ही वह है जिसे उपनिषदों ने भूमा कहा है। देखिए—यो वै भूमा तत्सुख नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुख भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति। छान्दोग्य ७-२३-१.

इस पद में रूपक अलकार है।

१६६ गोपिया अपने प्रेम की दृढ़ता के साथ-साथ श्रीकृष्ण के प्रेम की कृत्रिमता का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं—उद्धव! अब हमें यह निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण से स्नेह का हीरा खो गया है और वह प्रीति की कोठरी जिसमें आज तक उनका निवास रहा था पुरानी होगई। इसलिए वे नई प्रीति की कोठरी की तलाश मे थे और वह अब उन्हें मिल गई। यदि ऐसा न होता तो वह उस प्रेम को कैसे भुलाते जिसे उन्होने अधरामृत से सींचकर बड़े लाड़-प्यार के साथ पाला था। लेकिन यह सब होते हुए भी उस प्रेम की सृष्टि को केशव ने बच्चो के खेल के घरोदे के समान समझा और उसे मिटाके चलते बने। साप अपनी केचुली को अपने शरीर से लगाए रहता है पर पुरानी होने पर उसे छोड़कर निकल भागता है। ठीक इसी प्रकार कृष्ण की प्रीति भी समझो पहले तो किस आसक्ति के साथ उसे लगाए रहे और जब वह पुरानी पड़ गई तो उसे छोड़कर भाग गए। जिस प्रकार कुम्हलानी हुई लताओं को छोड़कर भौंरा चला जाता है और फिर उस ओर मुड़कर भी नहीं देखता ठीक इसी

प्रकार इस पुरातन प्रीति को छोड़के वह रसिक चलते बने और फिर सुधि भी न ली। बात यह है कि बहुरगी लोग जहा जाते हैं वहीं सुखी रहते है उनके दिल बहलाने के लिए कोई न कोई मिल ही रहता है पर दुःख एकरगी अर्थात् एकातिक प्रेम करने वालो को है कि प्रेमी के विरह मे देह जलती रहती है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि समृद्धि के स्थान पर पहुँच कर पुराने परिचितो के प्रेम को भुला देना पशुता है मानवता नहीं। पशु ही धनी चोर के यहा जाके दाना पानी खाके सन्तोष का अनुभव करता है और पुराने मालिक की याद भी नहीं करता। परन्तु सहृदय मानव चाहे जितनी भी समृद्धि क्यो न मिले प्रेमी के बिना उसका उपभोग नहीं करना चाहता। वह तो विरह में जल-जल के अपने प्राणों की आहुति देने में ही गौरव का अनुभव करता है।

इस पद में रूपक, उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं।

२०० गोपिया योगोपदेश पर खेद प्रकट करती हुई उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! हम लोग आपकी दासी हैं। आपने हमारे गुणो को गाठ में क्यों नहीं बाधा, हमारे गुणों का विचार क्यो नहीं किया। अर्थात् हमारे कथन में भी कुछ सार है यह बात आप क्यों नहीं मानते ? आपने उसे न मानके जों कुछ किया उसे आज दुनिया जान रही है। पर जो कुछ हो आप जो भी भली-बुरी कहेगे वह सब हम सहन करेंगी ही। अपने करम का फल हम स्वयं भोगेंगी और किसी को उसका दोष नहीं देगीं। जब उत्कृष्ट पश्चात्ताप में आत्मा की निर्मलता मन को स्वच्छ और उदार बना देती हैं उस समय यह महत्वपूर्ण भावना उदय होती है कि पुरुष अपने भोगों के लिए स्वय को ही उत्तरदायी ठहराता है। आप तो बड़े आदमी हैं और बड़ों के भेजे हुए ही यहाँ पधारे हैं जो सब के सरदार हैं आपको कैसे दोष लगाया जा सकता है। हाँ इतनी बात अवश्य है कि सूर के प्रभु श्याम हमें राख पोतने की कहते हैं। हा ! अ ज हम उनकी आँखो में इतनी गिर गई हैं कि हमें राख लगाने की कह रहे हैं।

२०१ गोपिया उद्धव से कृष्ण के अन्तर्यामी होने पर व्यग्य करती हुईं कहती हैं कि उद्धव ! तुम जो कहते हो कि हरि हृदय में निवास करते हैं सो हमें कैसे विश्वास हो सकता है। क्या बे इतने क्रूर हैं कि हृदय में बैठे २ इन

बातों को सुन रहे हैं और जरा भी पिघलते नहीं। (अथवा हे क्रूर सुनो इन बातों को जो वे सह रहे हैं तो इस बात पर कैसे विश्वास हो कि वह हृदय में रहते हैं)। रात दिन कठोर विरहानल भीतर प्राणो को जलाए डालता है और प्राणों के सुलगने से कष्टदायी धुआं उठता है जिससे आँखो से आसू प्रवाहित होते रहते हैं। हमारा शरीर असीम कष्ट भोग रहा है और वह चुप्पी साधे भीतर बैठे हैं यह तो बड़ी अवज्ञा है। फिर उद्धव! तुम्ही बताओ कि सूरज के प्रभु श्याम अन्तर्यामी है इस बात को हमारा मन कैसे मान ले अर्थात् हम कभी यह मानने को प्रस्तुत नहीं। भाव यह है कि हमें अन्तर्यामी श्री हरि को अपनाने मे सन्तोष नहीं हम तो रूप माधुरी के निधि श्याम को पाकर ही सन्तुष्ट होने वाली हैं। ऐसा ही भाव पहले 'जो पै हिरदय माँझ हरी' इत्यादि। १०७ में वर्णन कर चुके हैं।

इस पद मे रूपक अलकार है।

२०२ गोपियाँ उद्धव से अनेक खरी खोटी कहके पछताने लगीं कि वे कहीं अप्रसन्न होके कृष्ण से कुछ और न कह दे जिससे वे भी अप्रसन्न हो जावे और फिर कभी दर्शन न दें। इसलिए बड़ी दीनता के साथ उनसे निवेदन करती हैं कि उद्धव! तुम सब जानते हो। तुम्हें नन्दनन्दन की शपथ है। तुम हमें वही सिखावन दो जो हमारे लिए उचित एवं हितकारी हो। तुम्ही बताओ जिसे माँस भोजन प्रिय लगता है वह शाक को खाना कहाँ तक ठीक समझेगा। जिस मुख से पान चबाए उसे सेम के पत्तो से कहा तक बहकाया जा सकता है। मुरली के मधुर गानों को सुनने वालों को सारगी सुनके कैसे सन्तोष हो सकता है? जिस हृदय में सुजन शिरोमणि श्याम निवास करते हैं उसमे निर्गुण क्यों कर आ सकता है? इसलिए हे उद्धव! जब तक हमारे शरीर में प्राण हैं हम बिना श्याम के इसी तरह वियोगिनी ही रहेंगी। वास्तव में हमें सुख उसी दिन मिलेगा जब ब्रज मे सूर के प्रभु ब्रजभान श्रीकृष्ण पधारेंगे।

इस पद में माला प्रति वस्तूपमालकार है।

२०३ गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि चाहे कुछ भी हो हम कृष्ण के प्रेम का परित्याग नहीं कर सकती क्योकि वही एक मात्र हमारे जीवन का आधार है। निर्गुण का उपदेश तो हमारे लिए प्राण लेवा है। वे कहती हैं—

उद्धव ! तुम हमारे इस विचार को गाँठ में बाँध लो। हमारी भलाई इसीमें है कि या तो उनके वियोग में यह शरीर ही मिट जावे या फिर हरि व्रज मे आकर रहने लगे। हमारे शरीर रूपी वन में विरह दावानल के लगने से ये इन्द्रिय रूपी जीव जलने लगे तो ये उस श्यामघन के आने पर ही शान्त होगे जबकि वे अपने मुख कमल से प्रेम पूर्वक मुरली बजाके माधुरी की बूदे बरसावेगे। हमारे मन रूपी मीन उन्हीं के चरण रूपी मान सरोवर में सदा एक तार प्रेम से निवास करते है। परन्तु उद्धव ! तुम इन्हे वहाँ से निकाल के निर्गुण की बालू में पटक रहे हो। सूर कहते है कि गोपियाँ उद्धव के इस अनर्थ पर खेद प्रकट करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! यह तुम्हारी कौनसी नीति है अर्थात् यह तो उलटी नीति या सरासर अनीति है।

इस पद में साँग रूपक एव पारम्परित रूपक अलंकार है।

२०४ गोपियाँ निर्गुण के उपदेश को अपने दृढ़ प्रेम के लिए एक लाञ्छन समझती हुई प्रकारातर से निर्गुण के अनौचित्य काप्रतिपादन करती हुई उद्धव से कहती हैं—उद्धव ! आखिर ये बाते चलीं ही कैसे ? यद्यपि ये बाते श्रीकृष्ण के मुख से निकलने के नाते बड़ी मीठी हैं पर हाय ! ये हमारे हृदय को बड़ी दुःखदायी हैं। इन शरीर-लताओ को श्याम ने स्नेह से खूब सींचके अपने हस्त-कमलो से ही पाला-पोसा था पर आज उस माली कृष्ण की अनुपस्थिति में ये उत्तरोत्तर सूखी जा रही हैं। जब यहाँ रहते थे तब तो व्रज पर वे बड़ी कृपा करते थे और इन व्रजबाला लताओं को सदा सग में रखते थे। पर आज सूर के स्वामी श्याम के विछोह में इस निर्गुण को सुन विरह की व्यथा से आहत होके मर क्यो नहीं जातीं ? भाव यह है कि प्रियतम के सूखे व्यवहार को जानने के पहले ही यदि हमारी मृत्यु हो जाती तो हमारी भलाई थी।

इस पद में रूपक अलकार है।

२०५ गोपियाँ अपनी विरह व्यथा का सदेश देती हुई उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! यदि कृष्ण सचमुच हमारे हितैषी हैं। (योग का सन्देश भेजकर उन्होने हितैषिता का दावा किया है इसलिए गोपियाँ कहती हैं कि यदि वे सचमुच हमारे हितैषी हैं) तो तुम कृपा करके उनसे हमारे सब दुःखों का वर्णन कर देना। तुम उनसे कहना कि तुम्हारे इस योग-सन्देश के दावानल

ने हमारे (विरहिणियो के) शरीर रूपी वृक्षो मे आग लगादी है। यद्यपि इस आग को हमारे नयनो की पुतली के बादल उमड़कर अपने प्रेमाश्रुओं से बुझाने का प्रयत्न करते हैं तथापि यह आग ठण्ढी नहीं पड़ती और न जला कर भस्म ही करती है कि किस्सा ही खत्म हो जाय। यह तो यो ही सुलगती रहती है जिससे धुँधुआकर शरीर-तरुवर काले पड़ गए हैं। ये वे ही तरुवर हैं जिन्हें तुमने बड़ी सावधानी से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया थ। इस भयकर सन्ताप से तरुवरो की समृद्धि और सौन्दर्य लुप्त हो गया है। इस शरीर-वन से कीर (नासिका), कपोत (ग्रीवा), कोकिला (स्वर माधुरी) और खजन (नेत्रो का सौन्दर्य) सभी को वियोग रूपी बहेलिये ने भगा दिया है। अर्थात् वियोग-व्यथा के कारण शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गो का सौन्दर्य हवा हो गया। ऐसी दशा मे हे उद्धव ! तुम उन सूर के प्रभु श्याम से पूछना कि इन दुःखो के मारे बेचारे ब्रज के लोग कैसे और कितने दिनो जियेंगे ?

इस पद मे—तनतरुवर, तुमदव, प्रेमजल, घनतारे और पथिक वियोग में रूपक अलंकार है।

जद्यपि उमगि—नहि सिरात में विभावना अलकार है

और—'कीर कपोत कोकिला खजन' मे

रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

२०६ उद्धव द्वारा बेतुके उपदेश को सुनके गोपिया उनसे कहने लगीं कि पहले अपने होश की दवा कराओ फिर बाते करना। तुम्हारा रोग असाध्य है तुम जल्दी मथुरा जाके श्रीकृष्ण जैसे वैद्य के जेर इलाज हो जाओ तव ठीक होओगे। इस प्रकार निर्गुण की छीछालेदर करती हुई वे उद्धव से कहती है कि उद्धव ! आखिर तुम यहाँ किसलिए आए ? हम तुमसे तुम्हारी भलाई की कहती हैं पर तुम्हे बुरी मालूम होती है। तुम यो ही बे मतलब बके जा रहे हो, शर्म नहीं आती। पहले जाके अपना इलाज कराओ तब औरो को उपदेश देना। मेरा कहा मानो तुम यहा से जल्दी ही सिधारो और ठढे २ घर जा लगो। वहा नगर में नाना प्रकार की दवाइयों का सुभीता है (यहा गाँव मे बहुत सुभीता नही) और फिर वहा कृष्ण सरीखे वैद्य हैं। पहले जो 'धुनि देखियत नहि नीकी' कहा है उसी भाव को व्यक्त करती हुई कहती है कि

उद्धव तुम्हारा रोग असाध्य है। तुमने यहा देर लगाई तो हमें डर है कि कहीं तुम यहीं खतम न हो जाओ और कदाचित् हमें कलक लगे! लोग कहेंगे कि उद्धव ब्रज मे गए थे वहीं मर गए। कुछ दाल मे काला जरूर है। इसलिए तुम शीघ्र ही जाके इलाज कराओ तो अच्छा है। सूर कहते है कि गोपियो ने उद्धव से कहा कि अगर तुम स्वस्थ होते तो इतना जरूर सोच लेते कि सच्ची वात को छोड़ के झूठी को कोई किसी प्रकार नहीं सुनेगा। मोती चुगने वाला हस आग कैसे चुग सकसा है। अर्थात् जिस प्रकार मोती चुगने वाल हस का आग चुगना असम्भव है उस प्रकार हम लोगो का सत्य बात (कृष्ण प्रेम) को छोड़ के असत्य बात (निर्गुण) का अपनाना असम्भव है।

इस पद में निदर्शना अलकार है।

२०७ गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करती हुई कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम को अभिव्यक्त करती है। वे कहती है कि उद्धव! तुम जाके कृष्ण से हमारी पीर का वर्णन करना। तुम उनसे कह देना कि तुम्हारे बिना हमे दिन मे चैन नहो और न रात को नींद। तुम्हारे वियोग में शारदीज्योत्स्ना भी अनल के समान सन्तापदायिनी हो रही है। जबसे अक्रूरजी तुम्हें मथुरा लिवा ले गए तब से हमारे शरीर विरह-वात से आक्रान्त हैं जिसके कारण हवाकी (वमन) आदि उपद्रव खड़े हो गए है। उद्धव! तुमने निर्गुण का सन्देश देके उसे और भी प्रचडता से जगा दिया है। चिन्ताओं के कारण शरीर हल्दी सा पीला पड़ गया हैं। उद्धव! तुम उनके अभिन्न प्रवीण मित्र हो इसलिए हम तुमसे सब परदा खोलके (बिना किसी दुराव के) सब कुछ कहे देती हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ अन्त में उद्धव से कहती हैं कि इस भयानक वाय का प्रतीकार हरि दर्शन रूपी काढ़े के बिना नहीं हो सकता। इसके लिए और कोई जड़ी हितकारी नहीं हो सकती कि जिससे हमारे हृदय को शान्ति मिले।

इस पद में अतिशयोक्ति, उपमा और रूपक अलकार है।

२०८ गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य करके उनके पात्रापात्र विवेकहीन निर्गुणोपदेश की निस्सारता प्रतिपादन करती हुई कहती हैं—अरे उद्धव! तुम दौड़के ब्रज क्यो आ गए? आखिर तुम नायब हो गए थे तथा राजा के मित्र का पद

तुन्हे मिला था तो दसेक दिन वहाँ कुछ कमाई कर लेते । जिस धर्म को तुमने हमारे कानो मे कहा उस धर्म का गान वहीं रहके करते रहते तो वहाँ के कद्र-दान लोग तुम्हें गुरु मानके तुम्हारा सत्कार करते और वे तुम्हारा दर्शन करके सन्तोष लाभ करते । यहाँ आने से तुम्हें क्या मिला ? धन गयो अरु धरम को नासा—वाली बात हुई । यहाँ श्रीकृष्ण के बिना कोई किसी को नहीं जानता तुम क्यो दलीलें गढ़-गढ के सिर खपा रहे हो ? अगर वहाँ रहते तो जिसका उपदेश तुम औरो को दे रहे हो उसकी स्वय अनुभूति सिद्ध करके सुख पाते । यहाँ हमे तो यही नहीं समझ मे आता कि तुम मनमोहनके दर्शन के अतिरिक्त हृदय से और को कैसे चाहते हो ? सूरदास कहते है कि गोपियो के दृढ़ प्रेम और मर्मस्पर्शी उक्तियो से प्रभावित होके उद्धव श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना बारबार पश्चात्ताप करने लगे । आज उन्हे प्रेममार्ग की श्रेष्ठता प्रतीत हुई और वे श्रीकृष्ण के दर्शनो के लिए उत्कण्ठित हो गए ।

२०६ यद्यपि गोपियो ने अनेक बार अपने प्रेम की दृढता और निर्गुण की नीरसता का वर्णन उद्धव से किया तथापि वे अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन से विरत न हुए । उनके इस कठमुँहेपन पर आक्षेप करती हुई गोपियाँ कहती हैं—उद्धव ! तुम्हारी तो यह टेब पड़ गई है । चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यो न करे पर तुम्हारा मन उस निर्गुण से नही उचटता है । तुम्हे नहीं मालूम कि जिस दिन से तुम्हारे यदुराज और हमारे मोहन यशोदा के घर आए उसी दिन से हमें हरि दर्श और स्पर्श के बिना और कुछ नहीं सुहाता है । उनके साथ हँसते-खेलते और उनकी कृपा दृष्टि का सुख भोगते हुए युग भी क्षण के समान बीतते थे । सभी के शरीर अत्यन्त तृप्त थे और आँखे तथा हृदय भी छके रहते थे । हमे तो जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति सभी अवस्थाओ में उन घनश्याम के शरीर की सुन्दर शोभा ही सुन्दर लगती है । सूरदास कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि यहा तो यह हालत है पर तुम उन कमलनयन की बातें न करके और बातो में ही हमें बहलाना चाहते हो यह कैसे हो सकता है !

२१० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि योग का आधान मन मे होता है और हमारा मन श्रीकृष्ण के साथ सदा रहता है फिर यह योग कहाँ रक्खा जावे । इसलिए वे व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! हमारे दस बीस तो मन है ही

नहीं। एक ही था सो वह भी हरि के साथ चला गया अब तुम्हारे ब्रह्म की आराधना कौन करे? इसके अनन्तर सूरदास कहते हैं कि सब की सब गोपियाँ माधव के विरह में आनन्द विभोर होगई उनकी दशा ऐसी मृतवत् होगई जैसे बिना सिर के देह की दशा हो जाती है। परन्तु उनके श्वास के साथ ही यह आशा भी अटक रही थी कि करोड़ो बरस जिए। जब तक श्वासा तब तक आशा के अनुसार वे सतत जीवन की आशा लगा रही थीं क्योकि न जाने कब दिन फिरें और कृष्ण आके दर्शन दे। यदि जीवन चला जायगा तो फिर दर्शन कहाँ से और कैसे होगा। अतएव उन्होने इस अवस्था मे करोड़ों वर्षो के जीवन की आशा लगा रक्खी थी। अन्त मे वे बोलीं कि उद्धव। तुम तो श्यामसुन्दर के मित्र हो और सब प्रकार के योगो मे समर्थ हो सो तुम्हारे लिए यह मुबारक हो। पर हे ईश्वर! हमारे मन को तो तुम रसिक श्रीकृष्ण सबधी बातो से भरा पूरा करो। हमे और कुछ नहीं सुहाता।

२११ गोपियाँ कृष्ण की रूखी बातो को उद्धय के मुख से सुनके झल्ला उठती हैं और अत्यन्त निर्वेद के कारण वे उन्हें अक्रूर तथा कृष्ण को खरी खोटी सुनाती हैं। वे कहती हैं—उद्धव! तुम सब साथी बड़े भोले हो! क्या कहने हैं? मेरे कहने का तो तुम्हे बुरा लगेगा पर यथार्थ बात यह है कि तुम लोग हद से ज्यादह कुटिल इकट्ठे हुए हो। एक हैं आपके नाम से अक्रूर पर काम से क्रूर जो नित रीतो को भरते और भरों को ढुलकाते रहते हैं। दूसरे है घन-श्याम जो मनके भी श्याम है और काली (बुरी) कामनाओ मे डूबे रहते है। एक ये हैं आप जो भौरो की कान्ति धारण करके निर्गुण गुन गुनाते रहते है। सूरदास कहते है कि गोपियाँ कहती है कि हमने खूब छर फटक के देख लिया (खूब अच्छी तरह विचार करके देख लिया) और इस परिणाम पर पहुंची हैं कि काले सब गुणो भरे हुए है भला गोरे इनकी समता को कैसे पा सकते हैं। कुटिलता मे ये सब के सब अद्वितीय है।

२१२ गोपियाँ उद्धव से कृष्ण के प्रति अपना प्रणय निवेदन करके योग की अनुपादेयता वर्णन करती हुई कह रही है कि उद्धव। हम तुम्हे कैसे समझावे तुम तो ऐसे दुराग्रही हो कि मानते ही नहीं हो। हमारे विचार से जो तुम्हें समझाती हैं वे खुद पगली हैं। हमारी दशा स्वय तुम्हारे प्रत्यक्ष है उसका

कथन करना पिष्टपेषण करना मात्र है। अरे मधुप ! यहाँ तो रात दिन श्रीकृष्ण कुमार के वियोग-दुःख से मरण हो रहा है। चित्त मे अभी तक वह मोहिनी मूर्त्ति और चचल नेत्रो की चितवन चुभ रही है। उन्होंने मुरली की धुनि से हमें पुकार-पुकार के हमारे मन को चुरा लिया है। उनके शरीर की शोभा और उस पर पीताम्बर के फेटे भूलने की वस्तु नहीं है। कधे पर लकुटिया रख के बन मे गैयो के घेरने की शोभा हमारे लिए अनिवर्चनीय है। इस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर श्याम मे आसक्त जिन लोगो के हृदय मे घनश्याम निवास करते है वे मुमुक्षुओ की धक्का-मुक्की मे क्यो शामिल होना चाहेगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि उद्धव ! तुम हमारे लिए योग के रूप में दुःखो के ढेर ले आए हो। भला रसिक शिरोमणि कृष्ण के बिना निर्गुण के कठोर आघातो से हम कैसे जी सकेंगी। परन्तु यह सब तुम्हे समझाना भैस के आगे बीन बजाना है।

२१३ गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह व्यथा की असह्यता बता कर उनसे कृष्ण को लिवा लाने का अनुरोध करती हुई कहती है :—उद्धव ! तुम श्याम को यहाँ लिवा लाओ यहाँ ब्रज के लोग रूपी चातक प्यास के मारे मरे जा रहे है तुम उनके लिए स्वाति बूद (श्रीकृष्ण के दर्शन रूपी) की बरषा कर दो। घोष रूपी कमल सकुच रहे है तुम सूर्य बन कर उन्हे विकसित करो। तुम देरी न करो यहाँ से जल्दी ही पहुँचो और उनसे हमारी दशा कह सुनाओ। उद्धव ! एक बात और यदि वे यहाँ आने को तयार न हो तो हमे वहाँ बुलवा लेना। अब तो सूर के प्रभु श्याम को जल्दी मिलाने से ही तुम सत्पुरुषो मे कीर्त्ति भाजन हो सकोगे। हमे जीवन मिल जायगा और भले आदमी तुम्हें सच्चा परोपकारी कहेंगे कि तुमने दुखियों को जीवन दिया।

विशेष—इस पद मे रूपक एव रूपकातिशयोक्ति अलकार हैं।

२१४ गोपियाँ उद्धव के योग के लिए व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उनके लिए तो श्रीकृष्ण का वियोग ही योग है और उद्धव का योग तो सर्वथा अकरणीय है। अतएव वे कहती हैं कि उद्धवजी ! हमने तो योग का पाठ उसी दिन पढ़ लिया था जिस दिन कि श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ रथारूढ़ होके यहाँ से चले थे

और जिस दिन से हमने सब प्रकार की माया ममता को तिलॉजलि देके अपने बेटे और पति तक की ममता को भुलाया था। उसी दिन से ब्रजागनाओ ने सासारिक माया मोह को छोड़ कर इस अटल व्रत का दृढ़ सकल्प किया था। उसी दिन से हमारी ऑखे बन्द हो गई मुॅह ने मौन धारण कर लिया और शरीर ने सतप्त होके अपनी कान्ति और तेज सुखा डाला। मुख पर मुरली धारण नदनन्दन का रूप हमारे हृदय मे समा गया है। नन्दनन्दन का हमारे हृदय मे यह ऐसा सयोग कि जिसे वर्णन करती हुई हम सब भूल जाती हैं। एक अनिवर्चनीय आनन्द मे सराबोर होके विदेह हो जाती हैं। आखिर तुमने योग भी तो ऐसा ही वर्णन किया है। (मिलाइये—नशक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वय तदन्तः करणेन गृह्यते) । प्रक्रिया भेद होते हुए भी फल में तो एकता है ही। आखिर हमे आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से ! अन्यथा योग की पद्धति तो इतनी कठिन है और उसके द्वारा इष्टदेव के दर्शन भी सर्वथा दुर्लभ हैं। स्वय ब्रह्मा भी बेचारे परेशान होके मर मिटे परन्तु फिर भी उस परम ज्योति को पहिचान न सके। यदि पहिचान लेते तो उसके लिए नेति-नेति क्यो कहते ? (विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्, न च तस्यास्ति वेत्ता इत्यादि उपनिषद्)। अगर उस पद्धति पर ही आपका आग्रह है तो बताओ उस योग को लेके क्या करें जिसका कि लक्ष्य निर्गुण प्राप्ति है जो निर्गुण सर्वथा अज्ञेय हैं। सूर कहते हैं कि गोपियॉ उद्धव से कहती हैं कि प्रक्रिया की कठिनता और लक्ष्य की अज्ञेयता के कारण हमने तो सरल मार्ग का अनुसरण किया है और हृदय को श्याम के अपने रूप से उद्भासित करके सयोग मे योग की अनुभूति सिद्ध की है।

२१५ गोपियॉ अतीत सुख का स्मरण कर के उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! अब वे दिन कहॉ ? (तेहिनो दिवसा गताः। भवभूति)। क्षण प्रतिक्षण उस शोभाशाली मुख को देख के जो अनिवर्चनीय आनन्द आता था वह अब कहॉ ? आज भी भटक भटक के मन उसी आनन्द पर जा अटकता है। वह सुन्दर रूप मुख में मुरली, सिर पर मयूर पंख और वक्षःस्थल पर पहना हुआ घुंघुचियों का हार धारण करके धूल-धूसरित हो जब वे गैयो को आगे कर के चलते और सुन्दर बॉके कटाक्ष फेकते जाते थे। ऐसे अनुपम शोभाशाली तब रात-

दिन अपने साथ खेलते खाते और बतलाते थे। ऐसे थे वे आनन्द के दिन। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि उन अतीत आमोद प्रमोदों का वर्णन भी आज हम नहीं कर सकतीं क्योकि हमे उनके शाही रौब को देख के भय और सकोच लगता है। आज इन बातो का वर्णन करना उनकी राजकीय स्थिति के प्रतिकूल होगा और सभव है कि हमारे इन कथनो पर १४४ लगादी जावे।

२१६ गोपिया श्रीकृष्ण के ब्रज परित्याग पर पश्चात्ताप प्रकट करती हुईं उद्धव से साभिप्राय प्रश्न करती है—उद्धव! आखिर बताओ कृष्ण ने ब्रज को छोड़ जो मथुरा को अपनाया तो इसमें कौन सी कीर्त्ति कमाली है। वे तो चौदहो भुवनो की सम्पत्ति के स्वामी हैं उन्हे राजाओ की भुक्त पराई राज्यश्री के भोग में कौनसा महत्व मिल गया? हाय! जो ऐसा काम करता है क्या उसी का अनुचर वेद उनके महत्व का वर्णन किया करता है? यदि ऐसा है तो वह श्रुति व्यर्थ मे ही उनकी सेवा मे जीवन बिता रहा है। यह तो उसकी सरासर क्रूरता है। परन्तु उद्धव! तुम तो बड़े सज्जन हो तुम्हे मन के कपट को त्याग देना चाहिए। तुम तो कम से कम बाते मत बनाओ सत्य का अनुसरण करो और सोचो कि आखिर सूर के स्वामी श्याम ने क्या सोचके यह काम किया है या किसी ने उन्हे यो ही बहका दिया है जिससे वे इस मथुरा की राज्य प्राप्ति को ही बड़ा महत्त्वशाली समझ बैठे हैं।

२१७ गोपिया उद्धव से योग की अनुपादेयता का वर्णन करती हुईं उसे रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण की प्रकृति के विरुद्ध बताती हुई व्यंग्यपूर्वक कह रही हैं—उद्धव! श्रीकृष्ण कभी योग का उपदेश नहीं दे सकते। शायद तुम्हें सुनने मे धोखा हुआ है। इसलिए जाओ फिर से सुनके आवो कि नंदकुमार ने क्या कहा है। यह जो तुम हमें भभूत लगा के योग साधना के लिए कह रहे हो यह श्याम का उपदेश हो ही नहीं सकता क्योकि उन्हें यह निगुण ज्योति कहाँ मिल गई जिसकी कि चर्चा आप बार-बार कर रहे हैं अभी कल की बात है कि वे अपने हाथो हमारे अगों का बनाव श्रृङ्गार किया करते थे। हमारा तो विचार है कि तुम गोपाल से बिछुड़ के अपनी ज्ञान निधि को खो बैठे हो। इसीलिए जो मन में आई बकते चले जाते हो। वास्तव मे यह तुम्हारा दोष

नहीं हैं उसका वियोग है ही ऐसा कि मनुष्य पागल हो जाता है। (मिलाइए—राम वियोगी ना जिये, जिये तो बौरा होहि। कबीर)। वह विरह ऐसा ही असह्य है। इसके सहन के लिए तो विधाता ने हमे ही बनाया है कि देखो वियोग मे भी होश की बाते कर रही हैं। धन्य है हमारी पत्थर की छाती। सूरदास कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती है कि हम जो यह सब स्वस्थ होके सहन कर रही हैं उसका भी श्रेय श्रीकृष्ण को ही है। वे ही हमारे घट के भीतर जीवन और प्राणो के अवलब हैं। इसीलिए अप्रतीकार्य वियोग मे भी जी रही हैं।

२१८ गोपिया उद्धव के निर्गुणोपदेश की खिल्ली उड़ाती हुईं उनसे व्यग्य-पूर्वक पूछती हैं कि उद्धव ! आखिर गोपाल ने हमारे लिए क्या सलाह दी है। तब एक गोपी ने दूसरी से कहा आओ सखी ! सब लोग मिलके नन्दलाल से मिलने की एक जुगत सोचे। देखो घर और बाहर जितनी भी ब्रजबालाए हैं सब को बुलालो और पद्मासन बॉध अपनी ऑखे बद करके बैठ जाओ। अरे ! हमने तो मधुप महाशय का कहा भी कर देखा पर हमारे हाथ तो कुछ नहीं लगा। कमलपत्राक्ष श्यामसुन्दर के दर्शन तो तनिक भी नही होते। सूरदास कहते हे कि इस प्रकार प्रलाप करती हुई वे गोपियाँ विरहसागर मे ऐसी डूबी कि किसी को कुछ भी होश नहीं रहा। गोपियो के प्रेम को परिपूर्ण देखके भ्रमर महाशय चुप हो रहे। तब तक कही से पपीहे की पी पी की ध्वनि उनके कानों में पड़ी और उनके मृत प्राय शरीर में प्राण से पलट आए। सूर कहते है हे पपीहे तू पी की पुकार फिर से कर तूने तो मृत विरहिणियो को पुनर्जीवित कर दिया।

२१९ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि अननुरूप प्रयत्न कर्त्ता की मूर्खता को प्रकट करता है। इसलिए हमें योग का उपदेश देने मे बुद्धिमत्ता नही हमे तो श्रीकृष्ण के दर्शन कराने मे ही हित है। वे कहती है कि उद्धव ! क्या वे भी कभी चतुरो का स्थान पा सकते है ? जो पराई व्यथा को नहीं जानते पर कहलाते सर्वज्ञ है। यदि मछलिया पानी से बिछुड़ती है तो उन्हे कोई किसी यत्न से कब जिला सकता है ? उसके लिए अनुरूप यत्न तो यही है कि उन्हे फिर से जल मे डाल दिया जावे। किसी के तो प्यास से प्राण जा रहे है उसे

पास रक्खा हुआ पानी न बताके सुदूर देश में स्थित अमृत का समुद्र बनाना कहा की बुद्धिमत्ता है ? हम तो श्यामसुन्दर के विरह से व्यथित है पर आप हमें निगुर्ण का उपदेश दे रहे हैं। हमारे नयन रूप भ्रमर सब फूलो को छोड़ के उसी कमल मुख के रस को पसन्द करते है। यह जानकर भी हमारे लिए ये सदेश क्यो भेज रहे हैं और मधुकर महाशय ! आप क्यो बकते चले जा रहे हो। सूरदास जी कहते है कि हे कुटिल तुम अपने मन को इतना कठोर मत करो। इन निरीह स्त्रियो की हत्या तुम्हारी कठोरता को ही व्यक्त करेगा।

इस पद मे रूपक एवं प्रतिवस्तुपमा अलकार हैं।

२२० गोपिया उद्धव से कहती है कि आपके आने से सतत विरह की सूचना पाके हमारा प्रेम और भी परिपक्व हो गया है इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि आप यहा पधारे। इसीलिए वे कहती हैं—उद्धव ! अच्छा ही किया कि आप पधारे। ब्रह्मारूपी कुम्हार ने जिन कच्चे घड़ो का निर्माण किया था उन्हें आपने आके पका दिया। उन कच्चे घड़ो को श्याम कृष्ण ने रंग दिया था तथा उनके अग प्रत्यगों पर चित्र बनाए थे। वे कच्चे घड़े नयनाश्रुओं के जल से गलने नही पाए क्योकि वे आज दिन तक कृष्ण के आगमन अवधि रूपी अट्टे पर सुरक्षित रक्खे रहे थे। आज उन कच्चे घड़ो को आपने व्रज के अवा मे रखके योग का ईधन और स्मरण की आग लगा दी। फिर वह आग हमारे ऊर्धश्वासो की फूँक से विरह की लपटे उड़ाके जल उठी। आपने उन घड़ो को खूब अच्छी तरह पकाने के लिए दर्शन की आशा से विमुख कर के फिरा दिया। अब ये सब पक करके तयार हो गए और प्रेमजल से लबालब भर रहे है। इन्हे और कोई नही छू सकता। सूर कहते है कि गोपियां उद्धव से कहती है कि ये जल भरे घड़े राजकार्य से गए हुए केवल नन्दनन्दन के मगल-कार्य के लिए सुरक्षित हैं। अन्य किसी का इन पर अधिकार नही ।

इस पद में सागरूपक अलकार है।

२२१ राधा अपनी प्रचड विरह व्यथा का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं—उद्धव ! हमारी यह छाती वज्र की है कि ऐसी आपत्ति में भी विदीर्ण नही हो जाती। मेरा मन रसिक शिरोमणि नन्दलाल से लगा हुआ है पर वे अब कहा मिले ? इसीलिए मै दिन रात झखती रहती हूँ। हा ! वे तो

ब्रज के लोगो को, माता-पिता को छोड़के क्या गए मानो गले पर छुरी फेर गए। अब तो कृष्ण ऐसे निर्दयी हो गए कि कभी हमारे लिए चिट्ठी तक न भेजी। हमारा हृदय सदा चातक के समान पी-पी रटता रहता है। हे सूर के श्याम! तुम अब स्वाति बूँद बनके इन चातक प्राणो की रक्षा करो।

इस पद में रूपक तथा उपमालकार है। उत्प्रेक्षा भी गम्य है।

२२२ गोपिया विरह व्यथा का वर्णन करती हुई श्रीकृष्ण के चरित्र पर व्यंग्य करती हैं। वे कहती हैं—उद्धव! मथुरा की रीति कौन सी है? हमारी समझ में ही नहीं आती। जरा तुम्हीं बताओ। तुम्हारे ब्रजनाथ (श्रीकृष्ण) राजा होके भी यह क्या अनौखी नीति अपनाए हुए हैं। जो चन्द्रमा सदा ठण्ढा था वह आजकल रात को सूर्य के समान दाहक हो रहा है। इधर पुरवैया हवा हमारा कहा न मानके हमारे शरीरो को पस्त किए डाल रही है। उनके पड़ौस मे ही ये अनीतिया होरही हैं और वे कानों मे तेल डाले हुए है। कस को भी उन्होने लोकोपचार के लिए थोड़े ही मारा है। उन्होने तो कुब्जा को हथियाने के लिए उसे मारा है। तभी तो देखो न अब उन दोनों मे कैसी अभिन्न प्रीति हो रही है। सूर कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती है कि रहने दो इन बातों को। विरह की सकटमय स्थिति में ब्रज मे कुछ भी भाता नहीं। गीत वही अच्छे लगते है जहा व्याह हो। गमी में गीतो की चर्चा नही सुहाती।

इस पद में अतिशयोक्ति अलंकार है।

२२३ गोपिया अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि ऐसी परिस्थिति मे योग का उपदेश उनके लिए और भी अधिक दुःखदायी है। वे कहती हैं—उद्धव! काल की गति अनेक है। देखो न मदनगोपाल श्रीकृष्ण ने पहले तो हमारा मन चुराया और अब ये उदासीनता की बाते कर रहे हैं। इस पर भी हमे अविगत और अनश्वर ब्रह्म प्राप्ति के लिए योग बताया जा रहा है। बस तुम्हीं बताओ हम क्या करे। गोपाल ने पहले तो छिप-छिप के वन मे लीला कीं और खूब सुख लूटा और आज ये रूखा सन्देश भेज रहे हैं। इन बातों को सोचके श्रीकृष्ण के लिए हमारी आखे उमड़ आती हैं और उन्हें न पाके वर्षा ऋतु की तरह बरसने लगती है। हमारी वाणी

सूर के स्वामी श्याम कें रस के बिना चातक से भी अधिक प्यासी हैं।

इस पद में उपमा और प्रतीप अलंकार है।

२२४ गोपिया बीते दिनो की याद करके उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम के लिए उपालम्भ दे रही है। वे कहती है कि—उद्धव ! लो यह शरत् काल भी आ गया। बहुत दिनों से रटते हुए एक टक निहारते हुए चातक को भी स्वाति का पानी मिल गया। हमारे मन में ध्यान हो आता है कि कभी हमारे प्रिंयतम भी मुख पै मुरली रख के गाया करते थे। इस चन्द्रमा को देखके यमुना के पुलिनों पर किए हुए उसी मधुर रास की याद हो आती है। परन्तु श्री कृष्ण की आजकल की क्रूरता को देखते हुए उन गुणों को याद करना मूर्खता होगी इस सम्भावित शंका का समाधान करती हुईं गोपिया कहती हैं जिससे मन की लगन लगी होती है उसके अवगुण भी गुण प्रतीत होते हैं। सूर कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण को लोकापवाद का डर है कि कहीं लोग यह न कहे कि इनके मित्र गॅवार हैं। इसीलिए उन्होने हमसे ऐसा बनावटी प्रेम दिखाया। अर्थात् जब यहा रहे तब प्रेम दिखाया और अब राजा होने पर उसे छिपा रहे है !

२२५ गोपियाँ अपनी विरह व्यथा की परिस्थिति में श्रीकृष्ण को सदा के लिए बिछुड़ा हुआ समझके उस दिन को कोस रही हैं जिस दिन कि वे गोकुल से बिदा हुए थे। वे उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! न जाने वह कैसा दुर्दिन था कि जब कृष्ण ने गोकुल को छोड़ा था। तभी तों जाने के बाद फिर कभी इस ब्रज मे न पधारे। आते भी क्यो अब वे अपने बिछुड़े हुए निजी खान्दान में मिल गए। गर्ग की बात जो उन्होने मथुरा की कथा कहते हुए कही थी आज समझ में आई। सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि भाई ! अब वे त्रिभुवन नरेश हो गए हैं और अपने कुल और विरादरी मे मिल गए उनका सम्बन्ध अपनो से जुड़ गया है फिर अब वे गैरों से मिलने क्यों आने लगे ?

२२६ गोपिया उद्धव से योग के उपदेश को अस्थाने प्रयत्न बताती हुई कह रही हैं कि उद्धव ! तुम अपनी योग की बात रहने दो इससे हमारे मनको शान्ति नहीं मिलती प्रत्युत तुम्हारी यह सुन्दर सोऽहं की वाणी सुनके हम

और भी सहम जाती हैं। तुम्हारा यह योग कुम्हेड़े के फल के समान है जो बकरी के मुँह मे नहीं समा सकता। अर्थात् योगकी बगैर साधना हमारी स्वल्प सत्ता के अनुरूप नही है। इसलिए तुम इसकी बार-बार चर्चा न करो अमृत को छोडके कोई जहर नहीं खाना चाहता। सरस-सगुणोपासना को छोड़के नीरस निर्गुण को कौन अपनाना चाहेगा? ये नेत्र उस रूप के प्यासे हैं इन्हें पानी देकर सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हाय! सूर के स्वामी ने जब हमारे मन को चुराया था तो हमारे शरीर की कुशलता पर भी कुछ विचार न किया। उन्होंने यह न सोचा कि हम इनका मन तो चुराते हैं पर इसके अभाव में इनके तनपर क्या बीतेगी?

इस पद में लोकोक्ति अलकार है।

२२७ गोपियो के बार-बार मना करने कर भी जब उद्धव योग की चर्चा नहीं छोड़ते तो गोपियाँ झल्ला के उन्हें शरारती बताती हैं और योग की अनुचितता प्रतिपादन पाती हुई कहती हैं कि उद्धव! अब हम तुम्हारी बात जान गईं। तुम यहा ब्रज में बिना ही काम के आए हो अर्थात् श्रीकृष्ण के यहा से योग का सदेश नहीं लाए योही घूमते-घूमते अनायास ब्रज में आ गए और यहाँ आके तुम्हें चुहल सूझी है कि कड़ुई बाते कह कहके हमारे हृदय को जला रहे हो। यदि तुम्हारे कथनानुसार प्रियतम श्याम हमारे अन्तस में रहते है तो हमारी विरह व्यथा क्यो नही गई? अरे चचल मति! तुच्छमति! तुम्हारी झूठी बातों से हमारा मन कैसे मान सकता है! भला सोचो तो कहा अगम्य योग की साधना और कहा हम ब्रजवासी। हम इस कठिन नीति को क्या जान सकते हैं। इस योग का उपदेश उस चतुर नटवर को दो जो अपनी प्रेयसी से सदा लिपटा रहता है। तुमको कुछ मालूम है वे वहाँ दासी से छेड़छाड़ कर रहे है और तुम यहा बाते बघार रहे हो सूर उद्धव से समझाके कहते हैं कि उद्धव! सचमुच तुम नितान्त निर्लज्ज हो कि अब भी यहाँ से उठ के नहीं चल देते।

२२८ गोपिया बेतुके निर्गुणोपदेश से खीझ के उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! हम तुम्हारी आबरू रख रही हैं। तुम यहा से हट के हमारी आँखों की ओट हो जाओ। तुम्हें देख के हमारी आँखे जलने लगती हैं। तुम कहते

हो कि गोपाल सत्य शील हैं सो हाथ कगन को आरसी क्या ? जाके देख लो न ! कि कुब्जा को घेरे पड़े हैं। भगवान् ने खूब दोनो का जोड़ा मिलाया है वे अहीर और वह कस की दासी। तुम जैसे यहां दूत भेजे हैं विधाता ने जैसी उनकी मति फेरी है उसका क्या वर्णन करे। सूरदास के प्रभु श्याम से आलिगन करके मिलने के लिए आज भी ग्वालिनि बाट जोह रही हैं।

२२६ गोपिया योग का उपदेश सुनके उद्धव से कहती हैं - कि उद्धव ! तुम्हें वेद का कथन तो माननीय होना चाहिए पर जिन्होने उस (कृष्ण के) मुख पर नेत्र खजनो की शोभा देखी है वे दूसरी वस्तु को क्यों कर चाहेंगे ? भाव यह है कि यद्यपि निर्गुणोपासना भी श्रुति प्रतिपादित होने से प्रमाण है तथापि जिन्हे श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के दर्शन हो चुके हैं वे उसे क्यो अपनावेंगे ? वह तो ज्ञानियों की चीज है। हा ! सब गुणो से परिपूर्ण तथा सपूर्ण सौन्दर्य के केन्द्र शोभाधाम कृष्ण हमे अधरामृत पिलाके बिछुड़ गए और यह ज्ञान भेज दिया। उद्धव ! तुम कहते हो कि वे कृपानिधि दूर नहीं सब अन्त सो मे समान रूप से व्याप्त हैं। यदि यह सत्य है तो गोपाल हमारे दुःखो को जानकर भी हमारे हृदय मन्दिर से बाहर क्यो नहीं आते और हमें सान्त्वना क्यो नहीं देते ? आप तो हमें एक चीज बता रहे है जिसकी रूपरेखा नहीं दीखती जोकि आनन्द रहित शब्दो की भूल भूलभुलैया मात्र है। तुम श्रीकृष्ण के गुणगान रूपी गन्ने को छुडाके सींग सी रूखी निर्गुणोपासना हमारे हाथ में पकड़ा रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि योग वीतरागी ज्ञानियो की चीज है भक्त जनो के लिए नही है। पता नही तुम वेद की उक्तियो के विरुद्ध क्यो कहें जा रहें हो।

२४२ विशेष—इस पद मे रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलकार हैं।

२३० गोपियाँ उद्धव से निर्गुण का सदेश सुनके श्रीकृष्ण की रुखाई का अनुमान करके उस पर व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! अब वे चित्त के कठोर होगए हैं। गिरिधर कृष्ण पहले प्रेम को भुला के अब नयो की ओर अनुरक्त होगए हैं। हा ! जिस दिन से उन्होने मथुरा को प्रस्थान किया है उस दिन से मेरा धैर्य खोगया है। हे रसिक नन्दकिशोर ! हम तुम्हारी जन्मासु जन्म की दासियाँ हैं। जो तुम्हारे कटाक्षो के बाण हमारे लगे थे वे हृदय

ांधने पर फूट गए है। सूर के स्वामी रणछोड़ श्रीकृष्ण जी ! आप न जाने ब कब मिलेंगे ? आखिर कटाक्ष बाणों की चोट करके इस प्रेम रणभूमि से ाग ही निकले। क्यो न हो हमेशा के रणछोड़ प्रसिद्ध हो। विशेष द्रष्टव्य णछोर श्रीकृष्ण के नामो में से एक है। सभवतः यह उनका नाम जरासध साथ युद्ध में कई बार भागने से पड़ा था।

इस पद में रूपक, अतिशयोक्ति तथा परिकर अलकार है।

३१ गोपियाँ श्रीकृष्ण की रुखाई पर व्यग्य करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव ! अब श्रीकृष्ण हमारे नहीं रहे। अरे मधुप ! वे तुम्हारे माधव थुरा रहके बदल से गए है। आश्चर्य है कि वे इतनी ही दूर जाके कुछ से छ होगए। हम बाट जोहते-जोहते हार गईं और उनका पता नहीं। होने तो वही हाल किया जोकि कपटी और कुटिल कोकिले कौओं के साथ रते है। जब तक पले तब तक उनके रहे और बड़े होने पर उड़के अलग जाते हैं। उनकी प्रीति स्वार्थ की प्रीति थी। जैसे भौंरा अपने मतलब से जो का रस लेके फिर उन्हे चित्त से बिलकुल भुला देता है उसी प्रकार होने हम से रगरेलियाँ करके हमें भुला दिया। सूरदास कहते है कि गोपिया द्धव से कहती है कि हम उनके लिए अब क्या कहे जो न केवल शरीर से पितु मन से भी काले है।

इस पद में उपमालकार है।

३२ गोपियाँ निर्गुणोपदेश के अनौचित्य पर उद्धव से व्यंग्य करती हुईं हती हैं कि उद्धव ! तुम्हारे पैर छूके निवेदन करती है कि तुमने बड़ा अच्छा या जो यहाँ पधारे। तुम्हारा दर्शन माधव के दर्शनो के तुल्य है। तुमने र्शन देके हमारे तीनो प्रकार के ताप (आधि भौतिक, आधि दैविक और ाध्यात्मिक) नष्ट कर दिए। हम अहीरिन हैं तुम्हें चाहिए था कि तुम ारे लिए किसी अहीर का कथन करते पर तुम अहीर का नाम छोड़ के ं निर्गुण समझाने लगे। तब तो इस ग्वालो की बस्ती में बहुत से खेल ते और ऊखल से अपनी भुजा बँधवाई। हा ! कैसे थे वे दिन ! परन्तु ्य में खेद तो यही है कि सूर के स्वामी श्याम ने फिर चरणो के दर्शन दिए।

३३ गोपियाँ निर्गुण के अनौचित्य पर व्यग्य करती हुईं उद्धव से कहती

हैं—उद्धव ! तुम हमे निर्गुण बता रहे हो सो तुम्हीं क्यो नही उसे ले लेते ? हमें हमारी सगुण मूर्ति नन्दनन्दन को लाके दे दो । जो मार्ग बड़ा कठोर और अगम्य है जहाँ किसी भी प्रकार पहुँच नहीं हो सकती और जिस मार्ग पर चलते हुए सनकादि सिद्ध मुनीश्वर भी भूले कर चुके हैं उस मार्ग पर अबलाएँ कैसे जायँगीं । हमारा जन्म ही जब पच तत्त्वों से है और सत्व, रज और तमोगुणमयी प्रकृति ही हममें प्रधान है तो हम उससे परे की चीजो को कैसे जान सकती हैं ! यह सब जानबूझ के भी जब तुम ऐसी बाते करते हो तो सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि तुम तो हमसे मन, वचन, कर्म से अर्थात् सर्वात्मना से शत्रुओ की सी बाते कर रहे हो ।

२३४ गोपियाँ निर्गुणोपदेश को 'क्षते क्षार-मिवाहितम्' समझ के उद्धव से और भी अधिक व्यग्यों की वर्षा करने की कहके अपनी बेबसी का वर्णन करती हैं । वे कहती हैं कि उद्धव ! कुछ और कहने को बाकी रह गया हो तो हम तुम्हारे पैर छूके कहती हैं कि वह भी कह डालो । हमारे अदिन हैं इसलिए हम सब सुनने और सहने को प्रस्तुत हैं । गोपियों में से ही एक दूसरी गोपी से सम्बोधन करके कहती है कि सखि ! आज तक हमने तो यह उपदेश देते किसी को न सुना और न देखा । यह रूखा और कड़ुआ उपदेश जो सुनते ही जीवन के लिए सन्तापदायी प्रतीत होता है । देखो ! यह ऐसे उपदेश को हमारे हृदय पटल पर अङ्कित करना चाहता है । हमारे हृदय में तो सुषमाधाम श्याम निरन्तर निवास करते हैं वे एक पल केलिए भी इसमें से निकलते नहीं । इसलिए उद्धव ! इस तुम्हारे निर्गुण के लिए यहाँ स्थान नहीं है । इसे तुम वहाँ ले जाके रक्खो जहाँ अमन-चैन हो । हम सब तो गोपाल की उपासिकाएँ (व्रतधारिणी) हैं अतएव हमसे इन बातो को मत करो । सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—हमारी राय मे तो तुम इसे मथुरा में कुब्जा के घर सँभालके रख छोड़ो वहाँ आजकल सुदिन है ये बाते वहाँ रुचिकर हो सकती हैं ।

इस पद में काकुवक्रोक्ति अलकार है ।

२३५ गोपियाँ निर्गुणोपदेश के अनौचित्य को प्रतिपादन करती हुईं उद्धव से व्यग्य कर रही हैं कि उद्धव ! केवल ठकुरसुहाती ही मत कहो सबको भानेवाली

ात कहो। जरा बताओ तो कि जिसे तुम ज्ञान सिखाने आए हो वह ब्रज में ान सी स्त्री थी ? देखो ! बात सोचसमझ के करना चाहिए। हमारा यह ाखावन मानलो। यदि तुमने अभी न सुना तो आखिर को तो सुनना ही ड़ेगा। कवि कहता है कि उद्धव गोपियो के इस कथन को सुनके अवाक् रह ये उनके मुँह से बात नहीं निकलती। वह गोपियो की प्रीति देखके परास्त । गए। गोपियो ने उन्हें चुपचाप देखके कहा उद्धव ! देखने मे तो तुम दया अवतार प्रतीत होते हो पर जब तुम्हारी बाते सुनती हैं तो पता चलता है ‚ तुम कितना दूसरो को दुःखदायक हो। उद्धव ! हम तुमसे फिर कहती है ; तुम अब वही करो जिससे हमारे हृदय का दाह मिटे और शान्ति मिले। न तो हमें सीधी सड़क से हटाके ऊबड़-खाबड़ काँटो से युक्त मार्ग बता रहे ।। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि भाई ! जो तुम कहते । सो ठीक तो है पर जानते नहीं कि बकरे के मुँह में कुम्हेड़ा कहीं माता है ?

इस पद मे लोकोक्ति अलकार है।

३६ गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश व्यथादायी बताके उससे विरत होने लिए कह रही है—हे उद्धव ! तुम हमारी एक बात सुनो तुम जो बात हमें खा रहे हो वह तो हमें बिलकुल नहीं भाती। जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्र र्शन के बिना और कमल सूर्य के बिना मलिन रहते है उसी प्रकार कृष्ण के ना हम भी तड़प-तड़प के मुरझा रही है। जिन कलेवरो को चन्दन और पूर घिस के लगाके सजाया वे भभूत कैसे रमाएँगे ? जिन श्रवणो ने मुरली र की मुरली से लगन लगाई उन्हें सिगी की बात सुनके डर लगता है। फिर ो तुम अबलाओ को योग की शिक्षा दे रहे हो। तुम्हें इसमे जरा भी लज्जा हीं आती। जिन्होने कृष्ण के आलिगन रूपी अमृत का स्वाद लिया है वे ागुंण की कड़ुई बाते कैसे गले उतारेंगी ? आज दिन तक तो उनके प्रत्या-मन की आशा से अवधि के दिन गिन-गिन के जीती रही पर अब ये प्राण हीं ठहरते। हाय रे हमारा अभाग्य ! कि सूर के स्वामी श्याम ने हमे ऐसे ‚ला दिया जैसे पेड़ पुराने पत्ते को उतार के फेंक देता है। (मिलाइए— ागौ केहि की डार।) —जायसी।

इस पद में उपमालकार है ।

२३७ गोपियाँ अपनी विरह की पीर का वर्णन करके उद्धव से निर्गुणोपदेश के लिए मना करके उचित प्रतीकार करने की विनय करती हुई कहती है कि उद्धव ! हमारी आँखे अत्यन्त अनुराग में आसक्त है । ये टकटकी बाँधे उनका मार्ग जोहती हुई रोती रहती है । भूल करके भी पलक नही लगाती । बिना वर्षा के ही वर्षा ऋतु आगई तुम स्वयं प्रत्यक्ष देख रहे हो । अब तुम मालूम नही और क्या करना चाहते हो ? इस शुष्क ज्ञान को छोड़ दो । हे श्यामसुन्दर के प्रिय मित्र तुम तो सहज ही सब बात से जानकार हो । जिस प्रकार भी सम्भव हो ऐसा उपाय करो कि सूर के प्रभु श्याम हमे मिल जावे ।

इस पद मे विभावना अलकार है ।

२३८ गोपियां विरह व्यथा की अवर्णनीयता उद्धव से प्रकट करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! वर्णन करने का लाख प्रयत्न करने पर भी विरह-व्यथा वर्णन नहीं की जाती । मदन गोपाल श्रीकृष्ण के बिछुड़ने से प्राण मुरझा रहे हैं । जब रथ पर चढ कर श्रीकृष्ण चल दिए और उन्होने इधर देखा तभी सब व्रज-बालाएं अपने आपको परम अनुग्रहीत समझ के उठके उनके साथ लग लीं । आज यह व्रजबालाओ की दृष्टि ही और हो गई है जो विरह की बात से पीड़ित होके आँय बाँय साय बक रही है । इन पगलो की सृष्टि को तुम क्या बार-बार उत्तर दे रहे हो । तुम तो पूर्ण ज्ञानी हो । इन पगलो के मुँह लगने से तुम्हारी प्रतिष्ठा घट चली है । क्या किया जाय ? अब जैसे हो प्रतीति (विश्वास) की प्रतिष्ठा कराओ । सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि विरह की पद्धति बड़ी कठिन है वह सर्वथा वर्णन से परे की वस्तु है ।

२३९ गोपिया श्रीकृष्ण से बिछुड़के वियोग मे भी जीवित रहने के कारण अपने प्रेम को धिक्कारती हुई कहती हैं कि उद्धव ! यह मन बड़ा कठोर है । जिस प्रकार जल के निकलने से कच्चा घड़ा फूट जाता है उसी प्रकार नन्दलाल के बिछुड़ते ही न जाने यह भी क्यो न विदीर्ण हो गया । सचमुच व्रजनाथ से परित्यक्त होकर के भी प्रेम की परिपाटी से अनभिज्ञ ही रहीं । यदि सच पूछा जाय तो हमारा प्रेम ही उनके प्रति वास्तविक नहीं है । हमारे व्यवहार ने तो

सब प्रेम की रीतियों को लज्जित कर दिया। जल में रहने वाली बेचारी मछलियां हमसे कहीं अच्छी हैं जो अपने प्रेम के नियम का निर्बाह करती हैं। जल से वियुक्त होते ही वे अपने तन को त्याग देती हैं और केवल जल को ही प्यार करती हैं। परन्तु उद्धव! सुनो यह भी एक आश्चर्य ही है कि मछलियाँ बनने वाली भी हम बिना श्रीकृष्ण रूपी जल के जीवित रहीं। पर सच पूछो तो आश्चर्य भी कुछ नहीं क्योंकि सूर के प्रभु श्याम आने की कह गए थे इसी बात तै हमने अपने मन में विश्वास कर लिया।

इस पद में उपमा एवं रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

२४० गोपियाँ उद्धव से कोरी सान्त्वना न देके हरि के दर्शन कराने का अनुरोध करती हुईं कहती हैं—उद्धव! समझाने से क्या होता है? हमारे मन में तो वह प्रियतम की श्यामल मूर्त्ति चुभी है। फिर तुम व्यर्थ में इस योग को क्यों लाए? हम तुम्हारे चरण छू के निवेदन करती हैं कि श्रीकृष्ण से कह देना कि एक बार हमें दर्शन दे दें। सूर के प्रभु श्याम से विनय के साथ यही हमारी पुकार कह देना।

२४१ गोपियाँ उद्धव से योग के बदले श्रीकृष्ण के दर्शनों की याचना करती हुईं कहती हैं—कि उद्धव! हमें योग नहीं सुहाता। हमारे चित्त में सुन्दर घनश्याम निवास करते हैं उन्हें हम कैसे भुलादें? तुमने जो कुछ कहा वह सब सच है पर हमारे लिए उस सबका कोई मूल्य नहीं। इस हृदय के अन्तस् में सगुण श्याम सतत व्यापक रहते हैं फिर निर्गुण के लिए स्थान कहाँ है? हम चरण छूके निवेदन करती हैं कि तुम मोहन से कह देना कि योग कुबरी को दे दें और सूर के प्रभु श्याम अपना रूप हमारे संमुख कर दें जिसे हम देखती रहें।

२४२ गोपियाँ उद्धव से फिर वही बात कहती हैं कि योग हमारे योग्य नहीं और श्याम सुन्दर से लगे हुए हृदय में उनको छोड़ के अन्य किसी के लिए स्थान भी नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई वे कहती हैं—कि उद्धव! हम योग पद की सिद्धि नहीं कर सकतीं। हमने उस सौन्दर्य निधि की आराधना की है जिसे लोग श्याम सुन्दर, गिरिधर और नन्द नन्दन आदि नामों से पुकारते हैं। आखिर जिस शरीर पर रच रचके आभूषण पहिरे और जिसे

नाना सज्जाओ से सजाया उसी शरीर पर भस्म चढ़ाने के लिए तुम कह रहे हो। यह कैसी अनमेल बात है। ऐसी बेतुकी बाते करते हुए तुम्हे लज्जा नहीं आती ? सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे अन्तस मे तो सदा श्यामल मूर्त्ति ही मोर पखो का मुकुट पहने वास करता है और हमारा चित्त उन्हीं से लगा है फिर इस योग को कौन सभाले ! योग चित्तवृत्ति के निरोध का नाम है और जब न चित्त खाली और न उसकी वृत्ति को फुरसत तो भला योग को कैसे और कहाँ सभाल के रक्खा जा सकता है ?

२४३ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण को बुलाने का सन्देश देके कुब्जा और कृष्ण के प्रेम पर व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! उनसे यह सन्देश कह देना शायद वे इससे सकुचते हो कि लोग कहते हैं कि वे कुब्जा के प्रेम मे मस्त हैं। यह सकोच—उनसे कह देना कि लेशमात्र भी न करे। कभी तो मयूर पखो के लुभावने वेष के साथ इधर अवश्य पधारे। हमारे मन को प्रसन्न करने से (उनसे कहना कि) तुम भुवन नरेश अर्थात् साक्षात् ईश्वर हो जाओगे। (देखिये—दीनै सब कह लखत है दीन लखै नहि कोय। जो रहीम दीनहिं लखै दीन बन्धु सम होय—रहीम)। जब तुम स्थिर चित्त होके सब देशो के बारे मे सोचेगे तो ऋषीकेश ! तुम अवश्य ही इस परिणाम पर पहुँचोगे कि ब्रज के सिवाय और अखिल सृष्टि में कोई और बैकुण्ठ नहीं है। जब यह बात है तो तुम्हें यह किसने सलाह दी कि ब्रज को छोड़ देश परदेश भटकते फिरो। तुम्ही बताओ कि यशोदा सी माता और राधा सी प्यारी किसी और देश मे भी मिल सकती हैं। यह कहते हुए वह (स्यामा) युवती राधा स्नेह शिथिल होके अचेत हो रही। स्नेह विभोर होने से वह निश्चेष्ट और अचेत हो गई। श्रीकृष्ण के अनुराग से अनुरक्त उसका नव पल्लव सा कोमल मनका राग तत्काल ही फूट निकला जिससे वह (सुदेस) मगल तारे की भाति लालिमा मय हो गई। भाव यह है कि गोपी के उपर्युक्त कथन को सुनके राधा झेंप से लाल हो गई उस लालिमा पर कल्पना करते हुए कवि कहता है कि मानो वह लालिमा उसके पल्लव के समान कोमल मन की अनुराग लालिमा का आभास था। अथवा मन में जो अनुराग की आतरिक लालिमा थी वह इस कथन से भास्वर होगई। सभवतः इसीलिए कवि

पहले प्रवाल और बाद मे सुहेस (मगल) का प्रयोग पद में किया है। वह प्रेम की प्रबलता मे इतनी अचेत हो गई कि उसे सुध न रही कि बह उद्धव कौन है। (दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना) के अनुसार उसे यह भी पता चला कि विरह व्यथा क्या है ? वह भूल गई राजधानी मथुरा मे आजकल कौन राजा है। उसे कुछ न होश रहा कि ज्ञान कैसा ? किसने कहा ? किससे कहा ? और किसने उपदेश भेजा है ? वह तो साक्षात् मुरलीनाद से भरे पूरित माधुरी शोभावान् मुख के सन्मुख दर्शन करने लगी। उसे सामने प्रतीत हुआ कि गो धूलि से कबरे बाल किए अभिनेता के नट के समान प्रियतम एकबाकी लटक के साथ बन से आते हुए प्रवेश कर रहे हैं। बस फिर क्या था ? अत्यन्त आतुरता से दौड़कर प्रियतम के नेत्र कमलो को पोछ उठी और उनके मुख कमल की मुरझाती हुई शोभा को छू छूकर उसे बड़ी विशेषता से देखने लगी सूरदास कहते हैं यह सम्पूर्ण आनन्दो से युक्त भ्रमगति (यह भ्रान्तदशा) धन्य है जिसमे नित्य विहार करते हुए सोम और सनकादि सिद्ध, इन्द्र, अज और शारदादि देवविभूतिया तथा वेद महेश और शेषनाग गान किया करते हैं।

इस पद मे रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलकार हैं

२४४ गोपिया उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि उद्धव ! श्रीकृष्ण ने प्रेम प्रकट करके हमारे चित को चुरा लिया। उद्धव ! वे अपने चचल कटाक्षो से देखते हुए हमारे महावर चदन आदि लगाया करते थे। तुम्हें हम बड़ा सज्जन तथा जदुकुलनाथ के चतुर सखा मान के यह बात चला रहीं हैं। देखो सबेरे सवेरे अपने मन मे खूब सोच समझ के सच्ची बात बताना कि जव किसी के हृदय को शरत्कालीन कमल से सुन्दर नेत्रो के कमान के समान भौहो से छूटे हुए कठोर बाण लग के बीध डाले तो वह कैसे जी सकता है ? आज मोहन मथुरा रह रहे है और व्रज में योग का सन्देश भेजा है। हाय ! युवतियो के लिए यह उपदेश देने पर पृथ्वी क्यो नहीं काप उठी ? तुम श्याम के प्रवीण मित्र हो स्वयं मन में विचार करके देखो कि हमारे प्रियतम राजा हो गए और उन्होने एक सुन्दरी भी अपनाली। इससे अधिक अवहेलना और क्या हो सकती है ? ऐसे निर्मोही का तो परित्याग कर

देना ही श्रेयस्कर है। पर करें क्या? उन्होंने कोमल हाथो में पकड़ के अधरों पर रख के जो मुरली की तानें सुनाई थी उनकी पीयूष धारा से कान आज भी अप्लावित हो रहे है। उन्हें और कुछ सुनाई नहीं देता। बेचारी मृगछौनों के से लोचनो वाली इन भोली अवलाओ की दशा और हिरणियों की दशा एक सी ही है। हिरणियाँ नाद के विष के ताप में मारने वाले व्याध का खयाल नहीं लातीं इसी प्रकार इन मृगशावकनयनाएओ ने भी कटाक्षो के विष से संतप्त होके मारने वाले घातक हरि को न पहचान पाया। गोपाल गौ और ग्वालों को त्यागकर चले गए। खूब कीर्ति भी कमाई। पर क्या यह सब उचित है? तुम जरा इस बात को समझा के अच्छी तरह कहना कि यह आपकी वैदिक मर्यादा भी भली है?

इस पद में—उपमा, (मृगललोचनी में उपमान लुप्तोपमा भी है), रूपक तुल्ययोगिता एव काकु वक्रोक्ति अलंकार हैं।

२४५ गोपिया उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालंभ देती हुईं दोनों को फटकारती हुईं कहती हैं—कि उद्धव! अब तो दुनिया जान गई है कि जैसे तुम और तुम्हारे मित्र हैं। दोनों खूब घुटे हुए बड़े गुणी हो। तुम दोनों चोर और हृदय के कपटी हो। भगवान् ने खूब चोर और गॅठकटों की जोड़ी मिलाई है। तुम भी काले और वे भीं काले। चाहे कोई बेचारा कैसा ही क्यों न हो पर तुम्हें अपने मजे के लिए उसका सर्वस्व हरण करने से मतलव। परम कृपण होके थोड़े से ही धन से कोई अपना जीवन यापन करना चाहे तो उस का भी तो तुम्हारे यहा निबाह नहीं है। अर्थात् विलासिता के द्वारा विभूतियों के उत्कर्ष को दिखाने वाले लोगो का सर्वस्व अपहरण किया जावे तब तो कोई ऐसी बात नहीं है पर तुम्हारे यहा तो थोड़ी विभूति वालों तथा कृपणता से अपना जीवन निर्वाह करने वालों को भी निभाने नहीं दिया जाता उनकी लटू पटू भी चट करली जाती है। भाव यह है कि हमने उनके प्रेम का अत्यधिक भोग किया होता और उसका यह दण्ड भोगना पड़ता तो ठीक था परन्तु यहां तो फूंक-फूंक के पैर रखते हुए बड़ी कृपणता से उस प्रेम का भोग करने पर भी यह सजा भुगतनी पड़ रही है। (देखिए—कीन्ही सदा कृपण की संगति

कबहुँ न कीन्हों भोग—भ्रमरगीतसार)। सूरदास कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती हैं कि सच्ची बात तो यह है जो कोई तुम लोगों से प्रेम करे उसका सत्यानाश ही हुआ समझो।

२४६ गोपियां श्रीकृष्ण के प्रेम का उलाहना देती हुईं उद्धव से कहती हैं कि मधुकर! आपके चातुर्य का क्या कहना है! आपकी चतुरता और किस को मिल सकती है? लेकिन हां आप हमारे लिए बड़े भोले बन रहे हैं। जैसे आप हैं (गांठ गांठ कुम्मैत) वैसे ही आपके आक़ा साहब (स्वामी) हैं, एक ही रंग और एक ही बाना। पहले तो हमें प्रेम का अमृत पिलाया और बाद में अब योग बखान रहे हैं। यदि योग ही देना था तो प्रेम क्यों दिया था सूर कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती हैं कि हमारी तो वह दशा है जो कि किसी भौंरे की कभी हुई थी। कहते हैं कि एक बार कमल के आनंद में मग्न होके भौंरे को यह भी न पता चला कि सूर्य कब अस्त हो गया। वह उसी प्रकार रंगरेलियों में अचेत था कि कमल ने अपनी पंखड़ियों को चारों ओर से समेट लिया। चारों ओर से बन्दी होके भ्रमर बेचारा सोचने लगा कि कोई बात नहीं प्रातःकाल सूर्य की किरणें फैलने पर जब कमल विकसित होगा तभी चलेंगे। स्नेही के आलिंगन पाश को छिन्न-भिन्न करके चला जाना प्रेम पद्धति के अनुकूल नहीं है। फिर स्नेही के आलिंगन पाश का बंदी होना भाग्य से ही नसीब होता है। इस प्रकार सोच ही रहा था कि एक हाथी ने आके उस कमल को तोड़ मरोड़ के फेंक दिया। दुर्दान्त दन्ती से यातना पाके भ्रमर को अपनी अत्यासक्ति पर पश्चात्ताप हुआ। उद्धव! सचमुच आज इस इस वियोग के उत्कट संताप में हम भी कभी कभी हाथ मल-मल के अपने अत्यधिक स्नेह के लिए पछताया करतीं हैं।

इस पद में उपमा तथा काकु वक्रोक्ति अलंकार तो है ही। साथ ही उपर्युक्त व्याख्या के लिये संस्कृत के निम्न लिखित श्लोक पर दृष्टि रखना आवश्यक है। सूर ने उसे अत्यन्त प्रसिद्ध जान के उसकी ओर संकेत भर कर दिया है। उसका अविकल भाव नहीं दिया है। वह श्लोक यह है:—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति पद्मगते द्विरेफे हाहन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार॥

२४७ गोपियाँ योग के सन्देश पर व्यग्य करती हुई उद्धव को मधुकर सबोधित करके कह रही हैं—हे मधुकर ! तुम यह योग का सदेश सुनाके हमारे हृदय मे एक टीस उत्पन्न कर रहे हो। मालूम यह होता है कि तुम भी हरि चरणो को छोड़ आने के कारण उनके प्रेमावेश में भटक कर यह भूल कर रहे हो। यह कथन जिसे तुम हमारे हृदय में ठूँस रहे हो श्रीकृष्ण के कोमल मुख की उक्ति कभी नहीं हो सकती। यदि तुम श्रीकृष्ण के कथन में अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाके न कहते होते तो तुम हमारे सामने इस तरह न झेंपते। जहाँ से तुम आए हो वह बड़ी जगह है। उसे मथुरा शहर कहते हैं। यहाँ कमनीय कालिन्दी कूल हैं। वहा जाके महाराज चतुर्भुज विष्णु का स्मरण करना (या दुहाई देना) पर यहा लोग उन्हें नही जानते यहाँ तो प्रियतम नन्दलाल की दुहाई दी जाती है। इसलिये यहा आके उन्हें भूल के नन्दलाल के गुण गाना अधिक उचित है। जो तुम बड़ों की बातें कर रहे हो वे ब्रजवासियों के लिए कोई मूल्य नही रखती। यहाँ तो सूर स्वामी श्याम ने गल बहियाँ डाल के गोपियो के साथ रंगरेलिया की हैं। शायद तुम्हें इसकी खबर नही है।

इस पद में उल्लेख अलंकार है।

२४८ गोपियाँ पराधीन मन में योग के लिए अनवकाश बताती हुई उद्धव से कहती हैं कि मधुकर ! हमारा मन ही यहाँ नही है फिर यह योग का उपदेश कौन सुने ? वह तो नन्दनन्दन के साथ लगा चला गया है और फिर उसने कभी लौटने का नाम न लिया। उसे तो किसी ने नयनो के कटाक्ष से देखके मुसकराहट का मूल्य देकर खरीद लिया और हमारे हाथ से उसे निकाल के दूसरे के हाथो में दे दिया अर्थात् अब वह दूसरे का क्रीतदास है। जबकि नयनो ने दलाली करके मुसकान का मूल्य चुकता कर दिया तो जाके उसे (मालिक को) सौंप दिया अज वह उसी के वश में है। उसे अब अपने घर का आवास भूल चुका है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जो दूसरे के साथ रस मग्न हो गया है उसे कौन समझा सकता है। इसलिये इस तुम्हारे निर्गुण मत की यहाँ दर घट रही है। अच्छा हो कि तुम इसे लेके कहीं अन्यत्र चले जाओ।

इस पद में (साध्यवसान) रूपक अलकार है।

२४६ गोपियाँ योग के अनौचित्य पर कटाक्ष करती हुईं उद्धव की 'कथनी और करनी' में भेद दिखाती हुईं उनसे कहती हैं—हे मधुकर ! तुम हमी को समझाना जानते हो। बार-बार अपनी ज्ञान की कहानी ब्रजाङ्गनाओं के आगे बखान रहे हो। नन्दनन्दन की कथा छोड़ के बनावटी बातें कह-कह के हमारे हृदय में अपने लिए घृणा के बीज जमा रहे हो। तुम स्वयं नागर (नगर के रहने वाले अर्थात् शिष्ट) हो। तुम्हीं अपने मन में विचार करके देखो कि जिन शरीरों को चन्दन और मालाओं से सजाया है वह इन बातों से कैसे तृप्त हो सकेंगे ? फिर तुम अपना भी तो मुंह शीशे में देख आओ। दूसरों की आसक्ति पर कीच उछालने से पहले अपनी ओर भी तो देख लो। तुम सब फूलों को नीरस समझ के कमल में इतने क्यों आसक्त होते कि उसके बन्दी होके रहते हो। (ठीक है लोमड़ी औरों को शकुन बताती पर अपन कुत्तों से नुचवाती है। सो हाल है उद्धव का)। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कटाक्ष करती हुई कहती हैं कि हे भ्रमर ! स्वयं प्रेमी होकर भी कमलनयन कमलपाणि कमल चरण तथा कमल मुख श्रीकृष्ण को छोड़ के अन्य के विषय में क्यों बकवाद करते हो। तुम्हें भ्रमर होने के कारण हमारे न सही अपने ही प्रेम के नाते से उस सर्वाङ्ग कमल के गुणगान करने चाहिए। पर तुम कर रहे हो निर्गुण का गान यह तुम्हारे प्रेम के लिए कलङ्क की बात है

इस पद में अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

२५० गोपियाँ कृष्ण की रुखाई पर व्यंग्य करती हुईं उद्धव से कहती हैं कि श्रीकृष्ण की मधु के साथ हलाहल देने की जन्म-जन्मान्तरों की आदत रही है। इसलिए उन से कुछ कहना बेकार है। पर तुम्हें तो कुछ सोचना चाहिए। इसलिए कृष्ण के व्यवहार से रूठ कर कहती हैं कि उद्धव ! गोपाल कौन है ? कहाँ रहते हैं उनका प्रेम किससे है ? तुम्हारे हाथ सन्देश किसने भेजा है और तुम किसे सुना रहे हो ? हमारी बनी बिगड़ी का भला कौन साथी है जो हमारे लिए सन्देश भेजे ? वे हमारे कौन हैं ? वे कभी किसी के हुए हैं या हमारे ही होंगे ? उनकी दशा तो भौंरों की सी है जो स्वेच्छा से जहाँ अधिक रस दिखाई दिया उन्ही वेलों पर जा लदे। वे वेलें हरी भरी रहें या सूख जायं। उनकी गाँठ का क्या जाता है ? जैसे व्याध बन में जाकर वेणु द्वारा अनेक रागरागि-

नियों की मधुर लय लहरी से पहले तो हरिणी के मन को बेवश कर देता है और विश्वास जमाता है फिर उसके साथ विश्वास-घात करके कठोर बाण खींचके मारता है और उस भोली विबस और विलब्ध हरिणी के प्राण ले लेता है ऐसे ही आपके दोस्त साहब ने हमारे साथ किया। यह उनके लिए कोई नई बात नहीं यह तो उनकी पुरानी आदत रही है। दूध पिलाती हुई पूतना को मारा और बालि को भी छिपके मार गिराया। बेचारे बलि को दान देते हुए मार डाला ऐसे ही शूर्पणखा और ताड़का को भी मार डाला। सूर के स्वामी श्रीकृष्ण की यही आदत है।

इस पद में सूर ने मनोविश्लेषण का अद्भुत परिचय दिया है। जब हम किसी से किसी कारण से असन्तुष्ट हो जाते हैं तब उसके अच्छे कृत्यो की की भी कटु आलोचना करते है। उसके परमार्थ मे स्वार्थ की बदनीयत देखने लगते है। इसीलिए यहाँ पर गोपियाँ कृष्ण की वचनाओ से व्याकुल होके उनके भले कार्यों पर भी लाछन लगा रही है।

इस पद मे रामावतार के कार्यो को भी कृष्ण के मत्थे मढ़ा गया है। इसमें भी मनोवैज्ञानिक पुट है। यद्यपि दोनो के विष्णुरूप होने से इसमे कोई असगतता नही कही जा सकती तथापि गोपियो की एकागिनी आसक्ति राम से कृष्ण को पृथक ही देखती है। (देखिए—हरि सौं भलो सो पति सीता को) पर यहाँ उनकी मनोवृत्ति आवेश में सतत अङ्कित की गई है। आवेश मे हमारी मनोवृत्ति अपने क्रोधपात्र भले कार्यो को ही लाछित करके सन्तुष्ट नही होती अपितु वह ऐसे भी कार्यों को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करती है जो बुरे होने के साथ-साथ हमारे क्रोधपात्र के साथ किसी न किसी प्रकार और किसी न किसी रूप मे सम्बन्धित किए जा सके। वैसे चाहे हम उन बुराइयो के कर्त्ताओ से उनका कोई सम्बन्ध स्वीकार न करे परन्तु आवेश की परिस्थिति मे हमें तभी सन्तोष होता है जब हम उनका उन कर्त्ताओ से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ देते हैं।

इस पद मे अप्रस्तुत प्रशसा और उपमा अलकार है।

२५१ गोपिया योग के सन्देश से चिढ़कर कृष्ण पर व्यग्य करती हुई उद्धव के सम्मुख कहती है कि हे कृष्ण! इन मधुकर महाशय को यहा भेजने से

आपकी व्यापकता में कमी आ गई। आप व्यापक होने से सब हाल यों ही जान सकते थे फिर इन्हें भेजना यह प्रकट करता है कि शायद आप सब जगह व्यापक नहीं हैं। अस्तु जो हो आपने (कृष्ण ने) जब से नागरी स्त्रियो के मुँह की शोभा की ओर ताकना शुरू किया तब से दो बाते तो भूल गई। ब्रज का स्नेह और स्वय की पूर्णता दोनो में से एक का भी पूरा न पड़ा अर्थात् दोनो ही कम रहीं। जब से कुबरी से आलिङ्गन किया तब से तो आपका एक नया तीसरा ही पथ प्रकट हो गया जिसके कारण 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' चारों ओर मुखरित हो उठा। हुआ सो हुआ यह बेचारा उद्धव तो बड़ा सीधा दिखाई पड़ता है पर तुमने इसे खूब धोखा दिया। इस विचारे ने सिधाई के कारण यह भी न जान पाया कि तुम इसे बना रहे हो। इसलिए तुमने जैसा कहा वैसे ही यह बेचारा जोग की पोटली सिर पर रख के चल दिया। सूरदास कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि आपकी मालिकी के क्या कहने है जिसके कारण आपके प्रेम की तो खूब धूम मच गई। आपको भले ही राज्य का मान और अनेक सुख मिल गए हो पर यहा घोष (ग्वालो की नगरिया) में तो एक घड़ी भी चैन नही है।

२५२ गोपिया योग और निर्गुण की साधना की खिल्ली उड़ाती हुई उद्धव से मधुकर सम्बोधन करके व्यग्य कर रही हैं। वे कहती हैं कि मधुकर! तुम व्यर्थ की बाते क्यो बक रहे हो? हमे तुम पर जरा भी विश्वास नहीं आता। तुम ऐसे कपटी हो कि अपने मन का कपट अब भी प्रकट नहीं करते। तू बड़े ही चचल और ओछे का साथी है। चारो ओर यों ही अकुलाया हुआ डोल रहा है। तू माणिक्य और काच को एव कपूर और कड़वी खली को बराबर कैसे तोल रहा है? सूरदास कहते हैं कि वियोग-व्यथित गोपिया उद्धव से बार-बार कहती हैं कि तू बार-बार हमे क्यों जला रहा है? तू अपने बेमेल अगम्य निर्गुण को अमृत रूप आनन्ददायी सगुण कृष्ण के समान क्यो अमूल्य बता रहा है?

इस पद मे प्रतिवस्तूपमा तथा अन्तिम पंक्ति मे वृत्त्यनुप्रास अलकार भी है।

२५३ गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य करती हुई निर्गुण के सन्देश से उत्पन्न अपने

मानसिक खेद को प्रकट करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर ! तेरा श्याम कलेवर देखके और कृष्ण के मुँह की चिकनी-चुपडी बाते तुझसे सुनकर हमारा तो हृदय त्रस्त हो रहा है। अरे रस के लोभी ! हम तो एक बार उनके चरण छूने की विनय कर रही हैं पर तू व्यर्थ ही हमे इसके लिए मना कर रहा है। जब उन्होने हमारे शरीर का आलिङ्गन किया, उस पर केसर का लेप किया तो क्या अब इतनी सी बात (चरण छूने) भी कुछ शर्म की बात है ? उन्होने तो अपनी बाँकी चितवन से हमारी बुद्धि, विवेक और वचन चातुरी सब कुछ चुरा लिए। पर बताओ उनकी यहाँ क्या चीज भुला गई थीं कि जिसके लिए तुम निर्लज्जता से यहाँ आ धमके। सूरदास कहते कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि अब तक तू अपना वही निर्गुण का गीत हमारे सामने क्यो अलाप रहा है ? तू जो हमें त्रिगुणातीत (सत्य, रज और तम तीनो गुणों से अपरिच्छिन्न अर्थात् निर्गुण) से लौ लगाने के लिये कह रहा है इससे बड़ी और क्या गाली हो सकती है।

२५४ गोपियाँ श्रीकृष्ण की रुखाई पर रुष्ट होके उद्धव क सम्मुख मधुकर को लक्ष्य करके उपालम्भ देती हुई कहती हैं—भला भौरे भी कभी किसी के मित्र-बने हैं ? चार दिन के लिये मुहब्बत दिखाके अन्यत्र चलते बनते हैं। अपना मतलब गाठने के लिये दूसरों को फँसाते बहकाते फिरते हैं और नए नये आडम्बर (पाखंड) रचते हैं। मन की हौस पूरी हो जाने पर फिर वे मित्रता तो दूर रही, जान पहिचान तक मिटा देते हैं। ये कभी किसी से प्रेम नहीं करते। देखो न, मतलब हो जाने पर किस प्रकार चित्त उचाट के हमारे मन चुराके कृष्ण महलों (रावल) मे जाके रहने लगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके कहती हैं और ये हजरत (उद्धव) दूत के कर्त्तव्यो को भुला के जहर के बीज बो रहे हैं। दूत का धर्म है कि जिसका सन्देश लाया है उसकी बात सत्य और न्याय पूर्वक कहे पर ये अपनी नमक मिर्च मिलाके कह रहे हैं।

२५५ गोपियाँ उद्धव से योग की अयोग्यता प्रतिपादन करती हुई कृष्ण के व्यवहारो पर आक्षेप पूर्वक कहती हैं मधुकर ! यह नीति शास्त्र कहाँ पढ़ा है कि अवलाओं को योग साधन करना चाहिये। यह तो लोक तथा वेद श्रुति

सभी से उल्टी बात कह रहे हो। खैर मान लिया कि हमारी आसक्ति में काम की गन्ध है इसलिए हमें छोड़ के आप हमें परमार्थ की ओर लगाने आये पर यह तो बताओ कि उन्होने प्यारी जन्म भूमि और माता यशोदा को किस अपराध में छोड़ा है? और अत्यन्त कुलीन अमित गुण शालिनी सर्वाङ्ग सुन्दरी दासी कैसे घर में देली? क्या यही वीतरागता है। यह तो वही बात हुई कि 'आप न जावे सासुरे और न को सिख देइ'। इसलिये ये सब बेकार की बाते हैं। अरे योग समाधि बड़ी गूढ़ है। श्रुतियो में उसे मुनि मार्ग कहा गया है उसको ग्रामीण अवलाएँ क्या समझ सकती है? यदि त्रिगुणातीत तुम (निगु ण) को सबमें व्यापक कहते हो तो पतिव्रता स्त्रियो के लिये जिनके लिये 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं' कहा गया है, इससे बड़ी गाली और क्या हो सकती है। (सर्व व्यापकता के नाते निगु ण उन सती स्त्रियो के मन में भी तुम उसे व्यापक बता रहे हो और यही उनके लिये गाली हो जाती है) इसलिये रे मधुप ! तू चुपकर अब अपने स्वार्थ के लिये (नौकरी रखने के लिये या कृष्ण की सगति का अव्याहत आनन्द लेने के लिये) बहुत बाते मत बना। बहुत हो चुका। कोई भली स्त्री इन गालियो को सुनना नहीं चाहेगी। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम ऐसी ऊल जलूल बातें करते हो और फिर भी हम तुमसे कुछ नहीं कहती। हम मन, बचन और कर्म से (सर्वात्मना) कहती हैं इस उग्र अपराध में भी तुम इसलिये बच रहे हो कि हमें श्याम का लिहाज लगता है।" नहीं तो अभी तक तुम्हारी पूजा में कोई कसर नहीं रहती।

२५६ गोपिया बार बार योग का उपदेश दुहराने वाले उद्धव को फटकारती हुईं कहती हैं :—मधुकर ! तुम हट जाओ यहा से। तुम्हें देखते ही हमारी देह और आँखों में आग लग जाती है। हटो यहा से और अपने इस योग को संभाल कर अपने पास रख छोड़ो। यहा इसे क्यों डाल रहा है? इसे यहा कौन लेने वाला है? केवल तुम्हारी राजी रखने के लिए हम अपने मुँह के मीठे स्वाद को खारा नहीं कर सकते अर्थात् सरस सगुण को छोड़कर नीरस निगु ण नहीं अपना सकते। हमारे अन्तस में तो बाल्यकाल से तो गिरिवर-धारी कृष्ण के नाम और गुण बस रहे हैं। यह हम बार बार कह चुकी पर

तुम नहीं मान रहे। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती है कि तुम्हारी इन बातों को देख के आज हम सबो की एक राय है तुम जितने भी काले हो सब के सब खोटे हो।

२५७ गोपिया कृष्ण के वियोग मे दुःखी होके, सब कुछ सहन करके भी अपने प्रेम को कृष्ण के प्रति रखने के लिए कटिबद्ध हैं। वे उद्धव को मधुप के सम्बोधन से पुकार के कहती हैं कि हे भ्रमर! परदेशी (पथिक) सदा विराने ही हैं। उन्हें अपना समझना ही मूर्खता है। वे दसेकदिन अपने मतलब से भले ही टिक जाय पर अन्त को तो वे चले ही जाते हैं और ऐसे जाते हैं कि फिर कभी लौटते नही। भगवान् कृष्ण ने हमारे लिए पहले सिद्धि भेजी थी पर यह ज्ञान आगे अखाड़ा हुआ। भाव यह है कि मिलन रूप सिद्धि हमें पहले प्राप्त हुई थी श्रीकृष्ण मथुरा जाके भी हमें वही सिद्धि देने की विचारते पर ज्ञान उससे पहले आके अड़ रहा जिससे सिद्धि (मिलन) मे बाधा खड़ी होगई। अब हमें वह जोग और कुब्जा को भोग देरहा है अरे भाई! उसका यही स्वभाव है (देखो नः—दीने दई गुलाब की इन डारिन के फूल)। परन्तु हमे जिनको उनसे सत्य भाव से प्रेम है वे उन नदनदन को क्यो कुछ कहना या करना चाहेगी? गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हम ने भी सूर के प्रभु श्याम को अपनी तन मन सर्वस्व अर्पित कर दिया। अब चाहे कुछ करें हम क्या कर सकती है।

२५८ गोपियाँ उद्धव से अबलाओं के लिए योग की अनुपयुक्तता का सविस्तृत वर्णन करती हुई कहती है—हे मधुकर! कहाँ तो तुम बड़े प्रवीण और ऐसे काइया हो कि तीनो भुवनो की बाते जानते हो पर हम स्त्रियों के लिए इतने अज्ञ बन रहे हो। तुम इतना भी नहीं सोच सकते। जिन बालों मे सोने के कटोरे भर-भर के तेल और फुलेल लगाया उनके लिए अब तुम भस्म लगाने को बता रहे हो। क्या टेसू का खेल बना लिया है कि अभी सजाया सवारा और अभी तालाब में जा डुबोया। जिन बालों की वेणी (कबरी) कृष्ण अपने सुन्दर हाथो से गुह के बनाया करते थे उन्हीं पर जटाए रखने के लिए अरे उद्धव! तुमसे कैसे कहते बना? जिन कानों में ताटङ्क (तरौना) खुभी तथा अन्यान्य प्रकार के कर्णफूलादि आभूषण पहने उन्हीं में हमे तुम काश्मीरी

स्फटिक की बालियाँ लटकाने को कहते हो और ढीला झगोला पहनने की कहते हो। जिन्होंने माथे पर तिलक, आखो में काजल, तथा नासिका में बड़ी छोटी भाति-भाति की नथुनियाँ और लौंगे पहनी, उन सबको छोड़ के तुम ने हमारे लगाने के लिए यह सफेद राख की थैली खोल के रखली है कि आओ और इसे लगा जाओ। जिस कठ मे अच्छी अच्छी मालाएं मणिओं के हार अनेक प्रकार के हीरे मोती और रत्न पहने उसी कण्ठ के लिए तुम अपने जोग का गहना सिगीं लाए हो? जिस मुख से प्रियतम से अच्छी-अच्छी बाते करके गाए और हसे उसी से अब मौन रह के हम कैसे जी सकेंगे। क्या प्राणायाम की लम्बी उच्छ्वासो में हमारे प्राण घुट न जायेंगे? जिन शरीरों पर हमने सूक्ष्म वसन की चोलियाँ, पहनी, उबटना करके घिस-घिस के चन्दन लगाया और कमल और चाँद की छपी हुई साड़ियाँ पहनीं उन शरीरो पर अकेली एक गुदड़ी या कथरी ही अरे वेवकूफ! कैसे पहिनौगी? उद्धव! बस अब हम सब निहोरे करती हैं। आप यहाँ से उठ के चाल दिखाइये। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे कृष्ण जीवित रहें उन्हीं का मुख दर्शन भगवान ने चाहा तो हम करेंगी।

२५६ गोपिया योग को अपने लिए असगत समझ के उसे उसके लाने के कारण उद्धव से आक्षेप पूर्वक कहती हैं कि मधुकर! आप कहाँ से आए हैं? जब से वह दुष्ट मोहन को लिवा लेगया है तब से हमे तो उसका कोई भेद पता नहीं चला था। इसलिए हमने तुन्हें श्रीकृष्ण का मित्र समझ के यह समझा था कि तुम हमसे श्रीकृष्ण से प्रत्यागमन की अवधि हमसे कहने आए हो। परन्तु तुम से बातें करने पर तो भाग्य ऐसा अनिश्चित सा लगा रहा है कि पता नहीं अब नन्दनन्दन के दर्शन करायेगी ये किस्मत, या भाग्य से अब स्वामिता (प्रभुता) योगी होने के कारण सर्वोपरि स्थान मिलेगा जैसा कि उद्धव बता रहे है कुछ पता नही है। हे भ्रमर! तुम्हारे द्वारा बताए हुए आसन (योग के पद्मासन, शीर्षासन आदि) ध्यान (ब्रह्मचिन्तन) और प्राणायाम सभी चीजें सब प्रकार तन मन को अत्यन्त अच्छी लगने वाली हैं। पर ये सब चीजे बढ़ी अद्भुत हैं। गुणी और लक्षण सम्पन्न लोगो के ही यह योग मत अनुरूप है। तुम इन मुद्रा सिगी भस्म और मृगछाला आदि योग के उपकरणों

को यहाँ बिना सोचे-समझे ले आए और ब्रज की युवतियो के शरीर को सेत-मेंत मे सन्तप्त कर रहे हो। हमारे लिए ही यदि तुम्हें कुछ लाना था तो अलसी के पुष्प के समान वर्ण वाले सूर के श्याम को जिनके मुख पर मुरली विराजमान है क्यों नहीं ले आए जिससे वास्तव मे हमारा मनोविनोद सम्भव था।

इस पद मे वाचक लुप्तोपमालकार है।

२६० गोपियाँ नीरस निर्गुण की बात उद्धव के मुख से सुनके सन्तप्त होके उद्धव से व्यग्य करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! ये बाते कृष्ण ने कभी नहीं कही होगी। ये बाते तो उनकी नई प्रेयसी द्वारा अपने प्रेम के बल पर गढ़के उन्हें सिखाई हुई प्रतीत होती हैं। ऐसी चुहल की बाते उसने ही अपनी पीठ के कुबड़े मे सचित करके रख छोड़ी हैं। श्याम जैसा अच्छा प्रेमी पाके हाय सखी! आज वह हमे धूल दिखा रही है अर्थात् नीचा दिखाने के लिए यह भस्म बता रही है। जो हो एक अच्छी हुई। शोभा-सिन्धु नागर-शिरोमणि कृष्ण ने संसार की युवतियो को अपने स्मित से मोहित किया था। उस पक्के ठग को रूप के बदले ज्ञान पकड़ा के उस कुब्जा ने भी खूब ठगा। जो हमारे साथ घटी की थी उसे निर्गुण दे के कुबरी ने पूरा कर लिया। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उसी चतुरा ने हमारे लिए योग दिया है क्योकि आजकल उसके सुदिन हैं उसे जो भी करे सब अच्छा लगता है।

इस पद में उत्प्रेक्षा गम्य है।

२६१ निर्गुण के लिए उद्धव के आग्रह करने पर व्यथित होके गोपियाँ कहती हैं कि हे मधुकर! तू न जाने अब क्या और करना चाहता है? ये सब युवतियाँ तो इस दाहक सदेश को सुनके चित्र की पुत्तलिकाओं के समान निर्जीव हो गई अब तू उनके प्राण-शून्य शरीर को क्यो जलाए जा रहा है? हमसे तेरी क्या दुश्मनी है जो कि हे भ्रमर! तू श्याम के विषय मे बिलकुल अज्ञ सा रहता है और निर्गुण के विषय मे बार-बार कहे जा रहा है। तुझे नहीं मालूम कि श्याम हमारे मन को बिलकुल झाड़के ले गए ज़रा सा भी यहाँ नहीं छोड़ गए। तू आके उसके पुराल को फिर से मीड रहा है। जब श्रीकृष्ण जी मन का अन्तिम कन तक झाड़ के ले गए तो फिर दायँ चलाने

से इससे क्या हाथ लग सकेगा ? अब तो तू यो ही हवा को पकड़ रहा है। अब इसमें श्रम करके तू क्या पायेगा। सूरदास कहते है कि गोपियाँ उद्धव से मधुकर को लक्ष्य करके समझाती हैं कि अरे भ्रमर ! अब तू अपने कोठे में आराम से पड़ रह। व्यर्थ का श्रम न कर। अन्यथा तू अपने किए का फल भोगेगा।

इस पद मे अतिशयोक्ति रूपक और अप्रस्तुत प्रशसा अलकार हैं।

२६२ गोपिया उद्धब से कृष्ण की रुखाई पर आश्चर्य प्रकट करके उपालम्भ देती हैं और अन्त मे पश्चातापपूर्वक उनकी रुखाई पर भी उनके लिए शुभ कामनाए करतीं हुईं कहती हैं कि मधुकर ! हमें यही सोच बार-बार सतप्त करता है कि पुरुष किस आशा और विश्वास के साथ अपनी सन्तति के लिए बढ़ने की कामना किया करता है। हमेशा मनाता रहता है कि मेरे लाल बड़े होगे तो मुझे ऐसा सुख देंगे इत्यादि। पर जब वे बड़े हो जाते हैं तो उस विश्वास और आशा को कहा तक पूरा करते हैं यह इन कृष्ण के निदर्शन से जान लो। श्रीकृष्ण को देखके समझ लो कि बच्चे बड़े होके अपने माता पिताओं को क्या सुख देते हैं। पिता माता पुत्र की उत्पत्ति तथा बढ़ती के लिए विविध प्रकार के अनुष्ठान, ब्रत नियम यज्ञ तप तथा दान आदि करते हैं। उनके मोह की बात बड़ी कठिन है जिसके कारण वे इतना कष्ट भोगते हैं और किसी न किसी प्रकार जब उनका पुत्र कुशलतापूर्वक बड़ा हो जाता है तो फिर अब कुछ न पूछो। कोयल की जैसी प्रसिद्धि है वैसी ही प्रीति उस पुत्र की भी ससार में प्रगट हो जाती है। कोयल के बच्चे जिस प्रकार अपने स्वार्थ रहने तक कौए को प्रेम करते हैं और बड़े होने पर जब स्वार्थ निकल जाता है तो फिर कौए के लिए जरा भी कष्ट सहन नहीं करते। वे नही जानते कि उनके वायस बन्धु कौन गली के बधुआ हैं। यही तो श्रीकृष्ण का हाल है। यहा नद यशोदा ने कितनी शुभकामनाओं के साथ कितनी मनौती मना के और कितने कष्ट सह के उन्हें पाला पोसा। बेचारो की क्या आशाएँ थीं। पर हाय रे मनुष्य के मनोरथ। तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है। श्रीकृष्ण बड़े होके यहा आने का नाम तक नहीं लेते। सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती है कि जो कुछ भी हो हम तो भगवान् से यही मनाती हैं कि जहा

रहें राज्य करे और करोड़ों दायित्वों को सँभालने में समर्थ हों। हमारा यही आशीष है कि नहाते तक में उनका कभी बाल तक न टूटे। भगवान् करे वे सर्वाङ्ग सकुशल रहें।

इस पद में अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है।

२६३ कोई गोपी वर्तमान वियोग से व्यथित होके श्रीकृष्ण से प्रेम करके पश्चात्ताप करती हुई उद्धव से अपनी जागरण और उन्माद अवस्था का वर्णन कर रही है। वह कहती है कि मधुकर ! मैं तो प्रेम करके पछ्ता रही हूँ। मैं तो यह समझती थी कि ऐसी ही कटेगी पर हाय उन्होने मन में कुछ और ही ठान रक्खी थी ! अरे ! काले शरीर वालो का विश्वास ही क्या है ! उनके बोल ही मीठे होते हैं जिनसे वे दूसरों को मोह लेते हैं। देखो न ! हमारे लिए तो हजरत योग का सन्देश लिख-लिख के भेज रहे हैं और खुद चैन से राजधानी में भोग कर रहे हैं। हा ! आज मेरी शय्या सूनी है। रात-रात भर मुझे तड़पते ही बीतती है। बात यह है कि सूर के स्वामी श्याम प्रियतम के बिछुड़ जाने से मेरी मति नष्ट होगई है। (इसीलिए तो यह जागरण और जहाँ तहाँ इन बातों को बकने का उन्माद हो रहा है)

२६४ गोपियाँ कृष्ण के दोषों की चर्चा करके उद्धव से कहती हैं कि सब दोषों से युक्त होते हुए भी वे हमारे गले का हार हैं। तुम्हारे निगुंण की अपेक्षा वे कहीं अधिक हमें प्यारे हैं। वे कहती हैं कि मधुकर जैसों की सगति में रहके ही ऐसे निर्मोही हो गये कि अन्त में अपने वश की ओर ही झुक रहे। जिस प्रकार भ्रमर इधर उधर रगरेलियाँ कर के अपने घर बाँस में आ रहता है ठीक इसी तरह कृष्ण ने भी उसके साथ रह के यह सीख लिया कि इधर उधर रंग-रेलियाँ करके अपने वंश में जा घुसे। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'ससर्गजा दोष गुणा भवन्ति' अर्थात् गुण और दोष संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। ब्रजसुन्दरी बिना यह बात समझे आज भी उसी मुख कमल को अपनाने का आग्रह कर रही हैं। वेचारी मृग की गृहिणी हरिणी व्याध के (बेणु) नाद का रहस्य क्या जानती है ? वह तो उस पर मुग्ध हो के अपनी सुध बुध खोके अचेत हो जाती है फिर उसके लिए व्याध की सब बाते एक समान हैं जैसे उसका अलापना तान लय से गाना नाचना और घात लगने पर मार डालना। हरि ने भी इस

ब्रज मे रहके हमसे एक जुआ खेला और अवधि को दॉव पर रख के हमें जीत के यहॉ से चलते बने। पहले क्या मालूम था कि ये हजरत ऐसे निकलेंगे। यहॉ रहके जिसे चाहा उसी चचल कामिनी को अपने घर मे डाल लिया। वे बेचारी क्या जानती थीं कि ये रगरेलियॉ चार दिन की हैं। खैर यह भी हुआ वे मथुरा गए वहॉ जो कुछ किया वह भी सब जानते हैं। मामा को मार कर बड़ा हीन कार्य ही किया। यह कार्य तो उनका ऐसा है जैसा कि किसी शराब के नशे में मस्त कर ऊटपटॉग काम होता है। होश में भला कौन अपने सगों को मारेगा। यह सब कुछ होते हुए भी उद्धव! हमें न जाने क्यो इन सब अवगुणो से भरे पूरे भी सूर के स्वामी श्याम निर्गुण से कही अधिक प्रिय लगते हैं। (मिलाइए—With all the faults I love the estill.)

इस पद में अन्योक्ति और श्लेष अलंकार है।

२६५ गोपियॉ योग का सदेश सुनके उद्धव को फटकारती हुई कहती हैं कि मधुकर! तू यहॉ से दूर हट जा। बड़ा आया है! कहीं से योग सिखाने तू नितात क्रूर है। जिस अंतस् मे सदा सर्वांशतः सुन्दर घनश्याम व्यापक रहते हैं। उसे छोड़ के हम शून्य की आराधना क्यो करें? क्या अपना मूल भी खो देने के लिये? अर्थात् जो कुछ अपनी गाठ की है उसे हम खोने को तैयार नहीं है। इस व्रज में सभी गोपाल के उपासक या व्रती हैं यहा धूल लगाने को कोई तैयार नहीं है। जो अपने नियम व्रत सदा पालन करते हैं वे ही शूरवीर कहलाते हैं। (मिलाइए-व्रताभिरक्षा हि सतामलक्रिया। भारवि)

२६६ गोपियॉ उद्धव से अपनी वियोग व्यथा का वर्णन करके उसका एकमात्र प्रतीकार श्रीकृष्ण के दर्शन को बताती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! तुम हमारी ऑखों की बात सुनो। हमने सब अगों से उन्हें रोका (या हमने सब अंगो को तो रोक लिया परन्तु यह अर्थ इतना अच्छा नहीं जचता क्यों कि आगे इसी पद में वर्णन किया गया है कि सभी अग तो श्रीकृष्ण के प्रेम का आनन्द अब भी उठा रहे हैं।) परन्तु ये नेत्र बार २ उड़के वहीं चले जाते हैं। जिस प्रकार कबूतर वियोग से व्याकुल होके अपने घर को छोड़ के इधर उधर भटकता फिरता है इसी प्रकार ये हमारी ऑखे भी आकुल होके चली जाती हैं और श्याम को देखे बिना फिर लौटती ही नहीं। हमने इन्हें पलको के किवाड़ों

में बन्द करके घूँघट की श्रोट मे रख छोड़ा परन्तु हमारी दीर्घश्वास निकलके उधर ही चले जाते हैं और काम के उद्गार निकाल देते हैं। श्रवण भी कृष्ण के यश को सुनके धैर्य रख लेते हैं और मन भी उनका ध्यान धारण करके किसी न किसी प्रकार सन्तुष्ट हो लेता है। हमारी वाणी उनका नाम रटती रहती है इस प्रकार प्रायः सभी इन्द्रियो के लिए वियोग मे भी कुछ न कुछ अवलम्ब है परन्तु इन बेचारों को दर्शनों की हानि है अर्थात् इन्हें इनका भोग नहीं मिलता। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यद्यपि यह ठीक है कि शरीर में इन्द्रियाँ जो कुछ भोग करती हैं उसका आनन्द सभी इन्द्रियों में बँट जाता है तथापि हरि के दर्शन के बिना ये नेत्र पल भर भी चैन नहीं लेने देते।

इस पद में उपमा और रूपक अलकार हैं।

२६७ गोपिया उद्धव से प्रेमोपालम्भ देके श्रीकृष्ण को लाने की प्रार्थना करती हुई कहती है—कि हे मधुकर! यदि श्रीकृष्ण कहना मानले तो उन्हें फिर से ले आना। उन श्याम सुन्दर ने राज्य कार्य में चित्त लगाया यह तो बड़ा अच्छा किया। पर समझ में नहीं आता कि उन्होंने गोकुल को क्यो भुला दिया? जब तक वे इस घोष (ग्वालो की बस्ती) में रहे हम लोगों ने सदा उनकी सेवा की कहीं एक बार उन्हें उलूखल से बाँध दिया मालूम होता है कि उन्होने हमारे इसी एक अपराध को हृदय में रख लिया और नाराज होके यहाँ आना बन्द कर दिया। ब्रजनायक श्रीकृष्ण को राजकुमारियाँ तो अनेक मिल जायेंगी परन्तु करोड़ो प्रयत्न करने पर भी नन्द से पिता और यशोदा सी माँ कहाँ से मिल सकेगी? गोवर्धन तथा ये ग्वालो की टोलियों और ताजा मक्खन भी उन्हें कैसे मिल सकेगा? सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! अब भाई वही काम करो अर्थात् कुछ ऐसा समझाओ और श्रीकृष्ण को फिर से यहाँ लिवा लाओ।

यह पद ज्यों का त्यो पीछे (१६२) आ चुका है। केवल क्रियाओं के कुछ रूप परिवर्तित हैं। वहाँ पर 'ऊधो! यह हरि कहा करथौ?' इस प्रश्न से पद का प्रारम्भ किया गया है। अर्थ प्रायः एक सा ही है।

२६८ गोपिया उद्धव से वियोग व्यथा कहके उसके एकमात्र प्रतीकार

श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए विनय कर रही हैं। वे कहती हैं कि हे मधुकर! अब बलवीर कृष्ण के आने में ही भलाई है। आपके दुर्लभ दर्शन हमारे लिए सुलभ हो गए पर पता नहीं आप क्यो पराई पीर की उपेक्षा कर रहे हैं। हे उद्धव! आपसे एक प्रार्थना है (हम बड़े विचार से आपसे निवेदन कर रही है) कि आप उनसे पता लगाना कि उन प्रियतम का हम पर स्नेह है कि नहीं? हे मधुकर! अब हम तुमसे प्रीति के रहस्य को क्या वर्णन करें वह कहने योग्य है ही नहीं। बस इतना सकेत पर्याप्त समझो कि प्रेम की कुछ रीति ऐसी न्यारी है कि जिसे तुम मन मेंही अनुभव कर सकते हो। दलीलों के बल पर उसकी अनौखी रीतियो की परख नहीं की जा सकती। हमारे नयनो को प्रेम की पीर के कारण नींद नहीं पड़ती रातदिन विरह का रोग देह में बढ़ता ही जाता हैं। परन्तु उधर नंदनन्दन की कठोरता को देखो उन्होने हमसे प्रेम जोड़ा और जोड़ के फिर उसे तोड़ दिया। अरे भ्रमर! अब हम तुमसे अपने हृदय की अन्य गुप्त बातो को क्या कहे। अर्थात् तुम उन्हें क्या समझ सकते हो। जो हो यह नहीं समझ में आता कि सूर के स्वामी श्याम के लिए यह कहा तक उचित है कि वे हम अबलाओं की हत्या करने पर हो उतारू हो रहे हैं।

२६६ गोपिया कृष्ण की रुखाई देख के उद्धव से उनके प्रेम का उलाहना देती हुई कहती है कि हे मधुकर! कृष्ण ने इतना प्रेम करके भी हमें यों भुला दिया सो यह उनका दोष नहीं। यह तो उनके काले रग का दोष है! कालों की यही रीति है। वे बनावटी प्रेम जताके खूब मन लगा के पराये सर्वस्व का अपहरण कर लेते हैं। भौरे को देखो। रात भर कमल की पंखड़ियो में बदी रह के उससे प्रेम जताता रहता है पर सबेरे सूर्योदय होते ही अन्यत्र उड़ जाता है और फिर उससे परिचय भी नहीं दिखाता। इसी प्रकार साप भले ही माँ बाप के समान बड़ी सावधानी से पिटारे में रखकर पालो पर अवकाश पाने पर वह अपने वश की करतूत नहीं छोड़ता और उन्हें (पालकों को) काटके भाग जाता है। इसी प्रकार कोकिल कौए और हिरण श्याम की क्षण-क्षण हमें याद कराते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि पर हम क्या करे हमे तो रात दिन उन स्वामी का मुख देखना ही भाता

है और कुछ भाता ही नहीं।

इस पद मे उपमा तथा स्मरण अलकार है।

२७० गोपियाँ उद्धव से निर्गुणोपदेश के लिए मना करके श्रीकृष्ण के दर्शन कराने का अनुरोध करती हुई कहती हैं—हे मधुकर! तुम बारबार यही बात क्यो कहे जा रहे हो? वही निर्गुण के गुण क्यो गाए जा रहे हो? यह निर्गुण-गाथा नगर नारियो के रुचिकर होगी अतः उन्हीं को जा के सुनाओ जहाँ तुम्हें इसके लिए इनाम मिलेगा। तुम नन्दनन्दन के भर्म से भी तो परिचित हो। अन्य कोई प्रसग क्यो नहीं चलाते? हे भ्रमर! हम कमलिनी के समान भोलीभाली नहीं हैं जिन्हे तुम चतुरता दिखाके मना रहे हो। भ्रमर! तुम हमारे पैर न छुओ इससे हमारा विरह सन्ताप और अधिक बढता है। (विशेष द्रष्टव्य—भौंरा उड़-उड़ के स्वभावतः गोपियों के पैरो पर गिर जाता है। इसी पर ये व्यगोक्तियाँ गढ़ी गई हैं। देखिए मधुप कितवबन्धो! मा स्पृशाङ्घ्रि सपत्न्याः कुचविलुलितमाला कु कुमश्मश्रुभिनः। तथा—विसृज शिरसि पाद वेद्म्यहं चाटुकारै रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। इत्यादि। श्रीमद्भागवत्—१०–४७–१४ : १६)। हम लोग कुब्जा के समान सीधीसादी नहीं हैं कि जिनके सामने यह चतुरता दिखा रहो हो। तुम चाहे जितना मनाओ पर हम नहीं मानेगीं। उद्धव! तुम तो बड़े ही विचित्र हो हमे भी वच्चों की तरह गुड़ दिखाके बहला रहे हो सो हम तुम्हारे बहकावे में नहीं आ सकती हैं। (मिलाइये—पूत पियारा पिता का गोहन लागा धाय। हाथ मिठाई ताहि दै आपुन गया भुलाय॥ कबीर) उद्धव! हम किसी-तरह भुलावे में नहीं आ सकतीं हमारा तो यही आग्रह है जो अटल है कि किसी न किसी प्रकार सूर के स्वामी रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण को हमसे लाके मिला दो। इसके बिना और किसी बात पर हमारा आपसे समझौता नहीं हो सकता।

इस पद में भालोपमा अलकार है।

२७१ गोपियो के बार-बार अनुरोध करने पर भी जब उद्धव निर्गुणोपदेश का आग्रह दिखाते हैं तो गोपियाँ उनके रूपरङ्ग पर कटाक्ष करके अपनी विरह व्यथा

का वर्णन करती हुई कहतीं हैं कि मधुकर ! तुम्हारा मुँह पीला किसलिये है ? (भौंरे के सिर पर पीले दाग को देखके यह प्रश्न किया गया है) । इस प्रश्न का उत्तर स्वय देती हुईं गोपियाँ तर्कना करती हैं कि तुम जो युवतियो को दुःख देते फिरते हो इसके कारण तुन्हें पॉडु रोग होगया है । यह पॉडु रोग तुम्हारे शरीर मे भीतर हुआ है जिसके कुछ ही लक्षण अभी ऊपर प्रकट हुए है। तुम्हारा तन मन मधुरिमामय श्याम के वर्ण से मिलता है । देखने से मालूम होता है कि तुम भी रसिक होगे पर बाते सुनके ऐसी निराशा होती है जैसी हमें आजकल उजड़े हुए अन्धकारपूर्ण संकेतस्थल को देख के होती है। हा एक दिन था कि इस स्थल के पास बैठकर कौआ भी प्रियतम के पीयूष से मधुर बचनो के घूँट पीता था पर आज देखो वह कौआ उसी रस क्षेत्र (सकेतस्थल) में कड़ुई और घृणित कॉय काय कर रहा है जो हमें बाणों के समान व्यथा दायक प्रतीत होती है । क्या ब्रज के बाग का बसन्त का अन्त देने में ही उनकी (कृष्ण की) चतुरता देखके लोग उन्हे धर्म सेतु या धर्म पालक कहा करते हैं ? जो लोग यहा रगरेलिया करते थे उनके भाग्य में अब योग बाट पड़ा है जिसके शिक्षक और तो और भ्रमर महाशय तक यहा आके प्रवचन कर रहे हैं । सच्ची बात तो यह है कि उनके नेत्रो के सुन्दर कटाक्षो से जब तक छुटकारा नहीं होता (अर्थात् जब तक उनके कटाक्षो से जाग्रत हूई पीर नहीं जाती) तव तक हम इस ससार में अचेत ही जी रहे हैं । हमारा मन वचन और कर्म से सर्वात्मना केवल श्यामसुन्दर से ही प्यार है । सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम अधिक क्या कहें ? जो कुछ भी हमारे मन में है वह उन्हें सब मालूम है ।

इस पद मे उत्प्रेक्षा, उपमा एवं रूपक अलंकार हैं ।

२७२ गोपियाँ उद्धव से मधुकर संबोधन करके उसकी बचन और कर्म की भिन्नता पर आक्षेप करती हुई व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि हे मधुकर ! तू शराब के नशे में मत्त हुआ इधर उधर घूम रहा है । जो दिल में आता उसे बके जा रहा है । तुझे लज्जा नहीं आती ? तू सीधी सादी (शिष्ट) बाते क्यों नही करता ? शराब के कारण बार २ तेरा शरीर चक्कर खा रहा है ! लज्जा से रहित यहाँ तक हो गया कि सबों के सामने लताओं के कली रूपी मुखों को

चूम रहा है। तुझे अपने मन तक का होश नहीं वह किसी और ही जगह है। (अर्थात् तेरा मन कहीं और तू कहीं और है) पहले तू अपना मन संभाल ले तब हमसे बाते कर। देख तेरे मुँह पर पराग की पीक लगी हुई है इसे धो क्यो नहीं डालता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि अब उनसे क्या कहें जिन्होंने अपनी सब लज्जा धोडाली है। अर्थात् वेहयाओ से बात करना ठीक नहीं।

इस पद में रूपक अलंकार है।

२७३ गोपिया योग से चिढ़ के उद्धव और कृष्ण को जली कटी सुनाती हुईं कहती हैं कि हे मधुकर! ये लोग शरीर और मन दोनों से काले हैं। ये काले अग के लोग श्वेत सिद्धता के अङ्ग को कभी नहीं छू पाते। इन लोगों को तो कपट कुंभ (धोखा देने वाला घड़ा) समझो जो जहर से भरे हुए हैं केवल दिखाने के लिए मुँह पर दूध रख रक्खा है। (मिलाइए विषकुम्भपयोमुखम्)। इनका बाह्य बेष बड़ा मोहक दिखाई पड़ता है पर अन्दर मन मे ये वचना लिए रहते हैं। अब आप (उद्धव) ब्रज में ज्ञान का जहर देके हमारे प्राण लेने के लिए चले हैं। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि उद्धव और कृष्ण भला कैसे भले कहे जा सकते हैं जिनका कि रूपरग, वचन और कार्य सभी काले हैं।

इस पद में रूपक अलंकार है।

२७४ गोपिया भ्रमर को लक्ष्य करके उद्धव और कृष्ण की कथनी और करनी की भिन्नता पर व्यग्य करती हुईं कहती हैं कि मधुकर! तुम लोग बड़े ही रस के लोभी हो। अपन तो सदा कमल की कली में निवास करते हैं और हमें योग सिखलाते हैं अपने स्वार्थ को सिद्ध करने केलिए ब्रज में चक्कर काटते हैं क्षण भर के लिए भी व्याकुलता नहीं सहन करते। परन्तु फूल समाप्त होजाने पर फिर फूलों के जरा भी पास नहीं जाते। तुम बड़े चचल हो और सर्वाङ्गतः चोर हो तुम्हारी बातों पर कैसे विश्वास किया जाय? सूरदास कहते है कि विधाता को धन्य है कि उसने भौंरे को और श्याम को एकसा शरीर दिया दोनों के ही एक से रग के और एकसे शरीर हैं।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

२७५ गोपियाँ उद्धव से अपनी वियोग-व्यथा से छुटकारा पाने के लिए निर्गुण को दूर रखके श्याम रूप औषध देने की प्रार्थना करती हुईं कहती हैं कि मधुकर ! हम किस से समझाके कहें कि हमारे अंग प्रत्यंगों ने श्याम के गुण ग्रहण किए हुए हैं फिर हम निर्गुण किससे ग्रहण करवाये। कठोर वाणों के समान जब वे कुटिल कटाक्ष लगे थे तब तो नही मालूम पड़ा पर वाद में जब फूट के पीछे की ओर खटके तब पता चल कि इतने गहरे चुभे हैं। उन बाणों के गहरे प्रभाव के कारण ही हम चक्कर खाते रहते हैं और बार २ उन्ही के सम्मुख जाते हैं। यद्यपि प्रहारो से जर्जर होके टुकड़े २ हो गये हैं फिर भी पीछे को पैर नहीं रखते। रणभूमि में कबध के समान बार २ उठके सामने जाके ही भिडते हैं। इस प्रकार से उन कटाक्षों के प्रहार से अब ये अबलाएँ मृतप्राय हैं। इसलिये सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम इस अवस्था में श्याम रूपी अमृत लाके हमें प्राण दान क्यो नहीं देते ?

इस पद मे साग रूपक तथा उपमालङ्कार हैं।

२७६ गोपिया उद्धव से वियोग व्यथा के प्रतीकार श्याम के दर्शन माँग रही हैं। वे कहती हैं कि हे मधुप ! शरीर से ही नही तुम चित्त के भी काले प्रतीत होते हो। तुम यमुना के उस पार रहते हो और सुनते हैं कि तुम भी श्याम के ही मित्र हो। अन्य जो काले हैं जैसे भ्रमर, केश साप और कोयल उनके समान तुम भी कुछ अवधि तक ही साथ देते हो। बाद में फिर साथ छोड़ के चलते बनते हो। जिस प्रकार ये अपनी मर्जी के राजा हैं जब तक उनकी मौज रही वे रहे और बाद मे चल दिये तुम भी उन्हीं के अनुसार चलने वाले हो। हरि भी कपटी कुटिल और निठुर हैं। वे हमें वियोग दुःख में डालके दूर चले गये। न जाने अब वे फिर कब एक बार के ही लिये सही आके नयनो की दर्शनाभिलाषा को तृप्त करेंगे ? उनकी बात मानना अपना सत्यानाश करना है। वे तो राह चलते चित्त को चुराते हैं ऐसे वज्र राहजनी करने वाले हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उनका मन सेवको को पृथक करके न जाने कैसे तृप्त होता होगा।

इस पद में उपमा अलंकार है।

२७७ गोपियाँ उद्धव के योग को हेय बताती हुई कहती हैं कि योग भेजने

वाले हमारे प्रियतम नहीं हैं। इसलिये यह चिट्ठी किसी और की है हमारी नही है। लो इसे उन्हीं को वापिस दे देना। इसी भाव को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! मथुरा कौन गया है? तुम किसके कहने से सदेश लाए हो? किसने तुम्हे यह चिठ्ठी लिखके दी है? वसुदेव और देवकी के पुत्र कौन है? यदुकुल प्रभाकर कौन है? हमारी इन महाशय से जान पहिचान नहीं है। लो यह कागज उन्हें वापिस दे देना शायद तुम गलती से यहाँ ले आये हो। हमारी जान पहिचान तो गोपीनाथ राधावल्लभ और नन्द यशोदा के प्रिय लाल श्रीकृष्ण से है। वे यहाँ गोकुल मे प्रतिदिन प्रेम का दान लिया क ते थे। एक नयी ही पद्धति उन्होने गोकुल मे चलाई थी। आप तो बड़े चतुर है पर फिर भी उद्धव! कुछ का कुछ कह रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती है कि अब बात हमारी समझ मे आई। आप राह सें भटक गए हैं इसीलिये व्याकुल होके पगलों की भाति बाते कर रहे है।

२७८ गोपियाँ अपने विरह की व्यापकता का वर्णन करती हुई उद्धव से निवेदन करती हैं कि उद्धव! देख रहे हो कि यमुना अत्यन्त काली है। पथिक! तुम जाके कृष्ण से कह देना कि और तो और यमुना भी तुम्हारे विरह ज्वर के सताप से काली पड़ गई है। मानो यह तड़प के मारे पलग से धरती पर गिर पड़ी है और ये उठती हुई तरगे ही मानो इसके शरीर की तड़पन है। यह किनारे पर पड़ी हुई सिकता ही उपचार (प्रतीकार-भेषज) का चूर्ण है और यह धारा उसके प्रस्वेद के प्रवाह की धाराएं हैं। ये जो कुश काश दिखाई देते हैं ये ही मानो उसके बिखरे हुये केशपाश हैं और ये कीचड़ उसकी काजल सी चीकट साड़ी है। यह चारो ओर उड़ता हुआ भौंरा मानों उसका मति-भ्रम है। देखो अपने दुःखपूर्ण अङ्गो को लिए चारो ओर व्याकुल भटक रही है। यह देखो रात दिन चकई की रटके बहाने अपने प्रलाप को व्यक्त कर रही है। तुम इस समता को क्यो नही स्वीकार करते। सूरदास करते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो जो इस यमुना की दशा है वही हमारी भी दशा है।

इस पद में उत्प्रेक्षा (वस्तु और हेतु), रूपक, तथा अपह्नुति अलकार है।

२७९ गोपियाँ कृष्ण की रुखाई देख के उद्धव से कह रहीं हैं कि वे मथुरा

जाके राजा हो गये हैं। वे अब गोपीनाथ कृष्ण नही रह गए वे तो बड़े आदमी हो गये हैं—वे तो सुना है कि मुरली को देख के भी लजाते हैं। यदि कोई प्रसंगवश मुरली की चर्चा चलाता है या लाके दिखाता है तो वे सिहासन पर बैठे हुए दूर से ही मुसकरा देते हैं। महलों की दीवारों पर चित्रित गैयों की ओर भी देखने में सकोच करते है। यदि मयूरपख का पखा भी सामने आ जाता है तो अन्यान्य बाते करके बहलाने लगते हैं। यदि वहाँ कोई हमारी (गोपियो की) चर्चा चलाता है तो उसके चलते ही सहम जाते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि भला हुआ उन्होने व्रज को यों भुला दिया पर पता नहीं इसे वे भुला कैसे सकते हैं ? यदि व्रज को और उसकी वस्तुओ से इतनी शर्म आने लगी तो पता नहीं वे दूध दही कैसे और क्यो खाते हैं ?

२८० गोपियाँ अपनी वियोग-व्यथा की तीव्रता और श्रीकृष्ण की रुखाई देखके उसका कारण अनुमान करती हुई कहती हैं कि शायद उन देशो (जगहो) मे जहाँ कृष्ण रहते हैं बादल नहीं गरजते हैं। यदि गरजते तो वर्षा पुरानी प्रीति को अवश्य उद्दीप्त कर देती और वे इस प्रकार रूखे न बन पाते। शायद भगवान् कृष्ण ने इन्द्र को सख्ती से मना कर दिया है ताकि वह वहाँ पयोदो को न उमड़ने दे और उनकी गरज उनके प्रेम को उद्दीप्त न कर सके। शायद वहाँ मेढ़को को नागो ने खाकर निश्शेष कर दिया है जिससे वर्षागमन की सूचना ही नहीं होती। शायद वहाँ के देश का मार्ग वक पक्तियो ने सर्वथा त्याग दिया और शायद वहाँ मूसलाधार वर्षा बरस के आस पास की धरा को पानी में सराबोर नहीं करती। शायद उस देश के मयूर चातक और कोकिलो को वधिको ने मार के निश्शेष कर दिया होगा ताकि उनकी उन्मादक कूक नहीं सुनाई पड़ती होगी इसी से वे कृष्ण इस तरह रूखे हैं। शायद उस देश में स्त्रियाँ हर्ष निर्भर होके मल्हार के गीत गाती हुईं कभी झूलती भी नहीं होगी उनकी उत्तेजद स्वर लहरी के अभाव में ही वे अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती है कि क्या करे कोई यात्री भी श्रीकृष्ण की ओर नहीं जाते जिनके द्वारा हम उनके लिए सन्देश भिजवा देतीं।

इस पद मे सन्देह अलकार हैं।

२८१ गोपियाँ विरहावस्था में उद्दीपक वर्षाकाल के आगमन पर तर्कना करती हुई आपस में कहती हैं—सखी ! मैं एक नई खबर सुनके आरही हूँ । वह खबर यह है कि इस सम्पूर्ण ब्रजभूमि को कामदेव ने देवराज इन्द्र ने जागीर के रूप में पालिया है । ये बादल उसी के दूत हैं और ये बकपक्ति उनके सिर की पगड़ी है तथा ये सुन्दर बिजलियाँ पताकाएं हैं । यह देखो कोकिल और चातक उच्च स्वर से बोल रहे हैं मानो वे सब मिलके इस जागीर के मालिक कामदेव की दुहाई दे रहे है । मेढ़क मयूर चकोर और तोते भी बोल रहे है फूलो की सुगन्धित सुन्दर हवा भी चल रही है । सुना है कि कामदेव अपने सब ताम-झाम के साथ सिपाही प्यादे लेके अब वृन्दावन मे ही रहना चाहते हैं । यदि ऐसा है तो हमारा विधाता से क्या वश चल सकता है ? जब कुँवर कन्हैया यहाँ रहते थे तब तो यहाँ की सीमा भी कोई न दबा सका पर अब सुनो सूरदास के स्वामी श्याम रूप केहरी की अनुपस्थिति मे ये ठकुरायत (हुकूमत) करेंगे ।

इस पद में उत्प्रेक्षा और रूपक अलकार है ।

२८२ उद्दीपक वर्षा के आगमन पर गोपियो का विरह और भी अधिक हो जाता है । इसलिए वे उमड़े हुए घनो को देखके कृष्ण के यो भूल जाने पर उलाहना देती हुई कहती हैं—सखि ! ये बादल भी बरसने के लिए आ गए । ये भी तो कहीं अच्छे हैं । हे नन्दनन्दन ! देखो ये बादल भी आने की अवधि जानके गरजते हुए आकाश में छाने लगे । हे सखि ! सुना जाता है कि ये स्वर्ग लोक मे रहते हैं और दूसरे के नौकर हैं (मिलाइये—जानामित्वा प्रकृतिपुरुषंकामरूप मघोनः—मेघदूत) । परन्तु इतनी दूर रहते हुए तथा पराई सेवा मे रहते हुए भी ये चातक कुल की व्यथा को समझ के उतनी दूर से यहाँ आ पहुँचे ? इन्होंने सूखे पेडों को हरा कर दिया और बेले भी प्रसन्न होके उन से मिलने लग गई । इन्होंने मरे हुए मेढकों को फिर से जिला दिया । जहाँ तहाँ घने जल और घास देखके पक्षीगण भी प्रसन्न हो रहे हैं । सखि ! हमें तो अपनी कोई ग़लती समझ नहीं पड़ती फिर भी श्रीकृष्ण ने बहुत दिन लगा दिए । सूरदास कहते हैं कि गोपी कहती हैं कि करुणामय स्वामी ने मथुरा रहके हमें ऐसा भुला दिया कि वर्षागमन मे भी नहीं आए ।

यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा गम्य है।

२८३ श्री कृष्ण के वियोगमें राह देखते-देखते वर्षा आ गई। आषाढ़ बीता और सावन लग गए। चारो ओर की रमणीयता ने विरहानल को और भी तीव्र कर दिया। इस पद में सखियाँ कामोद्दीपक श्रावण के मास को बिताने का आयोजन सोचती हुई कह रही हैं—वियोग की व्यथा से अत्यन्त पीड़ित हम गोविन्द के बिना श्रावण के दिन कैसे बितावेगीं ? चारो ओर पृथ्वी हरी हो गई तालाबो मे पानी भर गया। अब तो मोहन के आने की राहें भी मिट गई। अर्थात् अभी तक तो उन राहो को ही देखकर ये नेत्र बहलाए जाते थे पर अब वह भी साधन नहीं रहा। सावन मे जिधर देखो उधर ही सुन्दर वस्त्रो को धारण करके सौभाग्यवती स्त्रियो के झुण्ड के झुण्ड गाने और झूलने के लिए प्रस्तुत दिखाई देते हैं। चारों ओर से घुमड़-घुमड़ के घनघोर बादल गरज रहे हैं। कामदेव धनुष लेके इधर-उधर दौड़ रहा है और मेंढक और मयूर शोर कर रहे हैं तथा चातक और कोयल भी रात्रिके भट होकर काम कर रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ व्यथित होके कहती हैं कि हाय ! अब ये रातें कैसे कटेगीं जब कि एक-एक रात में तीस-तीस घड़िया होती हैं। यहाँ ऐसी विकट परिस्थिति मे एक-एक पल काटना भी दूभर हो रहा है फिर घड़ी की तो बडी बात है और वह घड़ी भी एक नहीं तीस ! वास्तव मे बड़ी विषम समस्या है।

इस पद मे उत्प्रेक्षा गम्य है।

२८४ विरह व्यथा में मयूर की केका को अत्यन्त दाहक बताती हुई गोपियाँ परस्पर कह रही हैं—'हाय री मा !' मोर भी तो हमारे पिण्ड (बैर) पड़े हैं बादलो की गरज सुनके ये मना करने पर भी नही मानते प्रत्युत उत्तरोत्तर और अधिक ही कूकते हैं। मोहन ने इन्हें इकट्ठा करके इनके पखों को अपने शीश पर धारण कर लिया था इसीलिए ये शायद हमे मारते हैं। ढीठ तो इन्हें कृष्ण ने ही कर दिया है। अरी सखी ! न जाने इसमे इन्हें क्या मिल जाता है कि हमसे सदा अकड़े रहते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि श्री कृष्ण तो अब परदेश चले गये पर ये वन से टलके न गए। भाव यह है कि इन्हें यदि उनसे बदला लेना था तो उन्हे भी वहीं जाके उनसे भिड़ना

था न कि यहाँ रहके हमे दुःख देना चाहिए। पर ये उनसे न जीतकर हमे यहाँ तग करते रहते हैं। खसम पै रिसानी लड़को को मारे वाली बात कर रहे हैं ये मोर।

इस पद मे प्रत्यनीक अलकार है।

२८५ वियोग व्यथा मे कृष्ण के व्यवहार पर कटाक्ष करने वाली किसी गोपी पर आक्षेप करती हुई दूसरी अपने को ही दोषी बताकर बढ़ी दीनता से उद्धव से प्राणान्तक व्यथाकारी योग के विषय मे चुप रहने का अनुरोध करती हुई कहती है कि सखी! हरि को दोष मत दो। वास्तव में हमारा स्नेह ही बनावटी हैं कि जिसके कारण हम इतना दुःख पा रही हैं। देखो, आज हम (जीवित रहके या साक्षात्) इन नेत्रो से अपने घरको सूना देखती हैं, तथापि श्रीकृष्ण का विरह शूल हमारे हृदय मे विद्ध होके एक बढ़ा छेद नहीं करदेता अर्थात् श्रीकृष्ण के दुःखदायी हृदय से हमारा हृदय फट नहीं जाता। उद्धव! अब तुम गड़े मुर्दे उखाड के (पुरानी बाते कह-कह के) हमारे प्राण न लो। सूरदास कहते है कि गोपियाँ उद्धव से कहती है कि यदि तुम नही मानोगे तो हम कहे देती है कि यह हमारा शरीर निर्जीव हो जायगा।

इस पद मे रूपक अलकार है।

२८६ कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर गोपियाँ स्वय अपने किये पर पश्चाताप पूर्वक व्यग्य करती हुई व्यथित होके आपस मे कहती है कि लो परदेशी के प्रेम की कलई खुल गई। तब तुम बड़ी कन्हैया-कन्हैया पुकारती हुई हर्ष से फूला करती थीं लो अब उसका परिणाम भुगतो। तुमने अपने ही हाथो दूसरे को अपना सर्वस्व क्यों अर्पण कर दिया था? वे तो महा ठग निकले मथुरा भी छोड़ के चलते बने और अब जाके उन्होने समुद्र तट पर घर बना लिया है यह खबर सुनके उन गोपियो के अङ्ग मे और भी सन्ताप बढ गया और मन मे सन्देह भी बढ गया (अब तो उनका यह सन्देह कि माधव ने उन्हें भुला दिया है और भी दृढ हो गया)। सूरदास कहते है कि गोपियाँ यह खबर सुनके अत्यन्त व्याकुल हुई और उनके नेत्रो से आँसुओ की झड़ी लग गई।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

२८७ गोपिया विरहव्यथा से संतप्त होके मरणासन्न हो आपस में कहा करती हैं हायरी मा ! हरि नहीं मिले जन्म यो ही बीत रहा है। उनकी राह देखते-देखते एक दिन युग के समान बीत रहा है चातक और कोकिलो की कूक सखी ! अब कानो से सुनी नहीं जाती। चन्द्रमा तथा चन्द्रमा की किरणे मानो करोड़ो सूर्य बनके सताप देती हैं। सूरदास कहते हैं कि युवतिया कृष्ण के आगमन में सजधज के तयार होती हैं पर पिर भी वे नही आते। इसलिए वे सजधज के सामान भी प्राणान्त व्यथा देने वाले बन गए हैं। युवतिया (कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में) भूषण इस तरह सजाती हैं जैसे रणभूमि के लिए उत्कठित योद्धा कवच धारण करता है। (कृष्ण के न आने पर वे ही आभूषण दुःखदायी बन जाते हैं। इसलिए सूर कहते हैं) जिस प्रकार अर्जुन के प्रेरित बाणों की शरशय्या बनाके भीष्म लेटे थे उसी प्रकार मदन से प्रेरित बाणो पर गोपिया व्यथित एव त ड़पती हुई लेटी हैं। शरशय्या पर लेटे हुए मृत्यु जय भीष्म ने सूर्य के दक्षिणायन होने पर प्राण परित्याग किए थे। जब तक सूर्य दक्षिणायन नहीं हुए थे तब तक वे उसकी प्रतीक्षा में लेटे धर्मोपदेश करते रहे थे। गोपिया भी मरण शरशय्या पर लेटी हुईं दक्षिणायन सूर्य रूपी अवधि की प्रतीक्षा कर रही हैं उनके चचल प्राण शरीर त्याग नहीं करते। वे अवधि मे अटक रहे हैं।

इस पद में उपमा, उत्प्रेक्षा एव सागरूपक अलकार है।

२८८ गोपियां विरह में कृष्ण को पुकारती हुई अपनी विरहव्यथा और असहायता का वर्णन करती हुईं कहती हैं कि हे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे विरह दुःख के कारण हमारे नयनों की नदी में बाढ़ आगई है। वह बाढ़ इतनी बढ़ गई है कि दोनो पलक रूपी तटो को समेटे लिए जा रही है। अक्षिगोलकरूपी नई नाव भी इस चढ़ी नदी मे चल नहीं पाती क्योकि यह नदी अपने प्रबल प्रवाहों से उछल के इसे डुबाए देती है। हमारे ऊर्ध्वाश्वास की समीरो के बवडर ने इस नदी की तरङ्गो को इतना उच्छ्रलित कर दिया है कि वह तिलक रूपी पेड़ को तोड़े डाल रही है। काजल की कींच बहाकर इसने कपोल अधरो के तटो के अन्तर्भाग गदेकर दिए है। इसके सकट से स्थगित होके हाथ पैर और मुख के बोल रूपी पथिक जहा के तहा ठहर गए हैं अर्थात् इन्होने चलना

फिरना बिलकुल त्याग दिया है। ऐसी असाध्य अवस्था मे हे कृष्ण ! तुम्हारे दर्शन के बिना क्षण भर के लिए भी जीने का कोई उपाय नहीं है। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि आसुओं की बहिया मे यह सब गोकुल डूबा जारहा है कृपा करके अपने हाथ से इस पकड़ लीजिए।

इस पद में सागरूपक अलकार है।

२८९ गोपिया अपनी विरहव्यथा के सताप का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हम को तो स्वप्न में भी यही चिन्ता रहती है। जिस दिन से नंदनदन बिछुड़े हैं उस दिन से (हमारा मन) यह बड़ा भयभीत हो गया है। मैने स्वप्न मे देखा कि मानो गोपाल मेरे घर आए हैं और हॅस के उन्होने मेरी बॉह पकड़ली है। इसके आगे मैं और आनन्द स्वप्न में भी नही ले सकी। क्या करूॅ नींद ही मेरी बैरिन हो गई जरा देर और न बनी रही। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती है कि यह तो ऐसी हुई जैसी कि उस चकई की जो प्रतिबिब को पानी में देखके उसे प्रियतम समझ के आनन्दित होने लगी परन्तु इतने में ही निष्ठुर दैवने हवा के बहाने आके पानी को हिला दिया और वेचारी चकई का स्वप्न टूट गया। जैसे वह दुःखी हुई उसी तरह मेरा स्वप्न टूट जाने से मैं भी दुःखी हो रही हूँ।

इस पद में उपमा एव अपह्नुति अलंकार है।

२९० गोपिया विरह मे नयनों मे उठी हुई प्रियतम के दर्शनो की आशा पर आक्षेप करती हुई कहती हैं—कि आज ये आखे तरस रही हैं पर जब वे यहा थे तब तो ये आखे ही अज्ञ बनी रही। कुछ तो वैसे ही भोली और कुछ हरि की ओर एक टक निहारने से जो कुछ समझ थी वह भी मारी गई। ये ऐसी भूल रहीं थी जैसे भरे घर मे घुस के चोर निधि को देखके हक्का बक्का हो जाता है। बेचारा कुछ भी नही ले पाता। रातभर यह लू कि वह लूं करते ही करते रात बीत जाती है। वह एक के बाद दूसरी चीज लेता और फिर डाल देता है। इसी तरह ये आखे उन शोभानिधि पर जाके यह माग देखूं कि वह देखूॅ करती रहीं कही पर मन भर के न रम सकीं। एक-एक करके सबकी छोड़ती रहीं। आज ये दुखियाती है। हाय ! पहले ही ऐसी रत क्यो न हुई कि मुॅह भर जाता (मन भर जाता)। सूर कहते हैं अब इन्हें शक्ति भर लालच

बढ रहा है और इनके नित्य नई पीर उत्पन्न होती है ।

इस पद मे उपमा अलकार है ।

२६१ विरहानल से सतप्त गोपियाँ विरहोन्माद मे चद्रमा द्वारा द्वारिका निवासी कृष्ण के लिए सदेश भेजती हुई कहती हैं कि हे उदधिसुत (चन्द्र)! तुम उस देश में जाया करते हो। सम्पूर्ण भुवनो के राजा श्री श्याम सुन्दर द्वारिका रह रहे हैं। तुम अत्यन्तशीतल हो तुम्हारा शरीर अमृतमय है। तुम कृपा करके हमारी यह बात कह देना कि तुम अपना काम निकाल के हमें छोड़ के विदेश छा रहे हो। हे जगत के बदनीय नन्दनन्दन! एक बार हमारी खातिर फिर से नटवर का वेष धारण करके ब्रज में आओ! सूर कहते हैं कि गोपियाँ चन्द्रमा से कहती हैं कि उनसे हमारा यह सदेश कह देना कि हे नाथ! तुम हमें अनाथ करके क्यो छोड़ गए?

२६२ विरह से व्यथित गोपियाँ विरहोन्माद में कोयल को सबोधन करती हुई कहती हैं कि सखी! तुम मेरी एक शिक्षा सुनो। जहा ससार के मणि श्री यदुनाथ निवास करते हैं वहा भी एक बार चक्कर लगा आओ। हे चतुर बुद्धि रखने वाली कोकिला तुम बड़ी कुलीन हो और विरहिणियो की व्यथा को खूब जानती हो। इसलिए तुम जाके वहाँ उपवन मे मीठी बोली सुना आओ और अपने इन मीठे वचनो से खरीद के हमे अपनी क्रीत दासी कर लो। भाव यह है कि यदि तू वहा जाके अपनी मधुर बोली वहाँ सुनावेगी तो इसके बदले में हम तेरी अनुचरी हो जावेगी। जो शुभ यश प्राणोत्सर्ग करने पर हाथ लगता है उस सुयश राशि को तू मुफ्त (केवल बोल के बदले) खरीद ले। हमने खूब अच्छी तरह संसार मे आख फैला के देख लिया हमारा और कोई भी उपकारी नहीं है। अब हम निराश होके तुम्हारी शरण हैं तुम जाके उनके (श्रीकृष्ण) द्वार पर हमारी टेर सुना देना और कह देना कि बेचारी अबलाओ को काम ने घेर लिया है। किसी तरह यदि तुम सूर के स्वामी श्याम को यहा ले आओ तो हम सदा तुम्हारी सुन्दर कीर्त्ति का गान किया करेंगी। तुम्हारे उपकार के लिए सदा कृतज्ञ रहेंगी।

२६३ विरहानल से सतप्त होके विरहिणी राधा रात मे उदीयमान चन्द्र को और भी आग बरसाते देखके कोस रही है। वह कहती है हाय री मा! कोई

इस चन्द्र को रोकले । यह अपनी प्रेयसी कुमुदिनी को आनन्दित करती है पर हमारे ऊपर तो बड़ा कोप करता है । देखो जलाके भस्म करे देता है । न जाने अमावस्या कहाँ गई आके इसे छिपा क्यो नहीं लेती ! सूर्य और प्रभात का सन्देश वाहक ताम्रचूड़ (मुर्गा) कहाँ चले गए आके इसे कान्तिहीन क्यो नहीं कर देते ? जाने काले बादल कहाँ मर गए आके इसे क्यो नही छिपा लेते ? यह ढीठ चलने का नाम नहीं लेता यह अपना रथ खड़ा करके रह गया है । हम विरहिणियो के शरीर को जलाए दे रहा है । वह मन्दराचल समुद्र वासुकि सर्प को बुरा भला कह रही है क्योकि न ये होते न चन्द्र का जन्म होता फिर विरहिणियों को इतना दाह क्यों होता ? वे कठोर (निर्दय) कच्छप को जिसने कि समुद्र मथन मे योग दिया था कोस रही है । जरा राक्षसी को देवी कहके उसे शुभ आशीर्वाद दे रही है वह कहती है हाय ! कितना अच्छा होता कि वह जरा आके भिन्न हुए राहु और केतु को फिर से जोड़ के एक देह बना देती जिससे वह इस चन्द्र को खा के पचा लेता और हमेशा के लिए इसकी कथा ही समाप्त हो जाती । जिस प्रकार जल से रहित होके मछली तड़पती है उसी तरह कृष्ण के विरह मे ब्रजबाला तड़प रही है । सहृदय सूर कहते है कि स्वामी मदन गोपाल श्रीकृष्ण को लाके शीघ्र ही इससे मिला दो वरना बड़ा अनर्थ होने की सभावना है । मामला बड़ा सगीन है ।

अन्तःकथाए १—विष्णु ने मन्दराचल की रई बनाके तथा वासुकि की रस्सी बना के देवताओ से क्षीर सागर का मथन करवाया था । उसके मथन से चन्द्र आदि चौदह रत्न और अमृत तथा विष निकले थे । विष्णु ने वह अमृत देवताओं को बाँटा था । जब वह अमृत बाँटा जा रहा था तब राहु राक्षस भी देवताओ की पक्ति मे आ बैठा था । उसने भी अमृत लेके पान ही किया था कि सूर्य और चन्द्र ने शिकायत कर दी विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया । अमृत के प्रभाव से वे दोनो भाग अलग-अलग अमर होगए । शिरोभाग राहु और शेष कबंध केतु के नाम से पुकारा जाने लगा । तब से ये दोनो सूर्य चन्द्र को ग्रसने लगे परन्तु ये विकलाँग होने से उन्हे पचा नहीं सकते और इसीलिए फिर सूर्य और चन्द्र ज्यो के त्यो निकल आते है ।

अमृत मथन में नीचे की ओर मदराचल की चोट सभालने वाला कच्छप

था इसलिए उसका भी योग समुद्र मथन में है। इसीलिए ये सबके सब कोसे गए हैं।

२—जरा नामक एक राक्षसी थी जिसने कि जरासंध नामक मगध नरेश को जो जन्म के समय दो टुकड़ो में विभक्त था जोड़के एक कर दिया था। वह बाद में बड़ा प्रतापी हुआ। राजसूय यज्ञ करने के पूर्व भीमसेन से उसका मल्ल-युद्ध हुआ था। भीमसेन की किसी तरह उससे पेश न गई तब श्रीकृष्णने तिनका चीर के जरासध के शरीर के जुड़े हुए दो भागों का संकेत भीम को दिया था और उन्होने संकेत पाके ज्यों ही दाव मिला चीर के उसे दो कर दिया। चन्द्र की दाहकता के कारण गोपियाँ इस पद में उसे देवी इसीलिए कह रहीं हैं कि प्रसन्न होके राहु केतु को जोड़ दे और चांद का काम तमाम होजाय।

इस पद मे अतिशयोक्ति और उपमालंकार हैं।

२६४ कोई गोपी बेचारी विरहवेदना से परेशान है। उसे श्रीकृष्ण पर सदेश ले ज़ाने वाला तक नसीब नहीं होता। अन्त मे कोई चारा न देखके वह सन्देश ले जाने वाले के लिए बहुमूल्य पारितोषिक की घोषणा करती हुई अपनी विरह व्यथा का वर्णन कर रही है। वह कहती है कि मैने श्री श्याम-सुन्दर के लिए चिठ्ठी लिख रक्खी है। यदि इस चिठ्ठी को कोई मथुरा पहुँचा दे तो मैं उसको हाथ का कगन दे दूँगी। हा माधव! अब वह प्रेम कहा गया जो पहले था। जब तुम वेणु बजा केहम से मिला करते थे। आज आखो से प्रवा-हित होते हुए आँसू इस चन्द्र मुख (सारग=कमल का रिपु) को भिगोते रहते हैं। रात बड़े सकट से कटती है। सूना घर मुझे भयावह लगता है। यह ऋतु मुझे देखे नहीं भाती। सूरदास कहते हैं कि आखिर कभी तो श्याम आवेगे ही परन्तु समय विता के आने से फिर क्या हाथ लगेगा। 'समय चूकि पुनि का पछिताने' के अनुसार हमारे मरण के उपरात आने पर पश्चात्ताप को छोड़ और कुछ नहीं पल्ले पड़ेगा।

इस पद में रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

२६५ विरहिणी गोपी बादलो की घटा उठती हुई देखके उसकी जो दशा हुई वह इस पद में वर्णन की गई है। सूर कहते हैं कि बादलो की काली घटा उमड़ी देखके गोपी के नयनो में आँसू भर आए। वह कहने लगी कि हाय!

श्रीकृष्ण ने परदेश मे बहुत दिन लगा दिये। वह बादलो को ही पथिक सबोधन करके कहती है कि भैया पथिक ! तुम कौन देश से दौड़े आ रहे हो। मै तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ देखो तुम मेरी यह चिठ्ठी वहा जाके तहुंचा दो जहा घनश्याम श्रीकृष्ण रहते है। उनसे कह देना कि यहा वर्षागम में मेंढक मयूर और चातक शोर मचा के हमारे प्रसुप्त काम को जगा रहे है। हाय ! सूर के स्वामी श्याम हम से ऐसे बिछुड़े कि वे अब पराए ही होकर रह गए। वे तो आने का नाम तक नहीं लेते मानो वे हमारे हैं ही नहीं।

इस पद मे अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

२६६ ब्रजगोपिया विरहानल से सतप्त होके उमड़ते हुए काले बादल को देख के कृष्ण की याद में विह्वल होके परस्पर कह रही हैं कि आज तो बादल श्याम के समान काले २ उमड़ रहे हैं। हे सखी उनके रूप की मुद्रा देखो। वे बिलकुल श्याम के ही सदृश है उन पर पड़ा हुआ इन्द्र धनुष मानो उनके नवीन वस्त्र की शोभा को व्यक्त कर रहा है। विद्यु त को उनकी दत पक्ति समझो। ये श्वेत वक पक्ति मानों उनके वक्षःस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला है। ये देखो अपने प्रेमियो को बड़े प्रेम से देख रहे हैं। आकाश मे बादलो की गरजना के रूप में गोविन्द की वाणी को सुनके उनकी आँखो मे आसू भर आए। सूरदास कहते हैं कि वे विरह विह्वल गोपिया उमड़ते हुये बादलो को देख के श्याम के गुणो को स्मरण करके अत्यन्त व्याकुल हुई।

इस पद में स्मरण, वस्तूत्प्रेक्षा एव रूपक अलकार हैं।

२६७ गोपियाँ विरह से व्याकुल होके दाहक चन्द्रमा को देखके उसे उपालभ देती हुई कहती हैं—हे कृष्ण ! तुम्हारी अनुपस्थिति में महादेव जी का शिरोभूषण यह चन्द्रमा हमारे चित्त को जला रहा है। इस नक्षत्र राज चन्द्रमा को लोग अमृतमय कहते है पर हमारे लिये तो यह अपना स्वभाव (अमृतवर्षा) छोड़ के अग्नि को धारण या प्रवाहित करने वाला है। हायरी सखी ! रात नहीं बीतती साप न जाने कहा रहता है। आके मेरे जीवन का अन्त क्यो नहीं कर देता ? यह चन्द्रमा पश्चिम की राह नहीं पकड़ता अर्थात् अस्त नहीं होता। राहु इसे पकड़के क्यो नहीं ग्रस लेता ताकि यह हमें न निगल पाता। हे उदधि सुत (चन्द्र) ! यो तो तुम बड़ी अचल समाधि लगा के मुनि तथा

शिवाजी की दिनचर्या को अपनाते हो उन्ही के समान रहते हो। लेकिन तुम्हारा यह सब ध्यान (समाधि) आदि लगाना कुछ ऐसा ही है। अर्थात् रहने को तो ऐसे रहते हो पर विरहिणियो के लिये तुम रिपु घरे हो। इसलिये तुम बगुला भगत हो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि चन्द्र का रूप हमारे प्रभु के समान ही मोहित करने वाला है। इसीलिये हम ध्यान मुद्रा में उसकी ओर देखने तो लगती है पर हमारा चित्त उसकी दाहकता के कारण उसे सहन नही कर पाता।

इस पद मे विषम, उपमा और अन्तिम पक्ति में विरोधाभास अलङ्कार है।

२६८ कोई विरहिणी विरह से सन्तप्त होके रात्रि में चन्द्र दर्शन से और भी अधिक सकट मे पड़ी। अनेक उपाय किये और ज्यो त्यो करके उससे छुटकारा पाया। प्रातःकाल वह आप बीती को अपनी सखी सी कहती है कि हे सखी! क्या कहूँ ! आज रात का दुःख मुझ से कुछ कहते नहीं बनता। चद्र दर्शन से विरह सन्ताप जब बहुत बढ़ गया तो मन बहलाने केलिए बशी हाथ में ली। परन्तु परिणाम उलटा हुआ। चन्द्र का रथ (उसमे जुते हुए मृगो के मोहित हो जाने से) खड़ा होगया और चन्द्रमा ने चलना बन्द कर दिया। प्राणनाथ प्रियतम श्रीकृष्ण के वियोग मे कामदेव ने अपने नए बाणो से मुझे जलाना शुरू कर दिया। फिर क्या था विरहिणी बहुत ही व्याकुल होके सोचने लगी कि हा ! मुझे साप आके क्यो नही काट लेता कि मेरे इस दुःखी जीवन का अन्त हो जाय। अन्त मे विरहिणी कहती हैं कि जब किसी तरह विरह सताप का अन्त न हुआ तो सखियो ने सिह का चित्र खीचा ताकि उसे देख के चन्द्र रथ में जुते हुए मृग भयभीत होके भाग जावे चद्र अस्त हो जाये और इस बेचारी स्त्री की शोचनीय अवस्था टल जाय। सूर कहते हैं कि वह विरहिणी कहती है कि इस उपाय से चद्र का रथ शीघ्र ही चल दिया और देखा कि पीछे से (पूर्व की ओर से) सूर्य का उदय हो रहा है।

इस पद में विषादन एव सूक्ष्म अलकार है।

उपर्युक्त पद के भाव को जायसी ने भी अभिव्यक्त किया है। देखिये—

कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी, तिल-तिल भर जुग-जुग जिमि गाढी।
गहै बीन मकु रैनि बिहाई, ससि-बाहन तहँ रहै ओनाई।

पुनि धनि सिध उरेहै लागै, ऐसिहि विथा रैनि सब जागै। इत्यादि।

जायसी—पद्मावत—(पद्मावती—वियोग खण्ड)

२६६ गोपियाँ कृष्ण के वियोग मे रुदन करती हुई कहती हैं कि हाय री मैया! देखो इन नेत्रो से तो बादल भी पराजित हो गए हैं। बादल तो वर्षा ऋतु में ही बरसते हैं पर ये तो बिना वर्षा के भी सदा रात दिन बरसते रहते हैं। इनके दोनो तारे (पुतलियाँ) सदा जल में डूबे रहते हैं। कही-कहीं मलिन पाठ है जो अधिक अच्छा है क्योंकि उसकी सगति वर्षा में बादलो के कारण धुँधले हुए तारों से ठीक बैठती है। तारो के सजल होने से यह सगति नहीं बैठती। ऊर्ध्व श्वास के बवंडर से सुख रूपी अनेक पेड़ उखड के गिर पड़े है। यहाँ दुःख पाठ ठीक नहीं जॅचता क्योकि दुःख रूपी पेडों का तो उखड जाना इष्टापत्ति ही होगी। पावस ऋतु के भय से वचन रूपी पक्षी वदन रूपी अपने घोसले मे ही बसे रहते हैं वे बाहर नहीं निकलते। आँसुओं का पानी काजल से काला होके ढल-ढल के बूॅद बूॅद से चोलियो पर गिरता है जो वक्षःस्थल पर दोनों स्तनो के बीच श्याम होके बहता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो दो शिव की पर्णकुटियों के बीच में एक श्याम नदी का प्रवाह बह रहा है जो उन कुटियो को अलग-अलग किए हुए है। श्री कृष्ण की याद कर-कर के बड़ी गरज के साथ रात दिन आँसुओ की जलधारा प्रवाहित हो रही है। सूर कहते है कि गोपियाँ कहती है कि इस मूसलाधार वर्षा के जल में डूबते हुए ब्रज को प्यारे गिरिवरधारी के बिना और कौन बचा सकता है? भाव यह है कि उन्हीं के आगमन से ये अश्रुधाराएँ बन्द हो सकेंगी और ब्रज स्वस्थ होगा। गिरिवरधर कृष्ण के अनेक नामो में से यह नाम यहाँ विशेष अभिप्राय से लिया गया है। एक बार इन्द्र ने क्रुद्ध होके ब्रज को नष्ट करने के लिए मूसलाधार वर्षा की थी तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत हाथ पर छाते की तरह धारण करके ब्रज को बचाया था। इस पद में श्रीकृष्ण का गिरिवरधर नाम लेके उनके उसी कार्य को याद कराया गया है। अर्थात् जब-जब ब्रज के डूबने की नौबत आई तब-तब उन्होंने उसकी रक्षा की। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यदि उन्हे खबर लगेगी कि ब्रज फिर से डूबने जा रहा है तो

वे उसे बचाने अवश्य आवेंगे। आखिर तो ब्रज उन्हे प्यारा ही है।

इस पद मे श्लेष रूपक और उत्प्रेक्षा से पुष्ट प्रतीप अलकार है तथा अन्तिम पक्ति में गिरिवरधर संज्ञा के साभिप्राय होने से परिधराकुर अलकार है।

२०० विरह व्यथा के सन्ताप में कोकिल का मधुर नाद सुनके गोपियाँ कहती हैं—अरे कोकिल! तू जरा उड़ क्यों नहीं जाती! अपनी अनेक प्रकार की स्वर माधुरी सुनाके तू यहाँ किसे रिझा रही है? नीचे मुँह डालके निर्दयी पशु के समान तू इतनी क्रुद्ध क्यो हो रही है? (कोकिल का स्वभाव है कि वह नीचे मुँह करके उत्तरोत्तर ऊँचे स्वर में ही बोलती जाती है। इसी पर क्रुद्ध होने की कल्पना की गई है)। हाय! क्या करें यहा कोई भी व्याकुल विरहिणी की थाह (व्यथा की सीमा) को कोई नहीं सुनता समझता। अरे मदन! अवधि के दिन तक तो हमारे शरीर को बना रहने दे। मुँह फाड़के हमें खा न डाल। तूने तो शिव के द्वारा जलाए हूए अपने शरीर की व्यथा का अनुभव स्वय किया है। अतः तू जानता हैं कि तन दाह की व्यथा कैसी होती है। तुझे हम क्या समझावें कि दाह बड़ा व्यथादायक होता है। नन्द-नन्दन का विरह बड़ा व्यथादायक है इसका वर्णन करना शक्ति से बाहर की बात है। इसलिए गोपिया कोकिल से कहती हैं कि सूर के स्वामी ब्रजनाथ की अनुपस्थिति में हे कोकिल! तू मौन धारण करले। इसके लिए हम तुम्हारा बड़ा उपकार मानेंगीं। तू मौन लेके हमें खरीद ले।

अन्तःकथाः—कामदेव अपने मित्र बसंत के साथ शिवजी को क्षुब्ध करने के लिए उनके आश्रम मे गया था। आकर्णशरासन खींच के वह समाधिस्थ शिव के पीछे खड़ा था कि शिवजी की समाधि उखड़ गई। पूजा के लिए आई हुई पार्वती को देखके उनका मन क्षुब्ध हुआ ही था कि उन्होंने उसका कारण काम को जान के उसे अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था।

इस पद में अतिशयोक्ति अलंकार है।

२०१ विरह संतप्त गोपिया उद्धव से योग की बात सुनके उनसे कहती हैं कि हे मधुकर! संदेशों से योग नहीं होता। चाहे तुम करोड़ो यत्न करो इस

ब्रज मे इस उपदेश को कोई नहीं सुनेगा। शाम को प्रियतम से वियुक्त होती हुई चकवी को सूर्योदय होने पर पुनर्मिलन के लिए कोई सदेह नहीं होता। अर्थात् उसे निश्चय रहता है कि सूर्योदय होने पर मै प्रियतम से अवश्य मिलूँगी। इसी प्रकार हमें भी विरह में यह निश्चय है कि अवधि आने पर कृष्ण अवश्य मिलेंगे। चातक आदि पक्षी भले ही बन में रहते हैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते पर बधिकों को तो उन की हत्या से ही काम है। इसी प्रकार हम भी विरह को सहन करती हैं किसी का कुछ नही बिगाड़तीं पर उद्धव जैसों को तो हमारा जी दुखाने में ही मजा आता है। हमारा नगर एक नगर के नायक (हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण) के बिना सूना है। अन्य सब जो यहा के रहने वाले हैं उनसे इस अभाव की पूर्ति नही हो सकती। (मिलाइए—यदपि सन्ति जना जगतीतले तदपित्वद् विरहाकुलितं मनः। कति न सन्ति निशाकर तारकाः कमलिनी मलिनी रविणा विना।) सूर कहते है कि गोपिया कहती हैं कि यह सब होते हुए भी कृष्ण और उनके साथियो को इसकी क्या चिन्ता ? क्योकि ये तो काले नाग है जिनके यहा दूसरो को डसना ही उनकी क्रमागत परंपरा है।

इस पद में अन्योक्ति अलंकार है।

३०२ गोपिया अपनी असह्य विरह दशा मे भी कृष्ण को न लौटता देख कृष्ण के कुपित होने की आशंका से तर्कना करती हुईं परस्पर कहती हैं—कि अरी सखी सुनो ! हमारे विचार से तो श्रीकृष्ण इस डर के कारण गोकुल नहीं लौटे। वे वास्तव में हमारी करतूतों को सोचकर ही मथुरा में जम गए हैं। वे सोचते होगे कि यदि ब्रज में जाऊँगा तो वहा बालक लोग (पहले की तरह) आधी रात से उठके मुझे भी आके जगाया करेंगे और गोपिया मुझे नंगे पाँव (बिना जूते के) बन में गैया चराने भेजेंगी। सूने घर में दही और मक्खन चुराते हुए मुझे ग्वालिने मना करेंगी और कितने ही लच्छन लगाके मुझे बाध के नाचतीं गातीं यशोदा के पास ले जाया करेंगी। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती है कि इन दुःखो को याद करके वे अपने मन में सोचते होगे कि फिर जाके इन दुःखों को जाके कौन सहे ?

३०३ उद्धव के लौट जाने पर अन्य कोई संदेश न मिलने से गोपिया

अत्यन्त व्यथित हो वर्षागमन के कारण और अधीर होके आपस में कहने लगी कि अरे ! फिर कोई भी न आया। वही एकबार उद्धव आए थे जिनसे कुछ खबर मिली थी। सखी ! हम यही सोचा करती हैं कि श्रीकृष्ण ने इतनी देर क्यों लगाई ? गोकुलनाथ श्रीकृष्ण ने हम पर दया करके कभी पत्र भी तो नहीं लिख भेजा ! इतने दिनो अवधि की आशा में काट लिए पर अब तो हमारा मन उनके न आने पर पागल हो जायगा। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं 'लो अब और संकट आया। वह देखो चातक बोल रहा है और बादल आकाश में छाने लगे। वर्षा आ गई। अब तो प्राण संकट में पड़ेंगे।

३०४ उद्धव द्वारा योग की बात सुनके गोपी कहती हैं कि मेरा मन तो मथुरा में श्रीकृष्ण के ही साथ रह रहा है। वह हमारे शरीर को छोड़ के चला गया और फिर लौट के नहीं आया, गोपाल ने उसे पकड़ रक्खा है। हमारे नेत्रो का रहस्य है कि उन्होने कृष्ण के रूप को चुराया है कोई नहीं जानता था परन्तु मालूम होता है कि किसी भेद जानने वाले ने यह भेद खोल दिया। मैंने जो उनके रूप को अपने चित्त के भीतर छिपा लिया था उसका पता श्रीकृष्ण ने पा लिया। अब पता पाके वहाँ अपना रूप न देखके उद्धव उसे वापस ले जाने के लिए शोर मचाते हुए यहा आए हैं। वे हमसे रूप रूपी मणि देकर निराकार रूपी मठा लेने को कह रहे हैं। आज वह हमसे निर्गुण के बदले गोविद को चाहते है। हा ! यह व्यथा हम कैसे सहन कर सकती हैं ? सूरदास कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि इस विरह की असह्य दशा में भी जो रूप हमारे शरीर के लिए किसी न किसी दशा में निर्बाह का अवलब रहा है उसे हम से छीनके हमारे हृदय को उद्धव भस्म कर डालना चाहते हैं।

इस पद में रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

३०५ योग के विषय में चिकनी चुपड़ी (ब्रह्म की प्राप्ति एवं मोक्ष प्राप्ति आदि आकर्षक फल प्राप्ति से युक्त) बाते सुनके गोपियाँ उद्धव पर कटाक्ष करती हुईं कहती हैं कि लोगों को चिकनी चुपड़ी बाते करने की आदत हुआ करती है। ये सब (योग की साधना आदि) कहने में ही बड़ी आसान हैं, पर करने पर पता लगता है कि ये कितनी कड़ी हैं। देखो न इसीलिए अब उद्धव चुप्पी साधे हैं। उनसे जबाब नहीं बन रहा। पहले अग्नि को चन्दन सी ठण्डी सुन-सुन के सती

होने वाली स्त्री बहुत उमगित होती है पर जब वह जल के भस्म हो जाती हैं तो कौन बताए कि आग गरम या ठण्डी लगी थी। हिन्दुओ के विश्वास के अनुसार सती स्त्रियो के लिए 'हुताशनश्चन्दन पक शीतलः' वाला प्रवाद सत्य है। सूर का तात्पर्य यह है कि इसी प्रसाद से आकर्षित हो पति के वियोग से हृदयमान पत्नी चिता मे प्रवेश के लिये उत्कण्ठित होती है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि ये सभी कहते हैं कि सच्चे सूर के लिए युद्ध एक खिलवाड़ है और तलवार फूलो की लता है। लेकिन जब शूर भी अपना सिर कटा लेता है तो इस विचार का सही-सही प्रतिपादन कौन कर सकता है?

भावार्थ यह है कि अर्थवादो को सत्य समझ के लोग कठोर से कठोर कार्यों के लिए उत्कठित हो जाते हैं। परन्तु जब वस्तुस्थिति आती है तब पश्चात्ताप करते हैं।

इस पद मे अन्योक्ति अलंकार है।

३०६ श्रीकृष्ण के वियोग मे गोपियाँ शोभा-विहीन अपने नेत्रो पर आक्षेप करती हुई अपनी विरह व्यथा प्रकट कर रही हैं। वे आपस मे कहती है कि सखी! आज व्रजराज श्रीकृष्ण के बिछुड़ जाने पर इन नेत्रो का विश्वास जाता रहा। ये यदि खजन हैं तो पक्षी होकर भी ये हरि के साथ उड़के क्यो न लग लिए। ये धनश्याममय क्यो न हो गए? इन दुष्ट कुटिलो ने व्यर्थ मे ही मछलियों के कालेपन की शोभा को धारण किया। उन मछलियो की करनी तो इन्होने कुछ न कर पाई। व्यर्थ मे ही घनश्याम के रूप को प्यार करने वाले कृष्ण रूप के लोभी कहलाए। यदि इन्होने मछलियो की सुन्दर श्यामलता ली थी तो इन्हे उनके समान ही प्रेमी बनके दिखाना चाहिए था। मछली जल के वियोग मे प्राण परित्याग कर देती है पर ये घनश्याम के वियोग मे भी जीवित हैं। कृत्रिम प्यार करने वालो को यही सजा मिलनी चाहिए। अब क्यो ये सोच मे मग्न रहके जल बरसाते रहते है। समय बीत जाने से अब नित्य नई व्यथा का अनुभव करते है। सूरदास कहते है कि गोपियाँ कहती हैं कि जब से पलको ने इन्हें धोखा दिया तब से ये सदा जड़ बन गए है।

इस पद में हीनाग रूपक अलङ्कार है।

३०७ गोपियाँ विरह विह्वल होके सामने उद्धव जैसे हृदयहीन को देखके

निराशा से कहती है कि हाय ! हमारे मन की बात हरि से कौन कहे ? अर्थात् कोई कहने वाला नहीं है। हमने तो यह बात कि हमारे सुख दुःख की पूछने वाला अब कोई नही है तभी से जान ली जब से कि उनके यहाँ भ्रमर महाशय अधिकारी हुए। दोनों का एकसा ही स्वभाव और एक सी ही धोखा देने की आदत है। उसके गुणो को सोच कर हमारे मन मे तो यही निश्चय भाता है कि हमारी कहने वाला कोई नही है। वहा (मथुरा में) नया कमल खिलता है फिर यहा ब्रज मे वह टेसू के फूल के पास क्यो आने लगा ? लेकिन ये तो भ्रमर है कहीं भी स्थिर होके नहीं रहते। आज कमल के लिए किंशुक को ही छोड़ा है पर कमल के पास रहके मन मे चपा की सोचते रहते हैं भले ही वह चपा उनके काम का न हो। पर इससे उन्हें क्या ? उन्हें तो नित नई कुसुमाली के लिए ललचाना ; क्योकि इनकी दशा सबसे अद्‌भुत है। ऐसे भ्रमरो की संगति में मथुरा रह के सूर के स्वामी श्रीकृष्ण ने हमारी याद भुलादी।

इस पद मे अन्योक्ति अलकार है।

३०८ कृष्ण के द्वारका प्रयाण का समाचार सुनके विरह व्यथित गोपियों से कोई गोपी कहती है कि सुना है अब हमारे प्रियतम श्याम दूर जाना चाहते है। हे सखी ! मथुरा रहते हूए तो मिलन की कुछ आशा भी थी पर अब हम रो-रो मरेंगी। ऐसा सुनके सब सखिया स्तब्ध हो के उससे पूछती है कि तुमसे यह किसने कहा ? कहा से सुनके आई हो ? किस ओर रथ की धूल उड़ते तुमने देखी है ? बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही अत्यन्त उत्कण्ठा से वे कह उठती है चलो माई सब मिलके माधव के साथ चले। नहीं तो सन्ताप से जलके मरना होगा। सखी उनके प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती हैं कि पश्चिम की ओर एक द्वारिका नगर है जो चारो ओर समुद्र से घिरा है। यह सुनके गोपियाँ कहती हैं कि हाय सूर के प्रभु श्याम ! तुम द्वारिका जा रहे हो परन्तु ये बालाएँ अब कैसे जियेगीं, क्योकि इनकी संजीवनी जड़ी आप तो अब सदा के लिए बिछुड़ रहे हो।

इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

३०९ कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर गोपियाँ निराश होके कहती हैं कि— उतनी दूर से भला कोई क्यों आने लगा अर्थात् द्वारिका चले जाने पर अब

कृष्ण के ब्रज में आने की कोई आशा नहीं है। हे कृष्ण ! अपने वियोग का सन्देश भेजने के लिए भी अब हमे कहाँ और कौन मिलेगा ? अर्थात् इतनी दूर तो जाने के लिए कोई भी तैयार नहीं होगा। सुना है कि समुद्र के किनारे किसी का कोई भला ही देश है, जिसके बारे मे हमने न कभी सुना न देखा। उसकी दूरी के बारे में केवल मन की कल्पना ही कर सकते हैं। वहीं नन्द-नन्दन ने एक नगर बसाया है जिसको द्वारिका कहते हैं। वहाँ सब घर सोने के बने हुए हैं राजा से लेके रक तक अर्थात छोटे-बड़े कोई भी वहाँ घासफूस के छप्पर नहीं छाते। यह भी कहते हैं कि वहाँ के निवासियो को ब्रज मे रहना अच्छा नही लगता। (लगेगा भी क्यो ? वहा तो समृद्धि ही समृद्धि है और यहा दीनता)। सूरदास कहते हैं कि विरहिणी गोपिया अनेक तरह विलाप करती है और अनेक उपाय भी करती हैं पर उनका चित्त नहीं लगता। वे व्यथित होके कहती हैं कि कहा जायँ क्या करें ? कोई हमें हरि के पास पहुँचादे तो बड़ा उपकार हो।

३१० गोपिया कृष्ण के वियोग मे पश्चात्ताप करती हुईं कहती हैं कि हमें तो नन्दनन्दन पर गर्व है। इन्द्र के क्रोध से जब ब्रज बहा जाता था तो उन्होने ही गिरिवर गोवर्धन धारण करके उसे बचाया था। बलराम और कृष्ण के बलबूते पर ही हम किसी की परवाह नहीं करती थीं और निडर होके अपनी गैयाँ चराती थी। हमारे सब बिगड़े कार्यों का सँभालने वाला बलवीर श्री कृष्ण हमारे सरक्षक थे। हमे उन पर पूरा विश्वास[1] था परन्तु केशी और तृणावर्त के बध के पश्चात् उनकी कोई विश्वास बँधाने वाली बात नहीं हुई। प्रतीत होता है कि शायद अब उन्हें हम पर और हमारे ब्रज पर वह प्रेम नहीं रहा जो इसे वे मिटने से बचा सके। इसीलिए तो उनकी तबसे कोई खबर भी नही मिली। हा उनके जाने पर यह सुना था कि युद्ध मे कस परास्त हुआ और सूर के स्वामी श्याम विजयी हुए थे।

१ अन्तःकथा—एक बार श्रीकृष्ण ने इन्द्र का अभिमान चूर्ण करने के लिए उनके लोगों से इन्द्र की पूजा करने को मना किया। इन्द्र ने क्रुद्ध होके प्रलयकाल के सम्वर्त्तक पयोदों से ब्रज पर मूसलाधार वर्षा की। तब श्रीकृष्ण ने गोबर्धन धारण करके ब्रज को बचाया। उनके अलौकिक पराक्रम और

लोकोत्तर चरित्र से प्रभावित होकर इन्द्र ने उनसे क्षमा मागी।

२ केशी नामक एक राक्षस कस द्वारा कृष्ण को मारने के लिये भेजा गया था। वह एक महान घोड़े के रूप में नन्द ग्राम मे आया था। वह बड़ा बलवान था और उसके पैर जमीन पर और मुख आसमान में था। उसने गोकुल में एक अद्भुत उपद्रव खड़ा कर दिया था। उसने अपने पैरो से कृष्ण को कुचल कर मार डालना चाहा था। परन्तु कृष्ण ने बड़े पराक्रम से उसे मार गिराया था। (देखिए भागवत १० मस्कन्ध अध्याय ३७)।

३ तृणावर्त्त भी एक दूसरा राक्षस कस द्वारा बालकृष्ण को मारने के लिये नन्द-ग्राम में भेजा गया था। यशोदा कृष्ण को गोदी मे लिये थी कि यकायक यह राक्षस बात्याभ्रमि (बबडर, हवा का भूत) के रूप आया और सम्पूर्ण ब्रज को धूल से भर दिया। अपना पराया कुछ नहीं सूझता था तृणावर्त्त बालकृष्ण को यशोदा की गोदी से आकाश मे उड़ा ले गया। ब्रज के लोग कृष्ण को यो अदृश्य हुआ देखके बड़े क्षुब्ध हुए। सब लोग रोने लगे। थोड़ी देर बाद बाल कृष्ण ने आकाश मे उड़ते हुए दैत्य को मार डाला। थोड़ी देर बाद ब्रजवासियो ने एक चट्टान पर मरे हुए दैत्य को गिरते देखा। कृष्ण भी उसके साथ वहीं उसकी छाती पर बैठे आ पड़े। दैत्य के मरने से उपद्रव शान्त होगया था। ब्रजवासियो ने कृष्ण को पाकर बड़ा आनन्द मनाया।

(देखिये—भागवत १०मस्कन्ध अध्याय ७)

३११ गोपिया श्रीकृष्ण के वियोग मे वर्षा के आगमन को देखके कृष्ण की याद करके व्यथित होके आपस मे कहती हैं कि हायरी मा ! ऐसे ही पावस ऋतु के आगमन में श्रीकृष्ण हमारी याद करके पहले की तरह आ जावेंगे। देखो वरषा आई। रग बिरगे अनेक बादल सुन्दर वेष धारण किए हुए उठ रहे हैं। इस समय आकाश की शोभा सब ऋतुओं की अपेक्षा अधिक होती है। बगुले उड़ रहे हैं, तोतो के झुण्ड के झुण्ड बहुत सुशोभित है मयूर और चातक शोर कर रहे हैं। गर्जते हुए बादलों मे विद्युन्माला की चमक देख के अनेक प्रकार की मनोगत अभिलाषाए बढ़ रही हैं। पृथ्वी के शरीर पर प्रियतम के मिलन के कारण तृण रूपी रोमाच हर्षित हो रही है। हस (सभवतः यहा कल हंस बत्तक से तात्पर्य है क्योकि वैसे हंस तो वर्षागम

मे अदृश्य हो जाते है ।) कोकिल, तोता मैना और भ्रमर समूह नाना प्रकार से गुंजन कर रहे है। आनन्द से उमड़ कर बादल मगलप्रद जल भी वर्षा कर रहे है। पक्षी विषाद रहित दीख पड़ते है। अनेक प्रकार के तरु वनस्पति कुटज, कुंद, कदब, कचनार, कनियारी का पेड़, कमल केतकी और कनेर आदि की प्रथा बसंत काल के समान सुन्दर हो रही है। घने घने पेड़ो पर कलिया सज रही हैं, सुन्दर फूलो का सुगन्ध फैल रहा है। इन सब हृदयहारिणी शोभाओ को देख के मन मे माधव से मिलने की आशा घर कर रही है। मनुष्य से लेकर पशुपक्षियो तक जिनके अनन्त नाम हैं उन सब के प्रियतम जो विदेश प्रवासी हैं इस ऋतु मे स्वदेश का सुख याद करके अपने घर की ओर प्रयाण करते हैं। सूर कहते हैं कि ब्रजवासियो के चित्त मे और कोई उपाय नहीं दीखता। अन्य कोई विचार उनके दिल मे कभी नहीं उठता। अगर उठता है तो केवल कृष्ण की समीपता का। उसे वे कभी नहीं भूल पाते। वे कृपालु कृष्ण की सुन्दर चाल और मृदुल हास की सदा याद करते रहते हैं। उनके सुन्दर कपोल और चचल कुंडलो का वृत्ताकार प्रकाश उनके चित्तो मे चुभा रहता है। वे मनाती हैं कि कृष्ण हाथ मे वेणु लेकर गाते हुए बहुत से ग्वाल वालो को बटोर के सग लिए हुए कब आवेगे। वह सौभाग्यशाली दिन कब आवेगा जबकि वे हमे अपनी इन्ही आखो से उनकी बाल लीलाएँ फिर से देखेगी ? उनको बारबार उनकी याद रहती है जिससे वे बड़ी व्याकुल होती है। वर्षाकालीन हवा के झोके से दीप-ज्योति के समान वे चचल और ज्योतिहीन हो जाती है ? उनके विलाप को सुनके परमभक्त सूरदास अपने प्राणों मे श्री कृष्ण की भक्तवत्सलता पर अटूट विश्वास के कारण कह रहे है कि वे भक्त वत्सल दर्शन देके इन दुखियारी गोपियो के दुःख अवश्य ही दूर करेंगे। वे भक्त हृदय में इस उत्कट प्रेम की पीर को कभी नहीं सहन कर सकते। भक्तो की दीनता पर द्रवित होने की उनकी आदत है।

इस पद मे रूपक और उपमा अलकार है।

३१२ गोपियाँ विरह व्यथा में पागल हो गईं, परन्तु कृष्ण न आये। अन्त में उन्होने विचार बाधा कि चलो सब मिलकर उन्हे लिवा लावे। उनकी दीन बन्धुता पर उन्हें अब भी विश्वास है। इसलिये वे कहती हैं कि न हो तो हम

सब मिलके गोपाल को लिवा लावे। उनके चरण पकड़ के निहोरे करके और प्रार्थना पूर्वक हलधर (बलराम) को भी विशाल बाँह पकड़ के लिवा लावे। नन्द फिर एक बार अपने बच्चो को लेके देख ले। फिर से कृष्ण यहा गोप और गोपियो के साथ अपनी गौएँ गिनके तथा मधुर वेणुवादन सीखकर अपना काल बितावें। यद्यपि आज कल वे महाराज हैं, उनकी सुख सम्पत्ति अपार है, मोती और हीरो की कोई गिनती नहीं है तथापि सूर कहते है कि गोपियाँ कहती हैं कि हमे विश्वास है कि वे हमारा निमन्त्रण स्वीकार करेगे क्योकि उनका मन अब भी घु घुची (गु जा) की माला की ओर आकर्षित है। यह प्रमाण है कि राजा होते हुए उन्हें गरीबी और गरीब ही प्यारे हैं।

२१३ विरहिणी गोपिया विरहोन्माद मे बादल द्वारा सन्देश भेजने के लिये उत्कठित होके कहती हैं कि हे मैया बादल ! हम तुम्हारी बलिहारी जाती है। तुम्हारे ही जैसे रूप के हमारे प्रियतम भी हैं जो आजकल समुद्र के जल के किनारे बसी हुई द्वारका रह रहे हैं। तुम वहाँ जाके विरहिणी के दुःख के नाशक बनो। सूर कहते है कि गोपिया कहती है कि करुणानिधि नाम से प्रख्यात श्यामसुन्दर का सग ऐसा ही है। अर्थात् उनका प्रेम ऐसा है कि बिछुड़ जाने पर अत्यन्त दुःखद होता है क्यो न हो 'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुण दुःख देहीं। (तुलसी)

२१४ गोपियां विरहावस्था मे कृष्ण के सौन्दर्य का स्मरण करके कहती हैं कि उनके अगप्रत्यगो के लिए कवियों ने जो उपमान प्रस्तुत किए हैं वे न्याय सगत ही हैं। वे कहती हैं कि श्रीकृष्ण के अगो की उपमाए कवियो ने ठीक ही कही है। करोड़ों अनगो की शोभा वाले वे मथुरा चले गए। वे अब वहा से क्यो लौटने लगे ? भाव यह है कि यदि कोई कुरूप होता तो उसके चाहने वाला कोई न होता और वह वेचारा 'हमको और न तुमको ठौर' सोच के फिर यहीं आ जाता। पर भगवान ने हमारे प्रियतम को तो रूप निधि दी है वे तो बहुश्रेयसी हैं वे क्यों लौटने लगे ? उनके सिर पर विराजमान मयूर मुकुट है जो दूर से ही इन्द्र धनुष की शोभा प्रदर्शित करता है। यह उपमा भी ठीक ही है क्योंकि करोड़ों उपाय करने पर भी उस मुकुट को कोई छू नहीं सकता। उनके केशपाशो को भ्रमर कहना नितान्त ही उचित है क्योकि वे भ्रमरो के

समान चक्कर काट २ के अनेक बेलो के रस को चखते फिरते है और कमल की कलियो मे रहते हुए भी अपने वश रूपी बास की ओर ही लौ लगाए रहते है। केशव के कुण्डलो के लिए मकर का उपमान रखना भी अत्यन्त उचित क्योकि मगर (मछली) के समान वे भी सदा (झिलमिलाने के कारण) चचल रहते है। उनके नेत्रो को कमल कहना ठीक ही हैं क्योकि कमल रात्रि में सकुचित होते है और उनके नेत्र भी हमारे बुरे दिन आने पर सकुचित होरहे हैं। यहा रहके प्रेम जताने और अलग हो जाने पर सुध भी न लेना श्रीकृष्ण का तोताचश्म होना ही प्रगट करता है। सम्भवतः उनके नेत्रो का रात्रि मे सकोच दिखाने से कवि का यही तात्पर्य है। यो रात्रि मे सोने के कारण तो सभी के नेत्र सकुचित होते ही हैं। पर इस सकोच मे कुछ विशिष्टता नहीं है। श्रीकृष्ण की नासिका को कविकुल ने शुक कहकर गाया है। यह भी यथार्थ ही है क्योकि जिस प्रकार तोता पिजड़े मे रहके अपनी मीठी बोली से लोगो को मोहित करता है, इसी तरह से उनकी नासिका भी शरीर पजर मे निवास करती हुई वेणु को बुलाकर लोगो को मोहित करती है। उनकी भ्रू-लता प्रेक्षको के प्राण हरण करने के कारण यथार्थ ही है। स्वभावतः कठिन होने के कारण उनके दातो को हीरा कहना भी युक्ति सगत ही है। उनके अधर को बिम्बाफल की उपमा देना भी न्यायोचित है क्योकि दोनो के सेवन से बुद्धि का नाश होता है। ये सब उन कृष्ण के ही आश्रय मे रहते है। उनके उद्दण्ठ भुजदण्ड शत्रुओ के नाशक है। फिर भला वे हमारे कन्धो पर कैसे और कब तक ठहर सकते है ? उस पर कोढ़ मे खाज यह कि उन भुजाओ को, सात छिद्रो से युक्त (सब अवगुणों से भरी-पूरी) मुरली दूसरों के मन को (हरण करने वाले) वशीकरण मन्त्र पढ़ाती रहती है। एक तो करेला और नीम चढ़ा। श्रीकृष्ण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही काफी मनोमोहक है उस पर फिर मुरली का सयोग बताओ फिर कोई कैसे अपने को काबू में रख सकेगा ?

इस पद मे रूपक उपमा श्लेष तथा उपमालकार है।

३१५ विरह व्यथा से पीड़ित गोपिया तथा राधा श्रीकृष्ण से मिलने की उत्कठा प्रकट करती हुई कह रही हैं कि हे माधव ! तुम कम से कम एक बार मिल जाओ। कौन जानता है कि ये प्राण पखेरू कब उड़ जायगे ? अगर न

मिले तो हमारे मन की (उत्कठा) मन में ही रह जायगी और नहीं तो तुम नद बाबा के यहाँ मेहमान बनके ही आजाओ। हम तुम्हें आधे पल के लिये ही देख लें। हाय! सब बाते बन जाने पर भी भाग्य ने सब पलट दिया कि हमारे लिये तुम्हारे दर्शनों की बाधा खड़ी हो गई अर्थात् तुम्हारे दर्शन नहीं होते। श्रीकृष्ण के दर्शनो के लिये उत्कठित गोपियो के प्रेम पर बलि जाने वाले कृष्ण भक्त सूर उनकी इस भावना पर मुग्ध होके कह रहे हैं कि जो सुख गोपियो ने प्राप्त किया उसके लिये प्रसिद्ध भगवद्भक्त शिव और सनकादि भी सदा तरसते रहते हैं। राधा आज कृष्ण के दर्शनो के लिये विलाप कर रही है। सचमुच श्रीकृष्ण की रूप माधुरी अथाह है जिससे बिछुड़ के राधा जैसी विश्वविमोहिनी की भी यह दशा है।

३१६ गोपिया अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कह रही हैं— हमारे नेत्र रात दिन बरसते रहते रहते हैं। जब से श्रीकृष्ण गोकुल से गए हैं हमारे यहा सदा वर्षा ऋतु लगी रहती है। अविरल अश्रुओ की धारा प्रवाहित होने के कारण हमारी आखो मे कभी अजन नही लग पाता। आसुओ के साथ बह वह के अजन ने हमारे कपोलो को तथा वक्षःस्थल को काला कर दिया है। हमारे वक्षःस्थल पर आसुओ के प्रवाह सदा प्रवाहित होते रहते हैं जिस के कारण हमारी चोली कभी नही सूखती। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि आँसुओ की निरन्तर वर्षा होने के कारण गोकुल में पानी की बाढ़ आ रही है। हे स्वामिन्! अब आके इसका उद्धार कीजिए सचमुच घनश्याम के विरह में गोकुल निवासी अत्यन्त व्याकुल हैं।

इस पद में रूपक एव अतिशयोक्ति अलंकार है।

३१७ गोपियाँ कृष्ण के विरह में अपनी दशा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि एक सुन्दर कमल की कली के आनन्द के लोभी अर्थात् श्री कृष्ण के मुख कमल के दर्शनो के लिए उत्कण्ठित ये दो भ्रमर (हमारे नेत्रो की दो पुतलियाँ) सदा चिन्तित रहते हैं। स्वर्णलता और नवीन पंखड़ी के पास रहने वाले ये भ्रमर उचट कर चले गए। स्वर्णलता से गोपियो की गौर शरीर यष्टियाँ और और नवीन पंखड़ी से उनके कमल नेत्रो से तात्पर्य है। कभी-कभी ये भ्रमर अपने पखो (पलको) को समेट के आँसुओ के प्रवाह को बरसाते हैं। कभी-

कभी काँपते हुए नितान्त चकित होके अपनी लोलुपता में खो जाते हैं। यद्यपि ये चन्द्रमण्डल (मुख) के बीच मे निवास करते हैं और इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अमृत में सराबोर कर रक्खे हैं तथापि इतने यत्नों के करने पर भी इनकी रक्षा असम्भव हो रही है। ये व्यथा से सदा तड़पते ही रहते हैं और मुँह न होते हुए भी ये अपनी कहानी कहते रहते हैं। इनकी इस प्रकार व्यथा पूर्ण दशा को देखके शुक (नासिका) कमल (मुख) कोकिला (वाणी) और उरगकुल अर्थात् नागो का समूह (केशपाश) सभी चिन्तित से (खोये हुए से) रहते हैं। आँखों के खिन्न होने से हमारी प्रत्येक अङ्ग माधुरी फीकी हो गई है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ विरह में श्याम को पुकारती हुई कहती हैं कि आप स्वय आकरके क्यो न देख जाओ भला आपका यहाँ आके इनकी दशा देखने से क्या बिगड़ जायगा ?

इस पद में रूपकातिशयोक्ति एव विभावना अलंकार है।

३१८ गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में कामदेव के प्रहारों को वर्णन करती हुई तथा काम को जो उन्हें अपना शत्रु शिव समझकर प्रहार करता है सावधान करती हुईं कहती हैं कि वे उसकी शत्रु शिव नहीं हैं इसलिए उसे उन पर प्रहार नहीं करना चाहिए। गोपियाँ काम से कहती हैं कि स्त्रियाँ सबके लिए अवध्य हैं तू उनका वध मतकर। हे कामदेव ! हमारे शिर पर मोतियो की माला है यह गंगा की धारा नहीं है। तुम इसे ग़लती से गगा की धार समझके शिव का धोखा खाके हम पर बार कर रहे हो। विरहावस्था में भला मोतियो की माला का क्या काम ? इस शका का समाधान करती हुई वे कहती हैं कि सुन्दरियों ने आज घनश्याम श्रीकृष्ण के समागम की आशा से सोलह-शृङ्गार कर रक्खे हैं। हमारे माथे पर तिलक है तुम इसे चन्द्रमा समझ के हमें चन्द्रशेखर जानके मार रहे हो। हमारे सिर पर वेणी की गाँठ (जूड़ा) है यह सहस्र फण वाला शेष नहीं है जिसकी भ्रान्ति से तुम हमें शिव अपना शत्रु समझ के हमारे ऊपर वार कर रहे हो। हमारा यह शरीर कस्तूरी तथा चन्दन से भूषित है तुम इसे भभूत और चन्द्र की सफेदी समझे बैठे हो। अरे मूर्ख ! यह भभूत और चन्द्र की सफेदी नहीं है। वक्षःस्थल पर धारण की हुई यह काली चोली है यह शिव की हाथी की खाल नहीं है। भला सोच तो कि यदि हम शिव होतीं

तो हमारे नदीगण न होता ? पर तुम्हीं विचार करदेखो कि यहा नंदीगण कहाँ है ? यह सब कहने पर भी सूर कहते हैं कि काम उन्हें नहीं छोड़ता । अतएव वे व्यथा से पीड़ित होके श्याम को पुकारती हैं और कहती हैं कि हे स्वामिन्! तुम्हारी अनुपस्थिति मे काम हमसे जबरदस्ती कर रहा है । हमारा ख्याल था कि वह हमें अपना शत्रु महादेव जानकर हमारे ऊपर चोट करता है पर यह बात नहीं है । हम उसकी भ्रान्ति दूर करके उसे सचेत भी कर देती हैं फिर भी वह हमें नहीं छोड़ता ।

इस पद में अपन्हुति अलकार है ।

इस पद का मूल भाव निम्नलिखित संस्कृत श्लोक से लिया गया है—

जटा नेयं वेणी कृतकचकलापोनगरलं,
गले कस्तूरीयं शिरसिशशिलेखा न कुसुमम् ।
इयभूतिर्नाङ्गे प्रिय विरहजन्मा धवलिमा,
पुराराति भ्रान्त्या कुसुमशर ! किं मा व्यथयसि ।।

३१६ विरहावस्थामें उद्दीपक कोकिल की वाणी सुनके अत्यंत व्यथित हो गोपियाँ उससे प्रार्थना करती हैं कि वह श्रीकृष्ण के निवास स्थान के पास जाके बोले तो सम्भवतः उनमें भी उत्कण्ठा जाग्रत हो और वे यहाँ आने का उपक्रम करे । वे कहती हैं कि हे कोकिल ! तुम अपनी स्वर माधुरी कृष्ण को जाके सुनाओ और उन्हें मथुरा से उचाटकर इस ब्रज में ले आओ । हम तुम्हारी शरण में आके याचक बनी हैं । ऐसी अवस्था में तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है कि तुम सर्वात्मना हमारी रक्षा करो । क्योंकि चतुर लोग शरणागत याचक को अपना तन, मन, धन अर्थात् सर्वस्व दे डालते हैं और उसकी रक्षा करते हैं । तुम्हें तो आज अपनी बोली के बदले में दुष्प्राप्य यश मिल रहा है उसे तुम क्यों नहीं खरीद लेते ? हीरों की कीमत की चीज आज कौड़ियो में मिल रही है फिर ऐसा अवसर क्यो खो रहे हो ? जहाँ तक बन सके पराया उपकार करना ही संसार में चतुरता है । सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कोकिल से कहती हैं कि तुम जाके श्री कृष्ण को सूचित कर दो कि आज वन-वन में बसन्त विराजमान है ।

३२० विरह व्यथित गोपियाँ श्री कृष्ण की याद करके कहती हैं कि हायरी

माँ ! नन्दनन्दन कहा रह रहे हैं ? हमारे चित्त से वह उनकी मोहनी मूर्त्ति क्षण भर को नहीं भूलती। हा ! वह समस्त ससार की शोभा के केन्द्र हमें छोड़के चले गए। अब कृष्ण के बिना बछड़ों को कौन चराए और दूध दुहाके कौन लाए ? हमे याद आती है कि वे किस प्रकार अपने ग्वाल मित्रो को साथ लेके माखन खाते डोलते थे। कोई गोपी किसी दूसरी से कहती है कि अरी सखी ! मै ज्यों-ज्यो उनकी याद करती हूँ त्यों-त्यो मेरा मन अधिक मोहित होता है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण के बिछुड़ जाने पर इन क्षोभो से पीड़ित होके भला अब हम कैसे जी सकेगीं ?

३२१ श्रीकृष्ण का वियोग अनेक संकटों का कारण है इस आशय को प्रकट करती हुई एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी ! श्रीकृष्ण की उपस्थिति में हमे कोई दुःख नहीं था पर आज अनेक दुःख हैं। इसका कारण यह है कि वे परम चतुर अत्यन्त सुख और सुषमा के केन्द्र वे श्री कृष्ण अपने विश्वविमोहन रूप की छड़ी लेके हमारे शरीर के सुन्दर द्वारपाल थे। अब उनके वियोग में इस सूने हृदय-भवन मे काम की आमदरफ्त (आवाजाई) शुरू हो गई है या काम का प्रवेश हो गया। मन मे दुःख आ धमकता है वह किसी की रोक नहीं मानता। माने भी कैसे घर सूना है तो फिर उसे किसका डर हो सकता है। हमारे प्राण भी अब निरकुश हो गए। वे उच्छ्वासों के साथ निशक होके भीतर से निकल जाते हैं। रात में पलक-कपाटो से खुले रहनेके कारण चन्द्रमा सैकड़ो बाण मारता है। श्रीकृष्ण के बिना मेरी यह दशा हो गई है। इससे छुटकारा पाने की कोई सूरत नहीं है। अतएव सूर कहते हैं कि व्यथित गोपिया कृष्ण को पुकारती हुई कहती है कि हे चतुर रसिक नन्दकुमार ! तुम हमारे स्वामी हो। हमारी ऐसी सकटापन्न अवस्था है आकर शीघ्र ही दर्शन दीजिए।

इस पद में रूपक तथा अतिशयोक्ति अलंकार है।

३२२ विरहीजनो के लिए वर्षा (श्रावण और भाद्र मास) अत्यन्त दाहक प्रसिद्ध हैं। अतएव श्रावण के दो होने की खबर पाके गोपिया आगामी संकट की आशका से व्यथित होके आपस मे कहती हैं कि सुना है कि अबकी साल दो श्रावण हैं। हमे वही बात बार-बार दुखित कर रही है कि श्रीकृष्ण ने

आने को कहा था पर अभी तक आए नहीं। क्या करे ? तब तो हम बिना सोचे विचारे उनसे प्रेम कर बैठीं अब उसी का यह परिणाम भुगत रही हैं। सखी! इस दुःख के मारे तो हम कहीं ऐसी जगह निकल जातीं जहा कोई हमारा नाम भी न सुन पाता तो अच्छा होता। उन्होंने एक ही बार जाके हमें सदा के लिए भुला दिया और मथुरा से प्रेम बढाने लगे। सूरदास कहते है कि गोपिया कहती हैं कि भला अब उन्हें हमारी याद क्यों आने लगी ? उन्हें तो अब हमसे कहीं अधिक रूपवती स्त्रियाँ प्रेम करने के लिए मिल गई हैं।

३२३ श्री कृष्ण की रुखाई की शिकायत करती हुई गोपिया उद्धव से कहती हैं कि अब पछताने से क्या होता है ? हमने खेलते खाते तथा हँसते हुए उनके साथ रहकर भी हमने उन श्याम के गुण न जान पाए। हमें नहीं मालूम कि वसुदेव कौन हैं और वे कृष्ण को धरोहर रूप में यहा कब लाए थे ? क्या जब वे उन्हें लाए थे उस वक्त का उनका कोई भी गवाह है ? ऐसी हालत में हम तो ये बाते मानने को कभी तैयार नहीं हैं। उद्धव ! तुम तो काफी होशियार हो तुम्हीं बताओ कि यह कहा तक ठीक है कि बिना गवाही साखी के हम यह मानलें कि वे यहा धरोहर के रूप में थे। अगर तुमने उन्हें धरोहर के रूप मे आते देखा हो तो बताओ। सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती है कि धरोहर आदि बाते तो केवल (कपोल कल्पित) कहानिया है। वास्तव मे तो बात यह है कि उन्होने (श्याम ने) हमसे कपट प्रेम किया। जिस प्रकार कोयल बचपन में कौए से प्रेम करती है परन्तु पलके पुष्ट होकर बसन्त आने पर अपने कुल को पहचानकर उसमें मिल जाती है। इसी प्रकार कृष्ण भी बचपन में यहा रहकर हमसे कपट स्नेह दर्शाते रहे और बड़े होके अपने कुल में जा पहुंचे।

३२४ विरह मे क्षीण हुई राधा की चर्चा करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखी ! माधव के वियोग में राधा के शरीर की दशा बिलकुल उलटी हो गई है। उसके शरीर की चन्द्र कान्ति अब नहीं दिखाई देती। अत्यंत कृशता के कारण कालिमा आ जाने के कारण वह केवल कलंक मयी ही दिखाई देती है। भाव यह है कि राधा की शोभा पूर्ण चन्द्र के समान थी अब कृशता के कारण चन्द्रमा का कान्ति का अंश तो मिट गया केवल उसका कलक शेष रह गया है जो उसकी कालिमा से अनुमेय है। विरह

कृशता के कारण राधा की आँखे भी ज्योति विहीन हो गई है। अतएव ऐसा मालूम पड़ता है कि उसके नेत्रों से शरत्कालीन कमल की शोभा को किसी ने विलकुल निचोड़ लिया है। जिस प्रकार से अग्नि के सन्ताप से सोना घरिया से पिघलकर बह जाता है, उसी प्रकार विरहाग्नि के ताप से राधा के शरीर का स्वर्ण पिघल के बह गया। स्वस्थ दशा में केले के पत्ते के ऊर्ध्वभाग के समान सुन्दर पृष्ठ भाग अब कृशता के कारण उलटी होके उसके अधोभाग जैसी हो गई है। कृशता में रीढ़ की हड्डी के निकल आने के कारण यह कल्पना है। सूर कहते है कि गोपियाँ कहती हैं कि राधा के शरीर की सम्पत्ति तो सब भगवान् कृष्ण ने हरली उसके बदले में विपत्ति दे दी है।

इस पद में उत्प्रेक्षा उपमा तथा परिवृत्ति अलङ्कार है।

३२५ विरहिणी ब्रजागनाएँ चातक की बोली सुनकर उससे कृष्ण को मिलाने की सानुरोध प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे पपीहे! तुम श्याम को हमारा स्मरण कराओ। जहाँ पर श्रीकृष्ण लेटे हों वहाँ अपनी ऊँची पुकार सुनाओ ताकि उन्हें मालूम हो जाय कि गर्मी बीत गई और वर्षा ऋतु आ गई जिसके कारण सबके चित्त में उत्कठा जाग्रत हो गई है। श्रीकृष्ण के बिना ब्रजवासी लोगों की ऐसी दशा है जैसी बिना कर्णधार के नाव की दशा हो जाती है। चातक! हमे हमे विश्वास है कि वे तुम्हारा कहना जरूर मानेंगे। तुम उन्हे निहोरे करके लिवा लाओ। सूर के स्वामी कृष्ण का अब की बार और इन नेत्रो को दर्शन करा दो।

इस पद में दृष्टान्त अलङ्कार है। विरह ही उन्माद अवस्था का सम्यग्दिग दर्शन है।

३२६ श्रीकृष्ण के वर्त्तमान वैभव को देखकर विरह व्यथित गोपियाँ परस्पर उनपर व्यग्य करती हुई कहती हैं कि अरी सखी! कृष्ण अब यहाँ क्यों आने लगे? वे राजा हैं और तुम ठहरे ग्वाल! तुम उन्हें बुलाने की हिम्मत कैसे कर रहे हो हमें तो यही सोच है। (भाव यह कि 'सम ही सो कीजिए व्याह वैर और प्रीति' तथा 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्' आदि उक्तियो के अनुसार बराबर वालों में प्रेम तथा आवा जाई का व्यवहार ठीक होता है। फिर भला विषम

वर्ग मे यह व्यवहार कैसे चल सकता है)। गोपी कहती है कि तुम लोग पहले के ही धोखे मे हो तुम्हे नहीं मालूम कि अब उनके सिर पर छत्र रक्खा हुआ है तथा स्वर्ण और मणियो के मुकुट सजे हुए हैं अब उन्हें अपना पुराना मयूर मुकुट अच्छा नहीं लगता। तुम्हें नहीं मालूम कि अब वे पुरानी उपाधि ब्रज-राज सुनके पीठ फेर लेते हैं अब तो वे अपने यदुकुल सम्बन्धी प्रशस्तियो को कहलवाते हैं। यदि तुम लोग (ब्रजवासी लोग) वहाँ जाना चाहो तो भी अनेक बाधाएँ हैं। उनके महलके हरएक द्वार पर द्वारपाल रहते हैं और उनके यहाँ अनेक सहस्र दासियाँ है। ऐसा वैभव वे आज कल भोग रहे हैं। अतएव सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि ऐसी सपन्नदशा में रहते हुए वे बहुत सुकुमार हो गए हैं। वे यहाँ गोकुल में गैयों के दुहने के दुःख को कहाँ तक सहन कर पावेंगे।

३२७ विरह से पीड़ित होके और उद्धव के सन्देश से तिलमिला के गोपियाँ प्रतिसंदेश कह रही है कि कृष्ण ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि बालपन का स्नेह बड़ा सुखदायी होता है। हे सुजान ! तुम यह जानकर (शैशव के मधुर स्नेह को जान के) दूर रह कर छोड़ो मत। भ्रमर, साँप तथा काक और कोकिल की प्रेम पद्धति पर से अपनी आस्था दूर करो। उद्धव तथा अक्रूर के कृत्य बड़े ही क्रूर है जिनके कारण घर बन सब ऊजड़ होगए। तुम इन्हें बढ़ावा देके हमारा सत्यानाश न करो। हम दो प्रार्थनाएँ लिखके कर रही हैं :—हे कृपालु ! आप इन प्रार्थनाओ पर सावधानी से ध्यान दीजिये। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हे प्रभु ! किसी प्रकार आके दर्शन दीजिए अन्यथा ये हमारे तन मन निर्जीव हो रहे हैं।

३२८ गोपिया विरह-कृशिता राधा की क्षीण कान्ति को देख के कह रही हैं कि इस राहु (काम) ने धड़ (अङ्ग) न होते हुए उस मुख चन्द्र को ग्रस लिया। न जाने इस राहु (काम) ने अपने शत्रु शिव (मुख) को कहाँ से ढूंढ़ निकाला। सम्भवतः यह उसी (मुख) के मध्य नेत्रो में अजन के रूप में पहले से ही रहता रहा। आज विरह रूपी सागर से बल पाके ऐसी जोर से प्रकट हुआ कि कुछ कहते नहीं बनता। यह आज असह्य वेदना देके अपने दाँतो से उस मुख को ऐसे काटता है कि नेत्रो से अश्रु प्रवाहित होते है जिन्हे छूते

नहीं बनता। आँसुओं के रूप में मानों मुख चन्द्र का अमृत भीतर से निकल निकल २ के वक्षःस्थल पर प्रवाहित हो रहा है और इस तरह अमृत के निकल जाने से क्षीण हुआ मुख चन्द्र मक्खन रहित मठ्ठे के समान सार हीन हो गया है। सूरदास कहते हैं कि ऐसी ग्रहणावस्था में हरि-दर्शन का दान किए बिना इसका सुखमय प्रकाश नष्ट ही हो गया है अर्थात् हरिदर्शन का दान किया जाय तो ग्रहण से छुटकारा हो और इस मुख चद्र को सुखदायी प्रकाश पुनः मिल जावे, अन्यथा यह सुखमय प्रकाश अस्त ही समझो।

इस पद में रूपक, रूपकातिशयोक्ति उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलङ्कार है।

३२९ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण द्वारा अपना मन चुरा लेने की शिकायत कर रही है। वे कहती है कि चोरी करना गोपाल की बचपन की आदत हैं। न मालूम ये चोरी के दाब पेंच किससे सीखे हैं? जब ये चुराकर मक्खन और दूध खा जाते थे तब हम लोग इनकी चोरी की इतनी ही यह समझ के सन्तोष करके उसे सहन कर लेती थी परन्तु हे सखी! अब जब ये मन रूपी मणि चुराने लग गये तो हम इतनी बड़ी क्षति कैसे बरदाश्त करे? हे मधुप! (उद्धव) श्याम से हमारा सदेश राजनीति को समझाकर कह देना। कि तुम यदुराज होकर अब भी अपनी पुरानी आदत नहीं छोड़ते। यह उचित नहीं। आज तुम ब्रजवासियो के बुद्धि विवेकादि सर्वस्व चुराके उन्हें चकमा देके मुसकरा रहे हो। हे मधुप! अधिक क्या? हम प्रभु के गुण अवगुणो की शिकायत किससे जाके करे? कहा भी है 'राजा ह्वै चोरी करे न्याय कौन पै जाय'।

इस पद मे रूपक अलङ्कार है।

३३० विरहावस्था में दुःखदायी विविध उपकरणो के होते हुए भी राधा का का जीवन बना रहा। वे मरी नहीं। इसका कारण समझ में नहीं आता। इसी आशय को व्यक्त करती हुई वह आलंकारिक भाषा में उद्धव से कह रही हैं कि यद्यपि मैंने बड़े उपाय किये कि मेरा मरण हो जाय तथापि हे मधुप! मुझे हरि की प्रियतमा समझके किसी ने मेरे प्राण नहीं लिए। उन्हीं उपायों की चर्चा करती हुई वह कहती हैं कि मैने अपने हाथसे सुगन्धयुक्त फूलो को अपनी शय्या पर रक्खा, तथा फिर अपनी सखी को सम्बोधन करके कहती है :—हे सजनी! शरत्कालीन चन्द्रमा के सम्मुख हुई तथापि मेरे अङ्ग नहीं जले, सुर-

क्षित रहे। चातक, मयूर, कोकिल तथा भ्रमर की स्वर माधुरी को अनेक बार कानो में उँड़ेला और अपलक नेत्रो से सावधानी के साथ काम की चोटो को परखती रही पर परिणाम कुछ न निकला। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मैं रातदिन नन्दनन्दन को रटती रही। वे इस हृदय से क्षण भर के लिए भी पृथक नहीं हुए। इसीलिए काम ने बड़ी आतुरता से अपनी चतुरंगिणी सेना सजाके मेरे ऊपर चढ़ाई की आयोजना की पर एक बाण भी न चला सका। मुझे नहीं मालूम कि इस शरीर में ऐसी कौनसी खूबी है जिससे सबको डर लगता है। सूर कहते हैं कि राधा कहती है कि मुझे तो इसका एक ही कारण समझ में आता है कि श्रीकृष्ण के भय से ऐसे-ऐसे नामी योद्धा अपने पराक्रम को भुला बैठे और मेरे ऊपर बार न कर सके।

इस पद्य का मूल भाव भवभूति के निम्नलिखित श्लोक से लिया गया है-

धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणत्कोकिले बालचूते,
मार्गेगात्रं क्षिपति बकुलामोदगर्भस्यवायो;
दावप्रेम्णा सरसबिसनीपत्रमात्रोत्तरीयः,
ताम्यन्मूर्त्तिः श्रयतिबहुशो मृत्यवेचन्द्रपादान् ॥

इस पद में काव्यलिंग अलंकार है।

३३१ कृष्ण को छोड़कर योग को अपनाने की बात सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारी माधव से मुख मोड़ने से नहीं बन सकती। जिन आँखो ने चन्द्र के समान आह्लादकारी श्याम का दर्शन किया है वे आँखे सूरज से कैसे मिलाई जा सकती हैं। अर्थात् उन आँखो से सूरज नहीं देखते बनेगा। यह योग मुनियो के मनमे रहनेवाला है। मन्दराचल के भार को कमठ (कछुए) के शरीर को छोड़ और कौन सहन कर सकता है। तरुणियों के हृदय के कुमुद से सुकुमार बन्धनो को हाथी बिना तोड़े कैसे रहेगा। अर्थात् स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल है उसमें योग का आधान हाथी के समान है। इस योग का भार वह सुकुमार हृदय सहन नहीं कर सकता। नीलाकाश से सुन्दर घन श्याम को कोई धुँएका धोखा देके नहीं बहला सकता। अर्थात् घनश्याम और धूम्र मे वर्ण साम्य है सही परन्तु घनश्याम की जगह धुँआ से भेटकर श्याम के भक्तों को सन्तोष नहीं हो सकता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि कमल से

प्रेम करने वाले भौरो का मन चपक के फूलो से नहीं बहल सकता। भाव यह है कि गोपियों का मन कृष्ण से मिलने के लिए उत्कण्ठित है। वह योग को कैसे अपना सकता है?

इस पद मे निदर्शना अलकार है।

३३२ विरह व्यथित कोई गोपी अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए उद्धव से अपने नेत्रों की व्याकुलता की कहानी कह रही है। वह कहती है कि हे उद्धव! मेरे सब अङ्गो से आखे ही अधिक दुखी हैं। (प्रिय के दर्शनो से अभाव मे तथा 'सर्वेन्द्रियेषु नयन प्रधानम्' के अनुसार नेत्रेन्द्रिय के मुख्य होने के कारण आखो की व्यथा का उत्कृष्ट होना न्याय सगत ही है)। मै अनेक उपाय करके हार गई पर ये आखें बड़ी व्यथित रहती हैं तथा इनका सन्ताप कभी शान्त नही होता। ये सदा निर्निमेष रहती हैं व्यथा से अत्यन्त बेचैन हो गई हैं। श्रीकृष्ण के दर्शनो के अभाव मे विरह की वायु से भर गई हैं जिससे वे खुली की खुली रह गई हैं और यो ही नगी इकटक देखती रहती हैं। अरे भौरे! (उद्धव) ये व्यथित नेत्र तुम्हारी भारी ज्ञान की शलाका को कैसे सहन कर सकती हैं। सूर कहते हैं कि गोपी उद्धव से कहती हैं कि तुम हमारी आखो की व्यथा हरण करने वाले श्रीकृष्ण के रूप रूपी अंजन को लादो ताकि ये शीतल हो जावे।

इस पद मे रूपक अलकार है।

३३३ कोई गोपी उद्धव की चिकनी-चुपड़ी बाते सुनके अन्य गोपियो को प्रबोध करती हुई कहती है कि अरे तुम इनकी चिकनी-चुपड़ी बातो के भुलावे मे क्यो आरही हो? ये भ्रमर उन्हींके साथी हैं। देखती नही ये वैसे ही चंचल चित्त और श्यामल शरीर हैं। वे कृष्ण मुरली के नाद से संसार को मोहित करते हैं और ये भ्रमर महाशय अपने मधुर गुंजन से पुष्पो के मन अपनी ओर गिराते है। वे नित्य उठके अन्यान्यो के मन को प्रसन्न करते हैं तथा ये उड़ करके अन्यत्र ही रँगरेलिया करते हैं। वे नई नबेली मानिनियो के घर मे रहते हैं और ये हज़रत दिनरात कमलो मे रहते हैं। भ्रमर के छः पैर हैं और कृष्ण के भी दो पैर और चार भुजाएँ मिलके छः हो जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों मे किसी प्रकार का भेद नही रह जाता। दोनो के दोनो अपना

मतलब गाठने में बड़े चतुर हैं। सबो के साथ रँगरेलिया करके मजा उड़ाने वाले हैं। विरह दुःख देने वाले इन दोनो का कोई विश्वास मत करो। सूर कहते हैं कि गोपी कहती है कि वे माधव और ये मधुप इन दोनों मे कोई किसी से कम नहीं है।

इस पद मे सम अलकार है।

३३४ गोपिया उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! श्री कृष्ण से जाके कह देना कि जैसे भी बने गोकुल चले आवे। दस दिन (कुछ समय) वहा रह लिए यह कोई बुराई की बात नही है। परन्तु अब विलम्ब न करे। तुम्हारे बिना हमें कुछ भी नही अच्छा लगता, न घर सुहाता है और न वन ही भाता है। उद्धव ! ये सब बाते तुम अपनी आखो देखे जाते हो। हम अपने मुँह से इसका कथन क्या करे ? तुम देख रहे हो कि बच्चे बिलख रहे हैं गौएँ मुँह से घास नहीं चरतीं और बछड़े दूध पीने के लिए नही दौड़ते। सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव को सम्बोधन करके कहती हैं कि श्रीकृष्ण के बिना हम सब रातदिन विलाप करती फिरती हैं। ऐसी अवस्था में उनसे मिलकर ही यहा अमन की सम्भावना हो सकती है।

इस पद मे अतिशयोक्ति अलकार है।

(नोट—यह पद कुछ परिवर्तन के साथ पहले भी आचुका है। देखिए–ऊधो ! तुम कहियो ऐसे गोकुल आवे' १८० पद)।

३३५ कोई गोपी योग की बेतुकी बात करने वाले उद्धव की खिल्ली उड़ाती हुई अन्य गोपियो से कह रही है कि हे सखी ! मथुरा मे दो ही हस हैं, एक तो अक्रूर और दूसरे ये उद्धव ! दोनो ही मन के सशयो को अच्छी तरह पहिचान-ने वाले हैं। इन दोनो को क्षीर नीर विवेक भली भाति आता है। इसीलिए इन्होने ही कस को मरवाया है। यह इनके कुल की परम्परा मे दाखिल है इनका वश सदा से इसके लिये प्रसिद्ध है। महाराज ! मथुरा पर आज भी कृपा करो। उसे बख्श दो। वहाँ भी आखिर तुम्हारा ही वश है। सूर कहते हैं कि गोपी अन्यों से कहती हैं कि जरा आपको देखिये आप अबलाओ को योग की पाटी पढ़ाने पधारे हैं। भला यह सुनकर किसका मन खिन्न नही होगा ?

इस पद में काकु वक्रोक्ति अलङ्कार है।

३३६ विरहातुर गोपियाँ श्रीकृष्ण से विनय करती हुईं उद्धव से कह रही हैं कि हे श्रीकृष्ण ! एक बार इधर फेरा क्यो नही कर जाते ? हमे दर्शन देके आप फिर मथुरा चले जाना हमारे लिए इतना ही सुख पर्याप्त होगा। श्रीकृष्ण यहाँ से चले गए और वहा अपने मा बाप देवकी तथा वसुदेव एव अन्य बहुत से परिवार के लोगो से मिल गए यह सब ठीक है पर उद्धव ! बताओ नन्द और यशोदा के दुःख को देखकर हम कहा जाएँ ? किसके सहारे रहें ? हे कृष्ण ! तुम्हारे बिना और अनाथों का प्रतिपालक और कौन है ? हमारी यह नैया झींझरी हो रही है और सबका सब यहाँ कुसग ही है। सूर कहते है कि गोपियां कहती है कि तुम्हारे चले जाने पर इस दुःख सागर से हमे कौन पार उतारेगा ?

यह ब्रज का बेड़ा शिथिल एव स्थगित है। आप ही इसे आके उबार सकते हैं।

३३७ निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने वाले उद्धव से गोपियाँ व्यग्य करती हुई कहती है कि कृष्ण और उद्धव मानो एक ही साँचे में ढालकर बनाये गये हैं। इन दोनो ही के अन्दर भ्रमर के समान गुण विद्यमान है और ये ऊपर से देखने मे ही केवल तनके काले नहीं हैं अपितु ये दोनो हृदय से भी काले है, ठीक उसी प्रकार जैसे भ्रमर ऊपर और अन्दर समान रूप से काला होता है। ये दोनो ही हम गोपियो को धूये का हाथी अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की बाते बतलाते है जो कि केवल बकवास है, व्यर्थ है और धोखा है। अपनी किसी सखी को सबोधन करके गोपियाँ कहती है कि हे सखी ! ये सब जितने काली देह धारण करने वाले है अर्थात् काले रग के है उन्हें तू ऐसा ही समझ। सूर कहते है कि गोपिया कृष्ण और उद्धव के लिये कहती है कि मथुरा नगर ऐसे लोगो की खान है उस खान में एक से एक बढकर है।

इस पद उत्प्रेक्षा अलकार है।

३३८ गोपियाँ उद्धव की निर्गुण ब्रह्म की बातों को अरुचिकर एवं चतुरता पूर्ण बतलाती है। वे कहती है कि हे उद्धव ! तुम चतुर मनुष्यों की भाति बातें करते हो। तुम्हारा इस प्रकार का कपट पूर्ण व्यवहार साफ साफ उसी प्रकार से थोथा ज्ञात हो रहा है जिस प्रकार कि जल में सीसी डालने पर बलबूले

उठने लगते हैं जो यह कह देते है कि शीशी में कुछ नहीं है। हे उद्धव! हम तो ये सारी बाते तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रही हैं पर तुम क्यो भ्रम मे पड़े हुए हो। अरे हम भी तो तुम्हारी कुछ लगती ही हैं और हमे भी कुछ तुम्हारा माया मोह है। पहिले तो यहा सुफलक सुत (अक्रूर) आए जिन्होने कि अपने करतूत की झोपड़ी छाई और बसाई और अव (सूर की गोपिया उद्धव से कहती है) हे उद्धव! तुम उस झोपड़ी की दीवाल उठाने के लिए मिट्टी की और एक खेप डालने आये हो।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

३३६ उद्धव को ताना देती हुई गोपिया आपस मे कहती है कि उद्धव कृष्ण के मत्री बनकर यहां आये है। उन्होंने इस गोकुल में आकर जो योग की चर्चा फैलाई है, यह भी एक विचित्र बात है। हे उद्धव! उस समय तुम कहा थे जब कृष्ण ने हमारे साथ वृन्दावन में रास लीलायें की थीं। उठो अब तुम हम युवतियो को योग की शिक्षा देने केलिए तथा भस्म और अधारी (साधुओ के पास एक लकड़ी की वनी हुई वस्तु होती है जिसके सहारे बैठा करते है) का सेवन करने के लिये कहते हो। हमारे सम्मुख तुमने क्यो ऐसा दुष्कर मत (निर्गुण ब्रह्म की उपासना) फैलाया जो हम भोगिन सगुण भक्त गोपियो के लिये ठीक उसी प्रकार दुष्कर है जैसे जोगियों के लिए भोग! सूरदास जी कहते है कि गोपिया कह रही हैं कि हे उद्धव! हमें यह चर्चा सुनकर अधिक दुःख हो रहा है। इसे सुनकर वियोग की वेदना से हम और भी अधिक व्याकुल हो जाती हैं।

३४० गोपिया उद्धव से निर्गुण का सन्देश सुनके उन पर व्यग्य करती हुई कहती है कि मानो उद्धव और अक्रूर दोनो की एक ही सलाह रहती है। ये दोनों उद्धव और अक्रूर बहेलिये है जिन्होंने आपस मे सलाह करके ब्रज में शिकार की ठान ली है। इन्होने ही अपनी बातो के जाल मे माधव रूपी मृग को फँसाया और उसके उछलते ही उनपर चोट की। इन्हीं ने ज्ञान के बाणों के प्रहार से गोपी रूपी हिरणियो को मारा है। देखो न, इनकी लगाई हुई विरह की तापाग्नि रूपी वनाग्नि चारो ओर दिखाई दे रही है। इतने पर भी इन्हें सन्तोष नहीं। न जाने अब ये और क्या करना चाहते है? इन्हें किसी

बात का सोच तो है ही नही । ये निधड़क होके अत्याचार करने के आदी है। इनके उल्टे ढङ्गो को तो जरा देखो ये प्रेम मे रँगे हुओ को ज्ञान का उपदेश दे रहे है । सूर कहते है कि गोपिया कहती हैं कि हम बिना श्याम के कैसे जी सकती है ? क्या मेघो के नष्ट हो जाने से चातक जीवन धारण कर सकता है ? अर्थात् नहीं ।

इस पद मे रूपक एव निदर्शना अलकार है।

३४१ निर्गुण का उपदेश सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि ब्रज में निर्गुण के लिए स्थान नहीं है क्योंकि इस ब्रज में तो सगुण (भक्ति) का दीपक प्रज्वलित होके अपना प्रकाश थैला रहा है। हे उद्धव! सुनो हम लोगो की भृकुटी की तिपाई पर रातदिन इसी का प्रकाश चमकता है। यहाँ सबके हृदय रूपी शराबो (सकोरो) मे स्नेह रूपी तिली का सुगन्धित तेल भरा है। प्रियतम के अनेक गुण इस दीप की बत्ती के समान हैं जिसके जलने से बारहो महीने (सदा) कपूर की सी सुगन्धि चारो ओर फैल रही है। यह भाग्य की बात है कि अब सबके अङ्गो मे विरह की आग ऐसी लगी कि चातुर्मास्य (वर्षाकाल) के आने पर भी नहीं बुझती। इस आग को फूँक फूँक के तीव्र करने वाले तुम तीन हो—एक महाराज कृष्ण स्वय, एक आप तथा तीसरे कामदेव जी महाराज। भला जब ऐसे २ दिग्गज फुकैया है तो फिर इसके बुझने की आशा करना भी व्यर्थ ही है। अन्य सब भजनो को तिनके के समान तुच्छ समझके उनका हमने परित्याग कर दिया तथा इसी सगुण दीपकी ज्योति की ही उपासना की। हमने निर्लिप्त (अनासक्त) भोगों के साधन से अन्तस् के अन्धतम को नष्ट कर दिया। जिस दिन आपने यहाँ पधार के अपने उपहासास्पद प्रवचन का आरम्भ किया है उस दिन से यह ज्योति और भी तीव्र होगई! क्योकि निर्गुण के लिए प्रेरणा देने वाले आप उस दीप के लिए सींक बन गए जिससे वह दीपक की बत्ती और ऊपर को उकस गई। इससे इसकी इतनी लौ बढ़ी कि शिर तक पहुँच गई जिससे मस्तिष्क का ज्ञानगढ़ भस्मसात् होगया। इसकी प्रचण्ड लौ ने आकाश मे छाए हुए जितने दुर्वासना रूपी शलभ (पतगे) थे वे नष्ट हो गए। भावार्थ यह है कि आज तुम्हारे उपदेश ने हमारे प्रेम को वासनाओं से

मुक्त करके शुद्ध कर दिया है । आप तो उनके बिलकुल निकट के रहने वाले हैं । सुना है कि उनके (कृष्ण के) आप मन्त्रियो मे से है फिर भी आश्चर्य है आपने गोकुल की प्रेम पद्धति के मर्म को न पहिचान पाया । इस कौतुक को नहीं देखते । सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव ! तुम भाग्य के बड़े ओछे हो । हाय न जाने किन पुण्यो से तुम्हे खीर परसी मिली पर तुम बार २ जवासे चरने के लिये ही बार २ लपकते रहते हो। भाग्य से कृष्ण का सान्निध्य और गोकुलवासियो का सपर्क मिला । चाहते तो आनददायिनी भक्ति को अपनाकर अपना जन्म सुफल कर सकते थे । परन्तु तुम बार २ फीके निर्गुण पर ही मुग्ध हो रहे हो ।

- इस पद मे रूपक तथा विभावना अलकार है ।

३४२ उद्धव की निर्गुण की चर्चा सुनके गोपियाँ कहती हैं कि विरह के कसालों के भय से अनुराग को तिलाँजलि देना कायरता है । हम प्रेम के पथ का परित्याग करके प्रेम के देवता का अपमान नहीं करेगी । देखो चातक अपने प्रेम की एकात भावना के कारण सब जलों को तिलाजलि देदेता है फिर भी वह स्वाति के जल के लिए मरता ही रहता है । इसीलिए वह रात दिन उसी को पुकारता है । प्रियतम के निर्मोही होने पर भी प्रेमी अपने प्रेम मे दृढ ही रहा करता हैं । मछली पानी की उदासीनता को जानती हुई भी उस पर जी जान से कुर्बान रहती है । उसके बिछोह में प्राण परित्याग कर देती है । हिरण वाद्यों की स्वर माधुरी से प्लावित हो जाता है यद्यपि उसी दशा में व्याध उसे बाणो से मारता है । सच्चे प्रेम मे प्रियतम के गुण दोषो की आलोचना व्यर्थ होती हैं । चन्द्र के प्यार में युगो से चकोर एकटक उसकी ओर देखता चला आरहा है यद्यपि प्रियतम (चन्द्र) ने उसके प्रेम की कदर आज तक नहीं की । करोड़ों (असख्य) पतंगों ने दीपक के प्रेम मे अपने आपको बलिवेदी पर चढ़ा दिया। आज भी उनके प्रेम वैसे ही भरे हुए हैं वे घट आजतक रिक्त नहीं हुए । प्रियतम की कठोरता उनके प्रेम को शिथिल करने में असफल रही । सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! श्रीकृष्ण ने यहा रहके जो बाते हमसे की थीं वे आजतक हमे भूली नही । बताओ उद्धव ! हम श्याम को किसलिए त्याग दें । आखिर क्या हम उपर्युक्त कीट पतगो से भी

बदतर है जो विरह के सकटो तथा प्रियतम की निष्ठुरता से अपने प्रेम का परित्याग कर दें ?

इस पद मे तुल्ययोगिता अलकार है।

६४३ निराश होकर गोपिया अपने प्रेम की व्यथाओ को अकथनीय बताती हुईं उद्धव से कहती है कि उद्धव ! हम तुमसे क्या कहें (आज निराशा की व्यथा किसी से कहने की चीज नही है, क्योकि आप जानते है कि मन की व्यथा गोपनीय ही है। देखिए 'रहिमन की व्यथा मन ही राखो गोय सुनि अठिलैहें लोग सब बाटि न लैहे कोय') हमारी व्यथा मन की मन मे ही रह रही है। यद्यपि यह व्यथा सहन नहीं की जाती (असह्य है) तथापि बताओ उद्धव ! हम किससे जा के कहें ? उनके (प्रियतम के) आने की अवधि के आसरे से ही हम इन दैहिक और मानसिक सन्तापो को सहती रही है। और उसमे भी कोढ़ मे खाज वाली बात यह हुई कि जहा से हम रक्षा की आशा करती थी वही से सङ्कट की धारा बह निकली। उद्धव ! आज तुम अपनी आखो से यहा की दशा देख रहे हो कि व्यथा ने उमड़ के सभी सीमाओ को ढा दिया है और अब यह असीम होगई है। आज सूर के स्वामी कृष्ण के बिछुड़ने से हम लोग दुःसह वियोग मे जल रही है।

३४४ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमे श्याम का यही सोच आता है कि कहाँ तो यहाँ रहके हमसे इतना प्रेम किया कि अपने हाथों हमारे पाँवो मे महावर लगाते थे और कहाँ अब कुब्जा ऐसी मन भाई कि हमे बिलकुल भुला दिया। गोवर्धन गिरि को धारण करके इस ब्रज को न जाने उन्होने क्यो बचाया था जब कि आज ब्रजनाथ नामको छुड़ा रहे हैं। यदि ब्रजनाथ उपाधि से इतनी घृणा थी तो इसे मिट जाने देते न रहता बाँस न बजती बाँसुरी। तब मुरली अधरो पर रखकें बजा-बजाके नाम ले-ले के क्यो पुकारा करते थे ? उस समय यहाँ रहते हुए इतने लाड़-प्यार से हमारा आलिगन किया और आज अपना अद्भुत रूप तक हमे इन नयनो को दिखाने की कृपा नही करते। रातदिन जिस मुखसे प्रेम की बाते कीं उसी मुखसे आज योग का उपदेश देरहे हैं। जिस मुख ने हमारी रसनाओ को अमृत का आस्वादन कराया वही आज विष कैसे पिला रहा है ? सूर कहते हैं कि इस प्रकार वियोगिनी गोपियाँ हाथ

मल-मल के पछताती हैं और शनैः शनैः अपने मन को समझाने का प्रयत्न करती हैं परन्तु इससे वे वियोग से और भी अधिक सतप्त होती हैं।

इस पद मे प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

३४५ कोई गोपी उद्धव के निर्गुणोपदेश की खिल्ली उड़ाती हुई अपनी सखी से कहती हैं कि अरी सखी! मेरा मन यो ही धोखे से (अनजाने से) उस मथुरा की ओर चला जाता है जहा पर उद्धव के कथनानुसार श्रीकृष्ण निवास करते हैं। वहा से फिर शीघ्र ही इधर आ जाता है और यह मन इधर उधर की आवाजाई करते थकता नही। परन्तु इधर उधर जाते हुए इस मन को एक बड़ी अद्भुत चीज दीख पड़ती है। इधर आके देखती हूँ तो ये मधुकर महाशय पागल की भाति बड़बड़ाते हैं। इधर जब मन मथुरा जाता है तो देखती हूँ कि प्रियतम (कृष्ण) इनके इस भाषण को सुनके मुसकरा रहे हैं। वास्तविक बात तो यह है कि केवल हरि ही सत्य है और निर्गुण के यशोगान करने वाले सब झूठे हैं। इसी आशय से इनकी व्यर्थ की अहम्मन्यता पर श्रीकृष्ण मुसकराते हैं। यह सब जानकर भी उद्धव को बनाने के लिए उन्होने निर्गुण की चर्चा करने के लिए यहां भेजा है। ये बेचारे उनकी बातों में आके झूठ को ही सच मानके साटोप व्याख्यान देने लगे। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि जिस मायावी ने ससार को ठगा वही इन्हे भी बहका रहा है।

३४६ गोपिया अपनी वियोग दशा वर्णन करती हुई उद्धव के सम्मुख आपस मे कह रही हैं। कोई गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी! और हुआ सो हुआ परन्तु इस ब्रज से श्री कृष्णजी के चले जाने से दो ऋतुओ ने ऐसा अड्डा जमाया है कि जाने का नाम नही लेतीं। एक तो ग्रीष्म और दूसरी वर्षा ऋतु हरि के बिना बड़ा प्रचण्डरूप धारण किए रहती है। लम्बी-लम्बी सासों का झझावात तथा नयनो के घनो का उमड़ना ये सभी वर्षा के योग जुड़ गए है। इन्होंने बरस-बरस के अनेक दुःख रूपी मेंढ़को को जो कहीं दूर छिपे थे लाके प्रकट कर दिया। यह तो हुई वर्षा की प्रचण्डता अब देखिए ग्रीष्म की तीव्रता। प्रचण्ड दिनकर के समान सन्तापदायी असह्य वियोग दिन प्रति दिन उदय होता है। सूर कहते है कि गोपिया कहती है कि बात यह है कि शीतांशु

श्रीकृष्ण के विमुख हो जाने पर अब हमारे शारीरिक सन्ताप को कौन मिटा सकता है ?

इस पद में रूपक अलंकार है ।

३४७ नितान्त निर्मोही होने पर भी यदि प्रियतम अपने प्रेमी का स्मरण करके उधर चलने की बात भी चलादे तो भी प्रेमी अपना अहोभाग्य समझता है । इसीलिए गोपिंया उद्धव से पूछती हैं कि हे मधुकर ! तुम्हें कृष्णकी शपथ है । सच बताना वे कभी यहा के लिए भी मन करते हैं या चित्त से बिलकुल सुध भुलादी है ? हमतो गरीब अहीरन हैं । मना करते हुए भी जबरदस्ती उनसे प्रेम करने के लिए विवश हो जाती हैं । परन्तु वे मथुरा के रहने वाले शहरी आदमी ठहरे । वे तो आठो गाठ कुम्मेंत है । (उनके रोम-रोम में कपट और चालाकी हैं) । उद्धव ! तुम सच बताओ हमारे मन की बात कहके हमारे कानो को सुख दो । वहुत हो चुका अब अपने दिल की कुटिलता और शठता दूर करो । सूरदास कहते हैं कि गोपिया व्यथित हो के कहती है कि स्वामिन् अपनी कीर्ति की लज्जा रखके यहा जो हमारी लोक-हँसाई हो रही है उसे मिटादो । भावार्थ यह है कि आप भक्त-जन-वत्सल प्रसिद्ध है । इस विरद का खयाल कर हम दीनो को दर्शन दे के हमें कृतार्थ करो ताकि उन लोगो का मुँह बन्द हो जो आज हमारे प्रेम की मजाक बना रहे हैं ।

३४८ गोपियाँ कृष्ण राम या भगवान के विरही की असाध्य दशा का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं कि भगवान के विरही भला अपने को कैसे संभाल सकते हैं ? जवकि साधारण मनुष्यो का विरह भी सच्चे प्रेमियों के लिये असह्य हो जाता है तव फिर महा विभूतिशाली समस्त सौन्दर्य के केन्द्र भगवान् के विरह मे प्रेमी कैसे सभल सकता है ? जब से गंगा श्रीकृष्ण (विष्णु) के चरणों से पृथक हुई तब से बही २ फिरती है आज भी उसके टिकने का ठिकाना नहीं । भगवान् की नेत्र ज्योति से बिछुड़ के सूर्य और चन्द्र जैसे प्रतापशाली भी अपनी स्थिति को नहीं संभाल सके । सूर्य नित्य प्रति भटकता रहता है और चन्द्रमा अपने शरीर को क्षीण करता रहता है । हरि की नाभि से वियुक्त होके कमल कंटकित हो गए तथा उनके वियोग मे समुद्र भी (बड़वानल से) जल कर खारे हो गए । उसकी वाणी से बिछुड़ी हुई

गी शारदा भी ऐसी दीवानी होगई कि विधि के विरुद्ध अपने पिता ब्रह्मा की त्री बनी। सूरदास कहते है कि गोपिया कहती हैं कि उद्धव ! जब एक एक प्रङ्ग से बिछुड़ने वालो की यह हालत हुई तो उनके सर्वाङ्गीण आलिंगन से विरहित होने वालों की क्या औषध हो सकती है अर्थात् उनका सन्ताप तो वे इलाज है।

'मिलाइए 'रामवियोगी ना जिएँ, जिएँ तो बौरा होहि। कबीर

इस पद की कल्पनाएँ वैदिक वचनो और पौराणिक गाथाओ पर आश्रित हैं। वेद के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर के नेत्र हैं। गगा का विष्णु पद से प्रवाहित होना, विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति के कारण ही उनका नाम पद्मनाभ है। समुद्र में विष्णु का शयन तथा सरस्वती का मूल रूप मे ईश्वर की वाणी मे निवास तथा ब्रह्मा से उसकी उत्पत्ति एव विवाह आदि पौराणिक गाथाएँ प्रसिद्ध है। जिनके आधार पर इस पद की कल्पनाएँ युक्ति संगत ठहरती है।

इस पद मे अर्थान्तरन्यास और हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

२५६ गोपियाँ श्रीकृष्ण की चलचित्तता का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं हे उद्धव ! तथा गोकुलवासी गोपाल तुम्हारे ऐसे लच्छनो को सुन २ के लोग यहाँ मजाक बनाते हैं। तुमने पहले समय में सागर को मथन करके अमृत निकाल के सुरो का पालन किया। बेचारे भोले बाबा को जहर दिया (और लक्ष्मी स्वय हथियाली)। इसी प्रकार अब की बार भी कस को मारके राज्य तो औरो को दिया और खुद दासी (कुब्जा) को रख लिया। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि हमें तो आपकी (श्रीकृष्ण) की बेढंगी बाते सुन २ के अपना विरह दुःख भी भूल जाता है और इन चालाकियों पर हंसी आती है।

२५० उद्धव के निर्गुणोपदेश से चिढ़कर गोपियो ने ईंट का जबाब पत्थर से दिया। इसीलिए वे उद्धव से कहती हैं कि लो भाई अपनी चीज के बदले में हमारी चीज भी लिए जाओ। उनकी ओर से तुम एक (निर्गुणोपदेश) लाए थे। हमने उसके बदले मे इतनी सुनाई हैं सो जाके मय सूद के उन्हे दे देना। तुम तो खूब समझदार हो सब जानते हो। हमे भोला समझ के तुमने

तो अपनी चाल चलने मे कोई कसर रक्खी नही। अब जब हमारी बारी आई तब क्यो मना करके तीव्र गति से भाग रहे हो। (यह कल्पना खेल के आधार पर आश्रित है। यदि कोई खिलाड़ी दूसरी पार्टी को खूब छकाए और जब दाव देने की बारी आए तो हम नही खेलते' कहके भागने लगता है। यही उद्धव की दशा है। निर्गुणोपदेश दे देके गोपियो को खूब व्यथित किया। पर जब उन्होने खरी खोटी सुनानी शुरू की तो मैदान छोड़ के भागने के लिए उद्यत हो गए) अब तुम हमारी ओर से ये बदले की चीजे लेके जल्दी ही अपने मित्र को जाके दे दो। वे सोच रहे होगे कि हमारी चीज यो ही चली गई। सो यह बात नहीं एक के बदले अनेक देके उनकी छाती ठडी कर दो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! यह व्यवहार है हमारे और आपके बीच यह जो व्यौहरत हुई है उसमें हम तुम दोनो साहु है किसी का किसी पर कुछ नहीं चाहिये। तुमने एक बात दी और हमने अनेक बाते बदले में देके मय सूद के उसे चुका दिया। तुमने निर्गुण की एक बात कही हमने अनेक खोटी खरी सुना के अपने दिल चे गुब्बार निकाल लिए।

३५१ गोपियो की व्यंग्योक्तियो से झेप कर उद्धव ने सिर नीचा कर लिया उनकी प्रौढ़ोक्तियो को सुनकर उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा। वे बगले झाँकने लग गए। इसी अवसर पर गोपियो ने उन्हे ताना देते हुए कहा कि उद्धव ! झेंपते क्यो हो ? जरा हमसे आँखे मिलाके बातें करो। आप हम अबलाओ को ज्ञान की पट्टी पढाने आए यही सुनकर हमने आपके ज्ञान का अन्दाजा लगा लिया। आपने यहाँ निर्गुण पर भाषण दिया ! क्या कहना है ? आप बड़े भारी निर्गुणोपासक है ! पर हमने तो सगुण श्याम सुन्दर की सेवा करते हुए चारों प्रकार की मुक्ति अर्थात् सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य तथा सामीप्य प्राप्त कर ली है। इतने पर भी आप सगुण चर्चा छोड़के और की और बाते कह रहे हो। अरे मधुकर ! तुम बड़े दुष्ट हो। इतने पर भी भाई ! चलते का नाम गाड़ी है। हम मूर्ख और आप बड़े बुद्धिमान है। अब अधिक क्या कहें ? आप तो निःस्वार्थ भाव से इधर उधर भटकते रहते है पर खैर बहुत हो लिया। अब अपने घर का रास्ता पकड़े। हाय ! इससे बड़ा और अज्ञान क्या हो

सकता है कि ज्ञान की चरम सीमा पर पहुँची हुई हमें आप ज्ञान की बारह खड़ी सिखा ने आए हैं (ज्ञान का उपदेश दे रहे है) उद्धव ! हम तो ज्ञान की उस दशा पर पहुंच चुकी हैं जिसके बारे में 'यत्र नान्यत्पश्चति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति' कहा जाता है। इसलिए हम जिधर देखती हैं उधर उसी सूर के स्वामी श्याम की मूर्त्ति देखती हैं। हमारे लिए सब कुछ श्याममय है। (जिस प्रकार ज्ञान की चरमावस्था में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता वैसे ही प्रेम या भक्ति की चरमावस्था मे उपास्य और उपासक का भेद मिट जाता है। गोपियो का अभिप्राय यह है कि हम तो स्वय कृष्ण रूप हो रही हैं।—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल। ज्ञानी की अवस्था के लिए देखिए सर्व खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन, अहं ब्रह्मास्मि आदि उपनिषद्)

३५२ गोपियाँ श्रीकृष्ण की बेरुखाई पर व्यग्य करती हुई भौरे को सम्बोधन करके कह रही हैं कि—अरे भौरे जा दूर हट यहाँ से। तेरा रङ्ग रूप और आकार उन्हीं के समान है। तूने मेरा मन तोड़ के चूर २ कर दिया। जब तक मतलब रहता है तब तक तो पास रहते हो और मतलब निकल जाने पर ऊपर को उड़ जाते हो। सूर कहते हैं कि गोपियाँ भ्रमर से कहती हैं कि हे भ्रमर! तुम अपने मतलब से कलियो का रस लेने के लिए चक्कर काटते हो। (हम तुम्हें खूब समझती हैं)

इस पद में अन्योक्ति अलङ्कार है।

३५३ गोपियाँ उद्धव.की अनिरीतिपूर्ण करतूत (सगुण भक्ति को उखाड़ के निर्गुण की स्थापना) पर व्यग्य करती हुई उनसे कहती हैं कि हे उद्धव! तुम्हारा व्यवहार धन्य है। तुम्हारे स्वामी तथा सेवक धन्य हैं। तुम जैसे जो उनकी नीतियो को कार्य रूप देते हैं वे धन्य है। आप आम को कटवा के तथा चन्दन के पेड़ो को खुदवा के उनकी जगह बबूर लगाने का उपक्रम कर रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ इस अनरीति को देख के उद्धव से कहती हैं कि आखिर यह निरंकुश राज्य (अन्धेर नगरी का शासन) कब तक चलेगा ?

इस पद में अन्योक्ति अलकार है।

३५४ उद्धव के निर्गुण पर व्यंग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव!

जाइये पधारिये यहाँ से। हम तुम्हे खूब जानती हैं। जैसे श्रीकृष्ण हैं वैसे ही तुम उनके नौकर हो। दोनो खूब छलबल कौशल से परिपूर्ण हैं। तुम्हें यह निगु'ण ज्ञान कहाँ से मिला ? तुम इसे किसके सिखाने से यहाँ ले आए ? इस उपदेश को तुम कुब्जा को जाके क्यों नहीं दे देते जिसके रूप पर तुम्हारे स्वामी निछावर हो रहे हैं। हम योग की बाते कहाँ तक करे ? योग का सन्देश पढ़ते पढते तो हमारी आँखे दुखने लगी हैं। (सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं) इतने पर भी हम बुरी हैं। पर खैर कुछ हर्ज नहीं तुम तो चोखे खरे हो।

३५५ बिना पूछे ही योग का उपदेश देने वाले उद्धव पर व्यग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि भाई ! मथुरा मे सभी धर्मात्मा और कृतज्ञ हैं। वे सबके सब बड़े दयालु हैं। पराए हित में इधर-उधर भटकते फिरते है और बड़े सुशील वचन कहते है। पहले सुफलक के पुत्र अक्रूर गोकुल पधारे और कृपा करके उन्हे लेके मथुरा सिधारे। वहाँ जाके उधर कस का और इधर हमारा दोनों का काम तमाम कर दिया। अब हरि की सिखवन लेके हमें योग सिखाने के लिए महाराज उद्धवजी यहाँ पधारे। वे वहाँ कुब्जा के प्रेम की प्रख्याति का अवसर देके यहाँ योग का प्रचार कर रहे हैं। अब हम नही (जुती) हुई विरह के समुद्र में निरवलम्ब डूबना ही चाह रही है। आज दिन तक तो हे भ्रमर ! हम लोगों के लिए सगुण की लीला रूप नाव थी। उसके सहारे इस समुद्र को तरती रहीं, पर आज तुम उसे छुड़ाके युवतिजनो को निगु'ण थमा रहे हो। भला बताओ कि इस समुद्र के पार हममें से कौन पहुंच सकेगा ? सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती है कि हाय अक्रूर और इन षट्पद (भ्रमर) महाशय को दैव का भय भी तो नहीं है। खुदा का भी तो खौफ नहीं करते मनमानी अनीतियां करते रहते है।

इस पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि एव रूपक अलकार है।

३५६ ज्ञान का उपदेश देने के कारण उद्धव को बनाती हुई गोपिया उनसे कहती है कि उद्धव ! तुम भी खूब भूलभुलैयो में भटक रहे हो। उन प्रियतम ने यों ही किसी प्रसगवश कुछ बात कहदी पर तुम उसी मे उलझ। रहे (उसी से चिपक कर रह गए अर्थात् उसी को सच समझ के उसी को पकड़के

रह गए) । तुम्हारी चतुरता भी हमने देखली । हम जब विवेक से तुम्हारी चतुरता की जाच करती है तो वह हमे कुछ जॅचती नही है । जब कृष्ण ने तुम्हें यहा आके योग सिखाने को कहा तब तुम इतना भी नहीं समझ पाए कि उन्होंने तुम्हें तो दमपट्टी देके इधर भगा दिया और स्वय कुब्जा से उलझ रहे हैं । यह है आपकी चातुरी । खैर जो हुआ सो हुआ अब अपना यह योग सॅभालो और ताजे-ताजे घर पधारो । सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि यहां श्याम को त्याग कर इस कडुए योग को कोई नहीं लेगा ।

३५७ योग और ज्ञान के उपदेश को अपने लिए निरर्थक बताती हुई गोपियाॅ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम योग का सन्देश ब्रज में लाया करते हो । बार २ दौड़ने से तुम्हारे पैर भी तो थक गए होंगे । तुम जो बड़े हैरान होके गढ़ २ के बाते बनाते हो सो तुम्हारे निर्गुण की कथा कौन सुनेगा ? यहाॅ तो सुमेरु पर्वत सा सगुण प्रत्यक्ष दिखाई देता है पर तुम उसे तिनके की ओट में छिपाना चाहते हो । भावार्थ यह है कि कृष्ण रूप में जब सगुण हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता हैं तब हम तुम्हारी लचर दलीलो के आधार पर उसके अभाव को कैसे स्वीकार कर सकती हैं । हमे श्याम के सब दॉब पेच मालूम है । वे यो ही बातो में बहलाया करते हैं । हमने आज तक कभी पानी को मथकर नवनीत निकालने की बात न देखी और न सुनी है । योगी लोगों के द्वारा योग के अथाह समुद्र में बैठकर आजन्म ढूंढ़ते रहने पर भी जिसे नहीं पाया सकता वही इस सगुणोपासना से तुष्ट होकर यशोदा के प्रेम के वशीभूत होके अपने को ऊखल में बधवाता है । इसलिए अब चुप रहो अपने ज्ञान को ढक रक्खो । क्यों इसका उद्घाटन करके हमारी विरह वेदना को बढा रहे हो ? तुम्हीं बताओ कमलनयन नन्दलाल किसे नहीं भाते ? फिर तुम उल्टी बाते कह २ के क्यों हम सब को मारे डालते हो । सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि ज़रा सोचो तो जिसे उपनिषदादि शास्त्र नेति कहकर वर्णन करते हैं वह अबलाओ के लिए कैसे उपयुक्त हो सकता है ।

इस पद में रूपक और निदर्शना अलकार है ।

३५८ श्रीकृष्ण और कुब्जा के प्रेम पर कटाक्ष करती हुई गोपियाॅ उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण ने मथुरा जाके क्या फायदा कर लिया । हे मधुकर ! अब

तो दो शरीरो का एक साथ निर्वाह करना पड़ता है। अतः उन्हें क्या सुख मिलता होगा। यहाँ के पुराने प्रेम की उलझन होगी ही और वहाँ का नया प्रेम दोनों का निर्वाह कितना कठिन है। फिर वहाँ सुनते है कि वे राजवेष में रहते हैं और यहाँ हम उन्हें प्रति दिन वेणु लिए देखती है। न जाने ठगई का प्रपच रचने से उस अक्रूर को क्या मिल गया ? अब भला वे कृष्ण बिना योग सिखा लिए गोकुल मे क्यो रहेंगे ? सूर कहते हैं कि गोपियाँ निराश होके श्रीकृष्ण के लिए शुभ कामनाए करती हुई कहती हैं कि वे राजा हैं अपने घर सिर पर छत्र धारण करके राज्य करे। परन्तु हमारे नन्दसुत ही यहाँ चिर-जीवी हो जिनका मुँह देख के हम जी रही है।

३५६ श्रीकृष्ण के वियोग मे उद्धव से उपालम्भ देती हुई गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव ! कृष्ण से हमारा प्रेम होना पूर्व जन्म का सस्कार है परन्तु अब तो वे हमारे प्राणों के ग्राहक हो रहे हैं। हाय ! वे जाके बहुत दिनो से वहीं विलम रहे, हमारा सग छोड़ के चले गये और हमे वहाँ चलने के लिए मना कर दिया। इतना होने पर भी जिस दिन से उन्होंने प्रेम किया है वह प्रेम घटता नहीं बढता ही जाता है। न मानो तो गज लेके नाप कर देख लो। सूर-दास कहते है कि गोपिया वियोग व्यथित होके कृष्ण को पुकार कर कह रही हैं कि हे स्वामिन् ! तुम्हारे विरह मे यह शरीर एक ब्योंत (माप) बन गया है और विरह दर्जी बनके उसकी काट छाट करता रहता है।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलकार है।

३६० विरहातुर होके गोपियाँ उद्धव से कृष्ण को लिवा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम गोपाल को मना के लिवा लाओ। अबकी बार किसी न किसी तरह उन्हे दमपट्टी देके लिवा लाओ। हे उद्धव ! तुम उन्हें खूब समझा २ कर हमारा उलाहना उन्हे देना कि हे कृष्ण ! तुम जिन्हें विरह की बाढ़ मे छोड़ आये थे वे गोपियाँ आज व्याकुल होगई हैं ! हे उद्धव ! हम बाते बना बनाकर अधिक और तुम से क्या कहे बस तुम सूर के भगवान कृष्ण का हाथ पकड़ कर और नन्द की सौगन्ध दिलाकर यहा ले आना !

३६१ गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश से परेशानी अनुभव करके

कहती है कि हे उद्धव ? इस समय हम तुमसे या तो लड़कर या तुम्हारे सामने मौन धारण करके छुट्टी पा सकती है। हे उद्धव ! हम गोपियाँ तो वैसे ही कृष्ण के विरह में जल रही है उसपर तुम यह ब्रह्म का उपदेश देदेकर हमे और जलाते हो, तो बतलाओ तुम बुरा बोलने वाले हुए या हम। तुम दोनो (कृष्ण और उद्धव) काले हो और तुम्हारे अंगो मे भी समानता है, बताओ हमारा मन किसका विश्वास करे। हम में से जो तुम्हारी जैसी हो वह तुम से बात करें। अरे ! जो ये तुम जोग लेकर आये हो वह वही समझे जो तुम्हारे जैसा हो। जिस किसी को योग अच्छा लगेगा वह अपने शरीर मे भस्म लगायेगा; परन्तु जिनके हृदय मे श्रीकृष्ण बसे हुए हैं उन्हें निर्गुण ब्रह्म की उपासना क्योंकर अच्छी लगेगी। सूरदास के प्रभु से जाकर यह सदेशा कह देना कि यह निर्गुण ब्रह्म कोरा अन्धकार मय है, इससे अज्ञान दूर नहीं हो सकता इसलिए अपना बोया हुआ अब तुम आप ही काटो और इस उलझन को अपने आप ही सुलझाओ।

३६२ कोई गोपी अपनी सखी को सम्बोधन करके कह रही हैं कि हे सखी ! एक ओर का प्रेम इस प्रकार का है जिस प्रकार से कि वस्त्र कुसु भी (केसर) के रँग मे रँगते समय थोड़े ही में चटक और थोड़े ही मे सफेद हो जाता है और जिस प्रकार विचारा किसान बड़े परिश्रम से कई-कई बार अपने खेत को, इस आशा मे कि उसकी इस करनी से कुछ उत्पन्न होगा, जोतता है। परन्तु इतने पर भी जल की घोर वृष्टि निष्ठुरता से उमँग उमँग कर उसके सब करे-धरे पर पानी फेर देती है। सब गोपिया उद्धव से इस प्रकार कह रही है कि हे उद्धव ! जरा सावधानी से इस बात को समझो कि सूरदास के प्रभु से बिछुड़ कर भी मनुष्य अपने मन को उनसे ठीक उसी प्रकार अलग नही कर पाता जिस प्रकार कि रेत मे मिली हुई राई को कोई अलग नहीं कर पाता। भगवान बिछुड जाये पर उनमें उलझा हुआ हमारा मन अलग हो ही नहीं सकता।

३६३ चतुर गोपिकाये उद्धव की निर्गुणभक्ति को तर्क की कसौटी पर रखती हुई उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम्हारा योग सुनकर हमें मन मे डर लगता है। माना कि तुम अत्यत ही चतुर एवं विद्वान कहलाते हो परतु हमारी समझ में कुछ बात नहीं आती है। जितने अन्यान्य भाति २ के सुगन्धित फूल हैं, जो शीतलता उत्पन्न करने वाले है उनको तथा अन्य सभी को छोड़ २

कर कमल के बन में ही हे भ्रमर ! तू क्यो जाता है ? जितने भी ज्योति के श्रेष्ठ समूह है उनमे सूर्य सर्वश्रेष्ठ ज्योतिर्मान है। अन्य सब के तेज को हरने वाला है परन्तु यह क्या बात है कि चकोर चन्द्रमा को छोड़कर उसका ध्यान नहीं करता है। हे उद्धव ! तुम सबको उलटा उपदेश देते फिर रहे हो जिसे सुन २ कर हमारा हृदय जल उठता है। हे धूर्त भ्रमर ! बतला कि जामुन के वृक्ष मे किस प्रकार आम का श्रेष्ठ फल लग सकता है और कृष्ण की उपासना करने वाली गोपियो को किस प्रकार योग का नीरस उपदेश भा सकता हैं। जब तक हस के प्राण रहते है तब तक वह मोतियो को ही चुगा करता है अन्यथा वह मृत्यु ही पसन्द करता है। इसी प्रकार सूरदास जी कहते हैं कि गोपिया अपने प्रेम की तुलना करती हुई कहती है कि मछली भी निष्ठुर जल के समाप्त हो जाने पर व्याकुल होकर प्राण त्याग देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि गोपियो का प्रेम हस और मीन के प्रेम के समान प्रगाढ़ है जिस प्रकार मीन जल के बिना और मराल मोतियो के बिना प्राण त्याग देना पसन्द करेगा उसी प्रकार गोपियाँ कृष्ण के प्रेम के बिना मर जाना ही पसन्द करेगी।

इस पद मे निदर्शना अलकार है।

३६४ थोड़े से काल के लिए भी निगुर्ण को अपनाकर कृष्ण से मन हट के और अन्त मे वहाँ निराश होके फिर उनसे प्रेम जोड़ने मे मजा नहीं है। इसी आशय को प्रकट करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि एकबार विरक्त होकर फिर मन के अनुरक्त होने मे कुछ मजा नहीं रहता। टूटी हुई रज्जु बहुत परिश्रम करने से जुड़ तो अवश्य जाती है पर जुड़कर गाँठ गठीली ही रहती है। उसका वह दोष मिटता नहीं है ? कपट पूर्ण स्नेह और रस्सी का पैड देके दुही हुई गाय या खटाई से फटे हुए दूध को खाने मे किसे स्वाद आता है ? अर्थात् किसी को इन चीजों मे मजा नहीं आता। उद्धव ! तुम्हारा सान्निध्य तो हमें इसी प्रकार दुःखदायी है जिस प्रकार बेर का सान्निध्य केले के लिए दुःखदायी होता है। बेर तो बार २ हिलके मजा लेती है परन्तु केले के अङ्ग जीर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार तुम भी बार २ निगुर्ण का उपदेश दे देके मजा ले रहे हो पर हमारा जी जल रहा है। तुम सोचते होगे कि तुम भली

बात कहते हो वह भी हमे बुरी लगती है, साँप के मु ह में स्वाति का बूँद डालो तो भी वह जहर हो जाता है। इसी प्रकार तुम्हारे सुधा सम बचन भी हमारे अन्तस् मे जाके घातक बन जाते हैं। ऐसी कितनी ही बाते जो तुम कृष्ण के विषय में बना २ कर कह रहे हो, वे सब निरर्थक हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जरा सोचो तो नागो की नगरीमे धोबी का धधा कैसे चल सकता है। इसी प्रकार सगुण पर अनुरक्त हुई गोपियो के सामने निर्गुण का उपदेश क्या मूल्य रखता है?

इस पद मे समुच्चय प्रतिवस्तूपमा तथा विषम अलकार है।

३६५ गोपिया निराश होके उद्धव से कहती है कि तुम हमसे उस परदेशी (श्री कृष्ण) की बाते क्यों कर रहे हो? वे हमारे कौन होते है? देखो न? उन्होने जाते समय एक पाख (मदिर अरध) की लौटने की अवधि बताई थी पर मास (हरि = सिह का आहार भोजन = मास) से बीतते चले जाते हैं हमारे लिए दिन (ससि-रिपु = चन्द्रशत्रु = दिन) वर्षके समान और रात्रिया (सूर = सूर्य, रिपु = शत्रु अर्थात् रात्रि) युगो के समान हो रही हैं। काम (हर = महादेव का रिपु) हमारा घात करने की फिक्र में घूम रहा है। हमारा चित्त (मघा नक्षत्र से पाचवा मघा पूर्वा उत्तरा हस्ति चित्रा या चीता) तो घनश्याम अपने साथ ले गए है। इसलिए आज यह नौबत आ गई कि हम नक्षत्र (२७) वेद (४) ग्रह (९) जोड़के (चालीस बनाके) उन्हें आधा करके अर्थात विष (चालीस का आधा बीस उसके साथ विष की की समता उच्चारण की समता के कारण है) खाने को प्रस्तुत हैं देखे हमें कौन रोकता है? ऐसी दशा कल्पना के चक्षुओ से प्रत्यक्ष करके सूरदास कहते हैं कि हे स्वामिन! तुमसे मिलने के लिए गोपिया हाथ मल मल के पछता रही हैं।

यह सूर का दृष्टकूट पद है। जहापर सीधेसादे ढगसे अर्थ न निकलकर इधर-उधर की द्राविड़ी प्राणायाम पद्धतिसे पहेली के ढङ्गसे वाच्यार्थ प्रकट हो वह कूट कहलाता है। यह चित्र काव्य के अन्तर्गत अधम काव्यो मे गिना जाता है।

३६६ गोपिया उद्धव से कहती है कि तुन्हे योग भाता है और हमे सगुण रूप तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' और 'भिन्न-

रुचिर्हिलोकः' का आशय मन मे विचार करो और अपनी रुचि की बात हमसे मनवाने का निष्फल प्रयत्न न करो। वे कहती हैं कि अरे भाई उद्धव! यह तो अपने मनमाने की बात है। देखौ जहर का कीड़ा दाख छुहारे आदि अमृत फलो (अमृत से मीठे फलो) को छोडके जहर ही खाता है। (अमृत फल का अर्थ अमरूद भी है परन्तु यहाँ वह अधिक अच्छा नही जॅचता)। यदि कोई चकोर को कपूर खिलाए तो उससे उसकी तृप्ति नही होती वह इन सब चीजो को छोड के ॲगार खाके ही सन्तुष्ट होता है। भौरा काठ को कुरेद के अपना घर बनाता है परन्तु कमल के पत्तों मे बॅध जाता है। पतंगा अपनी भलाई दीपक से आलिगन करने मे ही समझता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि भाई उद्धव! जिसका मन जिससे लगा होता है उसे वही सुहाता है और कोई चीज नही। इसलिए तुम्हें निर्गुण अच्छा लगता है और हमे सगुन भाता है यह अपनी अपनी रुचि की बात है। यदि हम तुम्हारे निर्गुण को नहीं अपनातीं तो तुम्हें बुरा मानने की आवश्यकता नही है।

इस पद मे एक ही बात के अनेक साधक होने से समुच्चय अलकार है।

३६७ कोई गोपी अपनी विरह कृशता का वर्णन करती हुई उद्धव से निवेदन करती है कि हे उद्धव! हम विरह के कारण इतनी दुर्बल हो गईं हैं कि हाथ का ककण बॉहो के लिए टाड़ (बरा) का काम देता है। मथुरा चलते हुए मनमोहन ने आने की अवधि निकट (पास) की ही दी थी परन्तु इतना लम्बा समय बीत गया उन्होने आने का नाम नही लिया। मै प्रतिदिन उनकी बाट जोहती हूँ, शकर की मनौती मनाती और रातदिन गिनती गिनते हुए बिताती हूँ। यदि कभी चिट्ठी लिखने बैठी तो विरह से इतनी अधीर हो जाती हूँ कि कागज आँसुओ के पानी में भीग जाता है। इसलिए उद्धव! मै तुम्हें लिखित सदेश देने मे असमर्थ हूँ। तुम मेरा मौखिक सदेश ही श्रीकृष्ण से से कह देना कि हमें यहा नित्यप्रति नयी व्यथा भोगनी पडती है! हे सूर के स्वामिन् श्याम! तुम्हारे दर्शनो के लिए यह आपकी विरह वियोगिनी अत्यन्त व्याकुल है।

इस पद मे अतिशयोक्ति अलकार है।

३६८ राधा अपनी सखी से वियोगदशा वर्णन करती हुई कहती हैं कि अरी सखी ! मै फूल बीनने कैसे जाऊँ कृष्ण के बिना मै फूल कैसे बीन सकती हूँ। सखी ! मै राम की शपथ खाके कहती हूँ कि मुझे फूल त्रिशूल की तरह दुःख दायी लगते है। वे जो सामने लाल-लाल फूल डालियो पर दिखाई पड़ते हैं वे हरि के वियोग मे मुझे अग्नि की ज्वालाओ से लगते हैं तथा गिरते हुए फूल अङ्गार से गिरते प्रतीत होते हैं। अरी सखी ! मैं उनके वियोग मे पनघट पर कैसे जाऊँ यदि मै नदी के किनारे घूमने जाती हू तो इन नेत्रो के आसुओ से यमुना में बाढ़ आ जाती है। और तो और सखी ! इन नेत्रो के अश्रु प्रवाह मे मेरी शय्या भी घड़नई (व्रज के ग्रामो में घन्नई) बन जाती हैं। उस समय मेरी इच्छा होती है कि मै इसी पर चढ़कर श्याम से मिलने जाऊँ। प्यारे हरि के वियोग में मेरे प्राण ओठो पर आगए हैं, परन्तु हे सखी ! इस मेरी असाध्य अवस्था को सूर के प्रभु हरि से कौन समझा के कहे।

इस पद में उपमा और अतिशयोक्ति अलकार हैं।

३६९ राधा व्यथित एव निराश होके बड़ी दीनता से उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती है कि उद्धव जी ! हम आपके पॉय छूती है। कोई उपाय करो कि प्रियतम व्रज मे एक चक्कर अवश्य लगा दे। हमें रात को नींद नहीं आती और दिन में भोजन नहीं भाता उनका मार्ग देखते २ हमारी दृष्टि धुधला गई। यद्यपि आज भी वृन्दावन वही काले घने बन से युक्त है तथा श्यामल कालिन्दी भी वही है। परन्तु एक श्याम के बिना कोई श्याम चीज अच्छी नहीं लगती। यो हीं उन्मत्त होके जहाँ तहाँ बकती फिरती हूँ। मै लज्जा को त्याग करके उधर ही चल देती पर क्या करूँ विरह के कारण चलने मे असमर्थ हूँ ! हे सूर के स्वामिन् ! आप शीघ्र ही दर्शन दो इससे हमारे प्राण बचाने की कीर्त्ति आपको ससार मे मिलेगी।

३७० राधा उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती है कि उद्धव ! जब तुम जाओ तो गोकुलमणि गोपाल से मेरा चरण स्पर्श कह देना। फिर कहना कि अब तुम्हारे दर्शन के बिना मेरे ऊपर बड़ा सकट पड़ा है। मेरा शरीर इस कठोर ताप को सहन करने में असमर्थ है। शरत्कालीन चन्द्रमा मेरा वैरी हो रहा है और (शीतल) वायु का स्पर्श भी सहन नहीं होता फिर बताओ कैसे

रहा जाय। सूर के श्याम के बिना घर वन सब सूना है मोहन के वियोग मे मै किसका मुँह देख कर जिऊँ।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

३७१ राधा सभोग के दिनो की याद कर-कर के आज वियोग के दिन पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि मेरे मनमे एक बात का दुःख बड़ा भारी है। जो नन्दलाल श्रीकृष्ण ने बाते कहीं थीं वे आज दिन तक मेरे हृदय पटल पर अङ्कित है। एक दिन की बात है कि वे मेरे घर आए और मै दही विलो रही थी। उन्हे देखके मै रूठ गई बस श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गए। आज वियोग के दिन उस बात को स्मरण करके राधा मूर्छित होके धरती पर गिर पड़ी। सूरदास के प्रभु श्याम के वियोग की व्यथा असह्य होती है इसलिए उससे सहन नहीं होती।

३७२ कृष्ण की बेरुखाई का उपालभ देती हुई गोपियाँ कहती है कि माधव की मित्रता तो देखो। वह स्नेह वास्तव में दिखावटी था उसकी सोने सी चमकदार कलई आज खुल गई! जब यहाँ थे तब स्नेह वास्तविक और उच्च प्रतीत होता था परन्तु यहाँ से प्रवासी होते ही सुधबुध भुला दी। हम तो हरि जू के उस प्रेम को देखके उन्हे अपना सच्चा प्रेमी समझती थी। परन्तु आज पता चला कि उनके चित्त मे कपट था। उन्होने हमसे अलग होके सब व्रजवासियों की सुध भुलादी। निठुर लोगो ने उन्हें विलमालिया। वास्तव मे बात यह है कि वे प्रेम निबाहना क्या जाने? वे तो यथार्थ मे अहीर के अहीर ही रहे। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार विरहिणी गोपियाँ हाथ मल मल के पछता रही हैं।

३७३ श्री राधा श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालम्भ देती हुई जीवन के प्रति निराशा प्रकट करती हुई कहती हैं कि मैंने समझा था कि श्रीकृष्ण ने मुझसे प्यार किया है। परन्तु उन्होने तो जैसे भ्रमर कमल का मधु पी के उसे छोड़ देता है उसी प्रकार मेरे मुख मकरन्द का पान करके छोड़ दिया। इस वियोग व्यथा से तो यही अच्छा था कि यह जीवन उसी आनन्द का अनुभव करते-करते समाप्त हो जाता। वह पूतना ही भली थी जिसके स्तन्य पान के साथ-साथ उन्होने प्राणो को भी पी लिया था। परन्तु उन्होने हमारे मन रूपी

मधु का पान करके यह शून्य शरीर छोड़ दिया यह और भी अधिक दुःखदायी हो गया। बिछुड़ते समय हमे अचेत देखके तुमने अपनी अमृतरूपी दृष्टि से जो हमारे हृदय को सिक्त किया था उसी आधार के कारण हे श्याम! यह जीवन अब भी चल रहा है।

इस पद मे उपमा रूपक तथा काव्यलिग अलंकार हैं।

विशेष—पूतना नामक राक्षसी को कस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था! उसने ब्रज में आके कृष्ण को अङ्क ले के स्तन्य पान कराया। श्रीकृष्ण ने स्तन्य पान के साथ उसके प्राण भी पी लिए थे। स्तन्य पान के कारण मरणोपरान्त उसे माता के नाते सद्गति दी।

३७४ श्रीकृष्ण के वियोग की असह्य व्यथा से तप्त हो के राधा मन ही मन सोचती हुई अपनी सखी से कहती हैं कि अब इस शरीर को रखके क्या किया जाय अरी सखी! सुनो श्रीकृष्ण के वियोग से सन्तप्त होके ऐसा जीमें आता है कि जहर बटकर पी जाऊँ। अथवा पहाड़ से गिरकर प्रणान्त कर डालूं। अथवा हे सखी! अपना सिर अपने हाथो काट के शिवजी पर चढ़ा दूँ। अथवा कठोर दावाग्नि मे जल के भस्म हो जाऊँ या जमुना के जल मे डूब मरूँ! माधव के दुस्सह वियोग मे दिन २ क्षीण होके मरण प्राप्त करना तो बड़ा दुखदायी है। सब दिन की व्यथा एक ही बार क्यो न सह ली जावे? सूरदास कहते हैं कि प्रियतम के वियोग में राधा अपने मन ही मन यही बाते सोच २ कर खीजती रहती हैं।

३७५ यशोदा देवकी के लिये सन्देश भेजती हुई उद्धव से कहती है कि उद्धव! तुम देवकी से मेरा यह सन्देश कह देना कि मैं तो तुम्हारे बेटे की धाय हूँ मुझ पर सदा कृपा दृष्टि रखना। उनकी (तुम्हारे बेटे की) आदत है कि वे उबटन और तेल और गरम पानी देखते ही नहाने के डरसे भाग जाते थे। फिर वे जो २ मागते वही देके उन्हे धीरे-धीरे नहलाने के लिए तयार करती थी तब कहीं वे नहाते थे। आप माँ होने के नाते उनकी आदतो से अवश्य ही परिचित होगी तो भी मेरा हृदय ये बाते कहने मैं सन्तुष्ट होता है। सबेरे उठते ही मेरे प्यारे पुत्र को मक्खन रोटी खाना अच्छा लगता है। सूर कहते हैं कि यशोदा उद्धव से कहती है कि मेरे मन मे अब रात दिन यही चिन्ता

रहती है कि अब मेरे दुलारेलाल को वहा ये चीजे मागनेमे सकोच होता होगा।
३७६ यशोदा उद्धव से कहती हैं कि यद्यपि सभी लोग मेरे मनको समझाते है परन्तु मै दही विलोकर जब मक्खन निकालती हूँ तो उसे मोहन के मुँह के लायक समझ के मेरे मन मे दुःख होता है। हाय! सवेरे ही उठके बिना मागे न जाने उन्हे कोई मक्खन और रोटी देता होगा कि नही। कौन अब मेरे बेटे कुंवर कहैन्या की क्षण २ में सेवा करता होगा। अरे पथिक! (उद्धव) तुम जाके कह देना कि बलराम और श्याम दोनो भाई घर चले आवे। सूरदास कहते हैं कि यशोदा उद्धव से कहती है कि जब मुझ जैसी माँ अभी जीवित है तो वे वहाँ दुखी क्यो हो रहे हैं।
३७७ यशोदा देवकी के लिए सन्देश देती हुई उद्धव से कहती है कि उनसे कह देना कि यदि वे मेरे और अपने परिचय को सुरक्षित रखना चाहती हैं। तो केवल एक बार मेरे मोहन को मुझे दिखा ले जाए। आप श्री वसुदेव जी की गृहलक्ष्मी हैं और हम लोग ब्रज के रहने वाले अहीर ठहरे! हम आप से विग्रह या आग्रह करने के योग्य नहीं है। परन्तु अब आप मेरे दुलारे कुँवर को भेज दो। हमारे प्राणो पर आ बनी है और तुन्हें मजाक सूझ रही है। चूल्हे मे जाय ऐसी हँसी। उन्होने (कृष्ण) कस को मारा बड़ा अच्छा कार्य किया। यह कार्य समयानुरूप होने से ठीक है। परन्तु अब वहाँ रहने का क्या काम? यहाँ इन गौओ को कौन चरायेगा? ये गाये भी तो उनके वियोग में हृदय भर लेती हैं। इसलिए दूसरो के हाथ की बात नहीं कि इन्हें चरा सके। सूर कहते है कि यशोदा कहती हैं कि यह ठीक है कि वहाँ किसी चीज की कमी नहीं है; सर्वसुख हैं। परन्तु उनकी तो आदत ही विचित्र है। चाहे जितना भी उन्हे खाने पीने तथा पहिरने को क्यो न दिया जाय और चाहे जितना राज वैभव के सुख मिले, लाड़ और प्यार मिले पर मेरा बेटा मक्खन से ही सन्तोष और चैन पाता है। सब उपकरणो के साथ सभवतः मक्खन उन्हे वहाँ न मिलता हो। क्योकि 'आढ्याना मास परम मध्याना गो रसोत्तरम्। तैलोत्तर दरिद्राणाम आदि के अनुसार दूध दही नवनीत आदि मध्यवर्ग का भोजन है।
३७८ उद्धव कुब्जा का सदेश देते हुए गोपियो से कहते हैं कि कुब्जा ने कहा है कि ब्रजबालाएँ मुझसे काहे को चिड़ती या जलती हैं। किसी का किसी

के भाग्य में बटवारा नही होता। जैसे फलो मे कडुई तूमड़ी घूरे पर पड़ी रहती है कोई उसे नहीं पूछता। परन्तु यदि किसी गुणी पुरुष के हाथ पड़ जाती है तो वही प्यारा मनोमोहक राग बजाने लगती है। उद्धव ने कहा कि कुब्जा ने यह सन्देश कहला भेजा है और बड़ा अनुनय विनय किया कि यह सभी जानते है कि मैं शरीर से टेढ़ी मेढी हूँ (थी) परन्तु श्रीकृष्ण के पावन स्पर्श से इस योग्य हुई हूँ। तुम स्वय सोचो कि मै तो राजा कस की दासी थी परन्तु सूर स्वामी दयालु श्रीकृष्ण ने स्वय मेरा सुधार करके उद्धार किया है। अतएव मैं आपके लिए कोपभाजन बनने योग्य नहीं हूँ।

३७६ उद्धव ब्रज मे आके गोपियो के सम्मुख ज्ञानोपदेश करते हुए कहते हैं कि हे गोपियो ! मुझे ब्रजनाथ श्रीकृष्ण ने तुम्हारे पास भेजा है मै तुम्हे आत्म-ज्ञान का उपदेश देने आया हूँ। सारे ससार मे ब्रह्म ही व्याप्त है। वही पुरुष और वही स्त्री है। वही वानप्रस्थ व्रत को धारण करने वाला है। वही ब्रह्म पिता है, वही माता है, वही बहिन है और वही भाई है। वही विद्वान् है और वही ज्ञानी है। ब्रह्म ही राजा है और वही रानी है। पृथ्वी और आकाश वही है। स्वामी और सेवक दोनो वही हैं। गाय भी वही है और ग्वाला भी वही है। इस प्रकार वही अपने को ही चराता है। वही भ्रमर है और वही पुष्प है। सारा ससार इस रहस्य को आत्म-ज्ञान के अभाव में भूला हुआ है। वास्तव मे निर्धन और धनी मे अन्तर नहीं है। वह कोई अन्य नहीं है, केवल निरजन (ब्रह्म) है। जो इस रहस्य को समझ लेता है, उसके हृदय से वृद्धावस्था और मृत्यु आदि का भ्रम दूर हो जाता है।

उद्धव की इन बातो को सुनकर गोपिया कहने लगीं कि हे उद्धव ! सुनो, यहाँ बुद्धिमती एव चतुर कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है और तुम महान ज्ञानी पुरुष हो। योग को तो वही जान सकता है जो योगी होता है। हमारा मन तो नवधा भक्ति को ही सदा स्वीकार करता है। भगवान का भक्त तो भक्ति की भावना को अपने हृदय में धारण कर लेता है और शिवजी तथा सनक सनदन आदि को ज्योतिः स्वरूप समझता है। आप अत्यन्त कुशलता के साथ बना बनाकर ज्ञान की बाते करते हो, लेकिन हम अबलाएँ तो भगवान कृष्ण के सुन्दर रूप पर आसक्त होकर पगली बनी हुई हैं। जो वन्ध्या होती है, वह

प्रसव की पीड़ा को नहीं जान सकती । इसी प्रकार जो ब्रह्म दिखाई ही नहीं देता उससे प्रेम कैसे किया जा सकता है ? बार-बार तुम ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देते हो तो हमे उन्हीं का स्मरण हो आता है और बिना कृष्ण के रूप के हमें कोई अच्छा नहीं लगता । तुम कहते हो कि जो योग-समाधि लगाकर ब्रह्म की ज्योति से ध्यान लगाता है, वह परम आनन्द प्रदान करने वाले परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है । लेकिन जब हम नवीन किशोरावस्था वाले कृष्ण को देखती हैं, तो ब्रह्म की करोड़ो ज्योतियो को उनके सौदर्य पर न्यौछावर कर देती है। उनका शरीर जल से पूर्ण बादलो के समान श्याम है । बलराम के भाई श्री कृष्ण के उस सौन्दर्य को देखकर ठगी सी रह जाती है । उनके मस्तक पर चन्दन है, कानो मे कुण्डल हैं और गले मैं बनमाला है तथा उनके नेत्र अत्यन्त विशाल हैं, उनको कैसे भुलाया जा सकता है ? वे कस्तूरी का तिलक लगाते हैं और उनके बाल घुंघराले हैं । उन्होने हमारे मनों को हरण कर लिया है । उनकी भौहे बकिम हैं, नासिका सुन्दर है, उनके अधर लाल है जिन पर सुन्दर मुरली बजती है । उनके अनार के दानो के समान चमकते हुए दॉत शोभित होते हैं और उनकी मन्द एव कोमल मुस्कराहट कामदेव के मन को भी मोहित करती है । उनकी ठोड़ी सुन्दर है और हृदय पर गजमुक्ताओ की माला धारण करते हैं जो नक्षत्रो की काति को भी पराजित कर देती है । उनके हाथो मे ककण और कटि मे मेखला तथा पैरो मे नूपुर शोभित हैं । जिस समय चलते हैं तो नूपुर अत्यन्त सुन्दर शब्द करते हैं। वे अपने शरीर को गेरू से चित्रित किए रहते हैं । उनका वह सौन्दर्य हमारे हृदय मे चुभा हुआ है । वे पीला वस्त्र पहिनते हैं, जिसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जासकता । इस प्रकार कृष्ण नख से शिख तक अत्यन्त सुन्दर है । वह सौन्दर्य की राशि कृष्ण ग्वालों का सखा है, उसके त्रिभगी रूप के हमें दर्शन होगे ? यदि तुम हमारे हित की बात कर रहे हो तो मदन गोपाल कृष्ण से हमे क्यो नहीं मिल देते हो ?

गोपियो की इन बातो को सुनकर उद्धव पुनः कहने लगे कि हे चतुर गोपियो ! तुम उसका स्मरण क्यों नहीं करती हो, जिसको महान् ज्ञानी मुनीश्वर खोजते हैं । उस ब्रह्म की कोई रूप रेखा नही है। उसे नेत्र बन्द करके

अपने हृदय मे ही देखो। उस ब्रह्म की ज्योति हृदय कमल में विराजमान रहती है और निरतर अनहद नाद होता रहता है। इड़ा, पिगला और सुषुम्ना नाड़ियो की साधना करके शून्य स्थान मे बसे हुये मुरारी अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करो। उस ब्रह्म की न तो कोई माता है और न पिता। उसके कोई स्त्री भी नहीं है। वह तो जल और थल प्रत्येक स्थान पर हर प्राणी में व्याप्त है। तुम क्रम क्रम से योग मार्ग का अनुसरण करो इस प्रकार अत्यन्त जटिल संसार सागर से पार हो जाओगी।

उद्धव के उपदेशो का उत्तर देते हुये गोपियाँ कहने लगीं कि हे उद्धव! आप अब मुँह बन्द रखिये। हमारे हृदय में तो यदुराज कृष्ण ही सबसे बड़े धन हैं। हम ब्रजवासिनी तो गोपाल कृष्ण की ही उपासिका हैं और ब्रह्म ज्ञानकी बाते सुनकर हमें हँसी आती है। अब तक तो कभी योग नहीं आया अब ऐसा लगता है मानो कुब्जा से उन्हें योग प्राप्त होगया है और हमें सुन्दर ग्राहक समझ कर उसे खोलकर दिखलाया है और उसे (योग सन्देश को) कृष्ण ने मधुकर (उद्धव) के द्वारा भेजा है। आश्चर्य तो यह है कि जिस ठग ने केवल कटाक्ष मात्र से सम्पूर्ण ब्रज की अबलाओ को ठग लिया था, उसको कस की दासी ने ठग लिया। यदुराज कृष्ण ने रामाबतार मे तपस्वी का रूप धारण किया था। अतः उसी के फल स्वरूप उन्होने कुबड़ी बधू को प्राप्त किया है। उस समय उन्होंने सीता के विरह मे महान् कष्ट उठाया था किन्तु अब कृष्ण से मिलकर उनका हृदय शीतल हो गया है। हम निराशा से पूर्ण ज्ञान लेकर क्या करेंगी? इस योग के भार को तो आप दासी कुब्जा के सिर पर पटक दीजिए।

गोपियों के प्रेम बचनो को सुनकर उद्धव पुनः कहने लगे कि वह ब्रह्म अच्युत हैं, उसकी दशा जानी नहीं जा सकती, वह नाश रहित हैं। उसका शरीर सत रज तप तीनो गुणो से रहित है, उसे दासी ग्रहण नहीं कर सकती। वह शून्य रूप है। अतः हे गोपियो! हे ब्रज नारियो! हमारी बात सुनो। न तो कोई दासी है और न स्वामिनी। जहाँ देखो, वहाँ ब्रह्म ही ब्रह्म है। स्वयं ब्रह्म ही (जीव) ब्रह्म को और को जानता है। लेकिन ब्रह्म के बिना और दूसरा कोई नहीं है।

गोपिया कहने लगीं कि हे उद्धव ! बार बार जो ये बाते कह रहे हो। उनको बन्द करो क्योंकि तुम्हारा ज्ञान भक्ति का विरोधी है। तुम्हारे उपदेशों से क्या हो सकता है ? क्योकि हमारे नेत्र ही हमारे वश में नहीं हैं। वे कृष्ण के वियोग मे रात दिन जगे रहते हैं। हम तो नन्द के पुत्र कृष्ण को देखकर ही जीवित रह सकती हैं और उन्हीं के रूप से हमे प्रेम है। हम पवन का पान (प्राणायाम) नही कर सकती। जब कृष्ण आवेंगे, तभी हमें सुख प्राप्त हो सकता है और उनकी सुन्दर मूर्त्ति को देखकर ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। हे उद्धव ! आपके असत्य वचन हमें अच्छे नहीं लगते आपकी इस योग की कथा को हम ओढ़े या बिछाये, उसका क्या करे ? व्यर्थ है।

गोपियो के इस प्रेम को देखकर उद्धव कहने लगे कि हे ब्रजबालाओ तुम्हें धन्य है कि तुम्हारे मदनगोपाल कृष्ण ही सर्वस्व हैं। अब मेरी समझ मे भी यह बात आगई है कि उस मत को (ज्ञानमार्ग को) त्याग देना चाहिए। मैंने तुम्हारे दर्शनो से भक्ति प्राप्त की है। तुम मेरी गुरु हो और मै तुम्हारा सेवक हूँ। तुमने भक्ति का सन्देश सुनाकर मुझे भवसागर से बचा लिया। जो व्यक्ति इस भ्रमर गीत को सुनेगे तथा दूसरो को सुनावेगे वे प्रेमभक्ति प्राप्त करेंगे। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ अत्यन्त सौभाग्यशालिनी हैं जिनको भगवान कृष्ण के दर्शनो का जादू लगा हुआ है।

३८० गोपियो की प्रेम-भक्ति से प्रभावित होकर उद्धव मथुरा आकर कृष्ण से कहते हैं कि हे कृष्ण ! गोकुल जाकर मुझे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। आपने मुझे अपना समझकर सन्देश देने के बहाने ब्रजवासियो से मिलने भेजा था। यदि आप क्षमा करे तो मैने जो वहाँ देखा है उसे निवेदन करूँ। आपने अपने श्रीमुख से जिस ज्ञानमार्ग का उपदेश किया था उसका उन पर किंचिन्-मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। सम्पूर्ण जीवनभर परिश्रम करने के बाद वेद का जो सिद्धान्त समझा जा सकता है उसको (भक्ति) राधा ने सहज ही सुना दिया तथा जिस आनन्द को वेद वर्णन नहीं कर सकते, शेषनाग, शिव तथा ब्रह्मा प्राप्त नहीं कर पाते, गोपियाँ उसका गान कर रही हैं। मै उस आनन्द-सागर में डूब गया और उसके समक्ष मुझे अपनी कथा (ज्ञानोपदेश) कटु प्रतीत हुआ। मैने वहाँ जाकर आपका अन्य स्वरूप ही देखा और मेरी सारी

ज्ञान-पिपासा शान्त हो गई। हे भगवान्! आपकी कथा अकथनीय है। उसे आप ही जान सकते हैं। हम जैसे व्यक्ति नहीं जान सकते। सूरदासजी कहते हैं कि यह कहते कहते भगवान के सुन्दर चरणो को देखते ही उद्धव के नेत्रो से जल बरसने लगा।

३८१ उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि हे गोपाल! दस दिन के लिए घोष (ग्वालो के गाव) चलिए। वहाँ चलकर गायो के कष्ट को दूर कीजिए और ग्वालो से भुजा फैलाकर मिलिए। जिस दिन से आप आये हो, उस दिन से वर्षा आने पर भी मयूर नृत्य नहीं करते और आपके दर्श दर्शनो के बिना मृग भी दुर्बल हो गए हैं तथा वे वशी की मधुर ध्वनि भी नहीं सुनते। हे तमाल के समान श्याम अङ्ग वाले कृष्ण! आप अपने प्रिय वृन्दावन को चलके देखिए। सूरदास जी कहते हैं कि हे यशोदा नन्दन! आप पुनः ब्रज को लौट चलिए।

३८२ गोपियो के प्रेम से प्रभावित उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि हे भगवान! मेरा मन अब पगु हो गया है। अर्थात् वह अब कही इधर उधर नही भटकता; वह शान्त एवं निश्चल हो गया है। मैं वहाँ निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए गया था, लेकिन सगुण भगवान का सेवक बन गया। अपनी मूर्खता के कारण कहने को तो उन गोपियो से ज्ञान गाथा कह आया, क्योकि मै उसी ज्ञान सन्देश का तो सन्देश हर था। भावार्थ यह है कि गोपियो की प्रेम दशा इतनी प्रभावशालिनी थी कि उसे देख कर किसी भी बुद्धिमान् को चुप ही रहना चाहिए था। पर हम (उद्धव) इतने बुद्धिमान कहाँ थे! किंतु कुछ भी हो मैने उन्हे अपना ही समझकर यत्न पूर्वक उनसे अपार स्नेह किया। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार सोचते हुए ज्ञान का बेड़ा गर्ग करके उद्धव मथुरा पुरी की ओर चल दिए।

अस्तु मैंने जो कुछ ज्ञान चर्चा की भी उसे उन्होने पास नही फटकने दिया। वे उससे सर्वथा अछूती रहीं।

३८३ मथुरा लौटने पर उद्धव ने कृष्ण को गोपियो का सम्वाद सुनाया। कृष्ण को सम्बोधित करके वे कह रहे है कि हे कृष्ण! सुनो, मैंने ब्रज के नियम को देखा है और पूँछ-ताछ करके छः महीने गोपियो के प्रेम को समझने का प्रयत्न किया है। ब्रज गोपिकाओ के हृदय से बलराम और कृष्ण

की याद नहीं मिटती। इस याद को हरा रखने के लिए वे अपने हृदय पर आँसुओ का जल प्रवाहित करती रहती है उस पर उनके सजल नेत्र अर्घ्य चढ़ाया करते है। विरह वेदना में हाथों से दिल को मसोसने के कारण यह कल्पना की है। अचल के चीर, कुचो के कलश और हाथो के कमल उस हृदय में स्थित स्मृति की मङ्गल कामनाये करती रहती है। व्यथा मे विभोर वे कृष्ण की लीलाओं को प्रगट रूप मे भी देखती है और तब कृष्ण के कार्यों का ध्यान कर-करके वे उनका कीर्त्ति-गान कर उठती हैं। अपने कमलरूपी नेत्रो में कृष्ण ! तुम्हारा ध्यान करके वे अपना शरीर और घरबार सभी कुछ निछावर कर देती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे है कि हे कृष्ण उन गोपिकाओ के कृष्ण भजन के सम्मुख हमें ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा फीकी और तुच्छ जान पडती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा एव वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है।

३८४ उद्धव जी ब्रज से लौटने के बाद कृष्ण को ब्रज और गोपिकाओं की दशा का वर्णन करते है। वे कहते हैं कि हे कृष्ण ! मैं तुमसे ब्रज का कहाँ तक वर्णन करूँ। हे श्याम ! सुनो, तुम्हारे बिना उनके दिन बड़ी कठिनता से कटते है। ब्रज मे गोपियाँ, ग्वाले, गाये और बछड़े सभी तुम्हारे बिना मलिन मुख और क्षीण शरीर हो गए हैं। उनकी इस परम दीनता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलो के सुन्दर समूह पर शिशिर ऋतु में पाला पड़गया है और वे अब बिना पत्तो के रह गए है। जो कोई ब्रज की ओर आता जाता है वे गोपियाँ उसकी ओर बड़ी उत्सुकता से देखती हैं और सभी मिलकर उससे हे कृष्ण ! तुम्हारी कुशल-मगल पूछती है। गोपिकाएँ हृदय मे प्रेम के वशीभूत होकर उस आने जाने वाले राहगीर को रास्ता नहीं चलने देती वे उसके पैरों को अपने हाथो में जकड़ लेती है। कोयल और चातक अब ब्रज में भली प्रकार से नही रहते हैं और कौआ बलि को नही खाता है। सूरदासजी पद वर्णन करते हुए कहते है कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण। गोपियो के इस प्रकार प्रेमातुर होकर बारबार तुम्हारे सँदेशो को पूछने के भय से अब राहगीर ब्रज के रास्ते पर नही जाते।

अलंकार—इस पद में उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति अलकार है।

३८५ उद्धव जी कृष्ण से गोपिकाओ का सदेश सुनाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! यदि ब्रज की गोपिकाओ के साथ पॉच दिन भी रह लिया जावे तो हे नाथ ! तुम्हारी सौधग खाकर कहता हूँ कि हृदय आनद मे विभोर हो जाता है और उनके बीच मे अपनापन (भिन्नता) नष्ट हो जाता है। गोपिकाओ की नाना प्रकार की लीलायें तथा मनोविनोद देखते ही बनते हैं। उनका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। मुझे दुबारा ऐसा सुख अब नहीं मिल सकता क्योकि वह तो उनको ही मिल सकता है जो बड़े भाग्यशाली होते हैं। मन वचन, और कर्म से अब मै सत्य ही कहूँगा और कुछ छिपा कर नहीं रखूंगा। सूरदास कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! वास्तविकता तो यह है कि ब्रजवासियो ने मुझे ब्रज से इस प्रकार निकाल दिया जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी निकाल कर फेंक दी जाती है। मिलाइये 'भामिनि ! भयउ दूध की माखी' तुलसी।

इस पद मे उपमा अलकार है

३८६ श्री उद्धवजी कृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे चतुर कृष्ण ! अब तुम अपने विरह से व्यथित राधा की क्षीण दशा सुनो। जब सुन्दरी राधा तुम्हारे लिए मेरे पास अपना सन्देश लेकर आई तो उनकी करधनी छूट गई और हड़बड़ी मे पैर उलझ गये तथा वह शक्तिहीन होकर गिर पड़ी। उन्होंने अपनी इस अस्तव्यस्त दशा को ठीक उसी तरह संभालने का प्रयत्न किया जिस प्रकार कि कोई योद्धा रण में थक कर फिर लड़ने का साहस एकत्रित करता है। सूर कह रहे हैं कि उद्धव कहते हैं कि हे कृष्ण ! तुमने उन्हें अपने सुन्दर मुख के दर्शन नहीं दिए बाकी अन्य सभी सुख उन्हें दिए हैं इसीलिए वे केवल हरि के चरण रूपी कमलो के दर्शन पाने की आशा में तल्लीन हैं।

इस पद मे रूपक, उपमा एव अतिशयोक्ति अलकार है।

३८७ उद्धव जी कृष्ण से ब्रजवासियो की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे कृष्ण ! ब्रज में मेरे साथ बड़ा ही, विचित्र व्यवहार हुआ। जो कुछ उपदेश आदि मैने उनसे कहे वे पवन मे उड़ते हुए भूसे के समान अर्थात् बिल्कुल व्यर्थ हो गए और सभी गोपिकाये नन्दकुमार की गाथा गाती

रहीं। एक ग्वालिनी को मैंने दही हाथ मे लेकर रैगते हुए (धीरे २ चलते हुए) देखा और एक को हाथ मे लाठी लेते हुए। किसी ग्वालिनी को अन्य सभी को एक घेरे मे बैठा कर छाक की रोटी बाट-बॉट कर देते हुए देखा। किसी किसी ग्वालिनीं को मैंने हे कृष्ण! तुम्हारी नाना प्रकार की लीलाओ को करते हुए देखा और किसी को तुम्हारे गुण कर्मों को गाते हुए सुना। उन्हें भाति २ से समझाकर मै हार गया परन्तु उनके हृदय में तनिक भी बात समझ में न आई। ब्रजबालाओ का हे कृष्ण! रात दिन यही ब्रत है कि उन्हे तुम से रोज नई-नई प्रीत हो। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे है कि हे कृष्ण! उन गोपिकाओं की प्रेम भरी लीलाओं तथा रस सिक्त व्यवहारो को देखकर ससार में अन्य सभी कुछ फीका-फीका लगता है।

इस पद में लोकोक्ति अलकार है।

३८८ उद्धव कृष्ण से कहते है कि हे कृष्ण! मैने गपिकाओ से अपनी सी कहने में कुछ कमी नही रखी। उनसे मैंने अपनी बुद्धि ज्ञान तथा अनुमान के अनुसार जैसी मुँह मे आई वैसी खूब कही। मैं उनसे थक-थक कर एक प्रहर मे कुछ कह पाता था तो वे एक क्षण मे कितनी ही बाते कह जाती थी। अन्त में उनके इस व्यग्यात्मक व्यवहार से परेशान और दीन हो तथा अपने हठ को त्याग, हार मानकर उनके बीच से उठकर मै चला आया। तब मेरे गले से कोई बात नहीं निकली और मेरा हृदय उनके वश में होगया। जब वे मेरे सम्मुख अपनी ऑखों मे ऑसू भर भर कर इस प्रकार रोने लगीं जैसे बड़ी भारी आपत्ति मे फसकर कोई दीन रोता है। हे कृष्ण! तुम्हारे द्वारा सिखाई हुई सपूर्ण शिक्षा तथा ग्रन्थो के कथन उनके सम्मुख एक कहानी हो गये। सूरदास कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से इस प्रकार कह रहे है कि हे कृष्ण! वहा पर कोई एक हो तो उसे उत्तर दिया जाता वहा तो तमाम थीं जो कि एक साथ बोल पड़ती थी और मुझे ऐसा लगता था मानो प्रेत चढ गया हो।

३८९ उद्धव जी श्रीकृष्ण से व्यग्य रूप में अपनी बीती सुनाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण! अगर आप कहें तो मैं अपने सुख का वर्णन करूँ? सच पूछा जाय तो ब्रज की नारियों के सम्मुख मैंने जो योग की चर्चा करने का साहस किया उसकी इतनी सजा-इतना दुःख तो मुझे मिलनी ही चाहिए था। कहने

का तात्पर्य यह है कि उद्धव यह व्यंग्य से कह रहे हैं कि उन्हे गोपियो से ज्ञान चर्चा करने के उपलक्ष में सुख मिला। यदि वास्तव मे देखा जाय तो उन्हें इस ज्ञान चर्चा से कष्ट ही मिला। उद्धव कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए जब मैं एक बात बतलाने ही में अटका रह जाता था तो वे समुद्र की लहरों जैसी उमड़कर मेरे पास आती थी जिससे कि मैं उनके हृदय की थाह नही पा सकता था। ऐसी दशा मे मै किस २ की बात का उत्तर देता ? इसलिए मै आगे ही भाग खड़ा हुआ। वे तो मेरे सिर मे बेणी बाँधने लगती थीं। फिर भला मै गुदड़ी किसे उढाता। अर्थात् वैराग्य किसे सिखाता ? जब चेले ही उलटा पढ़ाने लगे तो बेचारे गुरु को चुप्पी ही साधनी चाहिए। हे कृष्ण ! मै अपनी बीती क्या कहूँ ? मूर्खता की हद थी। भला आँख की अंधी कोई मूर्खा खड़ाऊँ पहन के दौड़ने का उपक्रम करे तो उसकी मूर्खता का भी कोई ठिकाना है। यही दशा मेरी थी जो उन्हे ज्ञान सिखाने गया। अर्थात् सत्य बात तो यह है कि मै उनके सम्मुख वज्र मूर्ख था। सूर कहते है कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे है कि तुम्ही कहो कि मुझसे अधिक कौन मूर्ख हो सकता है जो उन्हे छहों दर्शनो का ज्ञान होते हुए भी बारह खड़ी अर्थात् मात्रा ज्ञान सिखलाने गया था।

इस पद मे उपमा अलकार है।

३६० उद्धव जी कृष्ण से विरह पीड़ित ब्रज का वर्णन करके व्यथित राधा का सन्देश कह रहे हैं। कि हे कृष्ण ! राधा को तुम्हारा सन्देश मिला तब से सुनके जूड़ी सी चढ़ गई। उनके इस प्रकार से मलीन होने से उनके पराजित उपमानों का बड़ा सन्तोष हुआ है। सर्प जो राधा की वेणी को देखकर लज्जा से छिप गए थे वे अब अपने छिपे हुए स्थानो से निकल आये और खूब प्रसन्न हुए उन्होने खूब पेट भर-भर कर हवा का भोजन किया है। वे हिरन जो कि राधा के नेत्रो को देखकर लज्जा से अपने आपको भूल गये थे और अपने नेत्रो को उनसे हेय समझने लगे थे आज फिर अपने हृदय की सभी बातो को भुलाकर पैरो के पास आकर बैठने लगे है। राधा की मीठी वाणी को सुनकर किसी समय जो कोयल छिप गई थी अब वह पक्षियों की सभा मे ऊँचे स्थान पर बैठकर अपने सुन्दर कठ से फिर मगल-गान करने लगी है। इतना ही

नही शेर भी जो कि राधा की कमर की सुन्दरता देखकर लजा कर छिप जाता था आज शान से फिर अपनी गुफा से बाहर निकल अपनी पूँछ सतर करने लगा है। अपने घर जगल से आज वह हाथी भी निकल पड़ा है जो कि राधा की मस्तानी चाल को देखकर अपनी चाल को भूल गया था। वह आज फिर अपने अङ्ग-अङ्ग पर घमड प्रकट करने लगा है। सूरदासजो कह रहे हैं कि उद्धव कृष्ण से राधा का सॅदेशा देते हुए कहते है कि राधा ने पूॅछा है कि हे श्याम तुम अब फिर कब यहाॅ आओगे या तुम्हे मेरे इन बैरियो (दुश्मनों) की मनचीती करनी ही अच्छी लगेगी अर्थात् मेरे इन बैरियो की तुम कब तक ओर लेते रहोगे?

इस पद मे हेतूत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति अलकार है।

३६१ उद्धव जी ब्रज से लौट आने पर कृष्ण से ब्रज की गोपिकायो की उन्माद दशा का वर्णन करते हुए कहते है कि हे कृष्ण सुनो! वही तुम्हारी ब्रज की स्त्रियाॅ आज तुम्हारे वियोग दुःख मे पागल सी हो गई है। हे नाथ जहाॅ तक तुम्हारी कथाओ का वर्णन है उन्हें उसको कहने के अतिरिक्त और कुछ कहना ही नहीं आ.म अर्थात् वे सदा तुम्हारी ही बाते किया करती है और अन्य सभी बातो को भूल गई हैं। तुम्हारी लीलाओ को याद करके वे इस प्रकार (निम्नलिखित प्रकार) से व्यवहार करती हैं। कभी कहती है कि अरे कृष्ण ने हमारा सारा माखन खा लिया है तो ऐसे कठिन गाॅव में कौन बसेगा। कभी कोई गोपी दूसरी से कहती है कि चलो सखियो अपने घर से रस्सियाॅ ले चलो हरि को ऊखली से बाॅध देगे। कभी कोई गोपी कहती है कि कृष्ण को बन मे गये हुए बहुत देर हो गई है और उनका रास्ता देखते २ मेरी दृष्टि धुंधली हो चली है। और कोई २ यू कहती है कि कृष्ण उस मुरली में हमारा नाम ले लेकर हमे पुकार रहे है। ब्रज बनितायें कभी २ यह भी कहती है कि कृष्ण साथ हमने इस स्थान पर चाॅद को निकलते हुए देखा था अर्थात् कृष्ण और राधा को साथ-साथ देखा था। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से गोपियो का वर्णन करते हुए कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि हे प्रभु कृष्ण अब तुम्हारे दर्शनो के बिना वही चन्द्र रूपी राधा की मूर्ति साॅवली अर्थात् मलीन हो गई है।

३९२ उद्धव जी कृष्ण से राधा की विरहोन्माद दशा का वर्णन करते हुए कह रहे है कि हे कृष्ण ! राधा ने मेरे आगमन को आपका आगमन समझकर कहा कि कृष्ण जी अब यहा आये यह उन्होने अच्छा ही किया। मुझे देखकर राधा ने इतना कहा और विरह मे उन्मादिनी होने के कारण उन्होने कृष्ण के स्थान पर अलकार का आलिगन किया। विरह के कारण अत्यन्त व्याकुल राधा का शरीर काप रहा था और हृदय दुःख से परिपूर्ण धड़कनों से भरा हुआ था। मेरे चलते ही वह मेरे पैरो को पकड़ कर बैठ गई और अन्त मे वह गिर पड़ी तथा पसीने के जल से भीग गई। उसके बालो की लटे छूट गई और भुजाओ में पहिनी हुई चूड़ियाँ टूट गई तथा उसकी जीर्ण चोली फट गई और लट छूट गई। उसकी इस प्रकार की उन्माद दशा को देखकर मैंने अनुमान लगा लिया तथा अच्छी तरह से पढ लिया कि यह एक प्रेम के प्रण में फँसी हुई कपोती के समान विह्वल हो रही है। उसकी इस प्रकार की विह्वल दशा देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी सर्पिणी की पाई हुई मणि को फिर किसी ने छीन लिया हो। सूरदास जी कहते है कि उद्धव कृष्ण से राधिका की बाते कहते हुये कह रहे है कि हे कृष्ण ! मै कहा तक राधिका की बातो को कहूं, वह तो बहुत ही अज्ञान और बुद्धि हीन हो चुकी है।

इस पद मे उत्प्रेक्षा अलकार है।

३९३ उद्धव जी कृष्ण से राधिका के विरहोन्माद का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! इस बात को अन्य कोई किस प्रकार से समझाकर बतला सकता है कि प्रेम की विरह वेदना की दो भिन्न-भिन्न दशाओ को विरहणी राधा किस प्रकार सहती है। जब विरह की एक दशा में वह इतने होश में है कि उसे इस बात का ज्ञान है कि वह राधा है तो वह कृष्ण के विरह मे कृष्ण २ रटती रहती है और जब वह विरहोन्माद की दूसरी दशा मे पहुंच जाती है अर्थात् माधो रटते २ उसे इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि वह राधा है बल्कि वह कृष्णमय हो जाती हैं तो इस प्रकार कृष्ण होने पर उसका सारा शरीर फिर राधा के विरह मे जलने लगता है। उसकी दशा ठीक उस प्रकार से है जैसे किसी लकड़ी के दोनो छोरों में आग लग जाने पर उसके

अन्दर बैठा हुआ कोई काष्ठ-कीट शीतलता प्राप्त करने के लिए इधर उधर भड़-भड़ाता है। सूरदासजी कहते है कि उद्धव श्रीकृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! विरहणी राधिका को इस प्रकार से विरह की दोनो ही दशाओं मे किसी प्रकार भी सुख नही प्राप्त होता। मिलाइए—राधा सयँ जब पुनतहि माधव माधव सयँ जब राधा दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त विरहक बाधा दुहि दिस दारु-दहन जैसे दगधई आकुल कीट पराग। विद्यापति

इस पद में उपमा अलकार है।

३६४ उद्धव जी कृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हारे सदेश को सुनकर तथा तुम्हारे गुणो का स्मरण करके राधिका की दशा अत्यन्त ही अधीर हो गई और उनके दोनो विशाल नेत्रो से जल की धारा उमड़ चली जिस समय मैने उनसे तुम्हारा सदेशा कहा उसी समय तत्क्षण उनका मुख, शरीर और उरोज नेत्रो की जलधारा से भींग गये और वे ऐसी मालूम पड़ने लगे मानो दो कमल सुमेरु पर्वत की चोटीं के ऊपर खिले हुए है जो चन्द्रमा से उन कमलो के सुन्दर नाल द्वारा जुडे हुए है। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्वत रूपी कुचो पर दो कमल रूपी नेत्र है जिनमें से अश्रुधारा बह रही है और यही अश्रुधार सुन्दर नाल है जो कि मुख रूपी चन्द्रमा से कुच रूपी पर्वत के ऊपर दो कमल रूपी नेत्रो को मिला रही है। आँचल मे वे दोनों स्तन अश्रु-धारा से भीग गये जिन पर कि श्रेष्ठ मोतियो की माला सुशोभित हो रही थी इस प्रकार से आँसुओं से भींगा हुआ वक्षःस्थल इस प्रकार लग रहा है मानो चन्द्रमा (मुख) के उदित होने पर उसके द्वारा टपके अमृत (आँसू) से मु दें कमल (स्तन) ओसकणो को धारण किये शोभित होरहे हों। कहाँ तो राधा से वह प्रीति की रीति और कहाँ हे कृष्ण तुम्हारा यह निगु ण ब्रह्म का उपदेश देने का आदेश, वास्तव मे तुम्हारी बाते उलटी ही है। सूरदास जी कहते है कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे है कि हे कृष्ण ! तुम्हीं बताओ तुम्हारे इन कठिन सदेशों से विरह से व्याकुल गोपियाँ किस प्रकार जीवित रह सकती हैं।

इस पद में उत्पेक्षा अलकार है।

३६५ उद्धव जी श्रीकृष्ण से ब्रज से लौट कर पर राधिका की विरहोन्माद

दशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण। राधिका के घड़े के समान नेत्र जल से सदा भरे ही रहते है उनमें एक घड़ी भी पानी कम नही होता। इसका कारण यह है कि ब्रज में सदा ही वर्षाकाल बना रहता है और वहाँ हमेशा पानी बरसता रहता है। तात्पर्य यह है कि राधिका की आँखो मे सदा ही कृष्ण के वियोग के कारण आँसू भरे रहते हैं जिसे कवि ने पावस ऋतुकी झड़ी से उपमा दी है। विरह के कारण उनकी आँखो से आँसू जो सावन भादों के बादलो की भाँति है रात दिन बरसते ही रहते है। इस बरसने की इन्होने अधिकता कर दी है। राधिका की जो गहरी २ सासे है वह पवन का तीव्र वेग है और इस प्रकार की तीव्र वायु के साथ आसुओ का जल हृदय रूपी भूमि पर उमंग २ कर बह रहा है जिससे चारो ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है। आसुओ की इस जल वृष्टि से शाखा रूपी भुजाएँ, भीगे वृक्षो के समान रोये तथा उचे स्थान की तरह कुच आदि सभी डूब गये। इस प्रकार के आँसुओ की भीषण वर्षा के कारण शरीर के सभी अङ्ग रूपी पथिक थक गये और वे उस कीचड़ के कारण जो कि संयोग के समय लगाये हुये चन्दन के साथ आसुओ से मिलकर बन गई थी अब मार्ग पर नही चल पाते। ब्रह्मा के विधान को ब्रज ने उलटा कर दिया है कि ब्रज मे सभी ऋतुओ को छोड़ कर केवल एक पावस ऋतु ही रह गई है। सूरदास जी कहते है उद्धव जी कृष्ण से कह रहे है कि हे कृष्ण तुम्हारे ही वियोग के कारण ब्रह्मा की यह मर्यादा ब्रज में मिट गई कि वहाँ चार ऋतुओं के स्थान पर केवल एक ही ऋतु पावस ऋतु रहती है।

इस पद मे साँग रूपक अलङ्कार है।

३६६. उद्धवजी श्रीकृष्ण को समझाते हुए कह रहे है कि हे कृष्ण मैने राधा को भरसक अर्थात् जहाँ तक मै समझा सकता था समझा हारा फिर भी उन्हें विश्वास नही हुआ और वे सब इसे स्वप्न समझकर सुनती रही। हे कृष्ण! उनके समक्ष मैने सब कुछ तुम्हारी बातें कहीं और साथ ही मे खूब बढ़ा चढ़ा कर अपनी भी कहीं परन्तु जिस प्रकार कोई घड़े मे बोले तो घड़े से आवाज निकल कर बोलने वाले के ही कानो मे पड़ती है और घड़ा शून्य रह जाता है उसी प्रकार मेरी बाते राधा के कानो में पड़ी और व्यर्थ हो गई। कोई उन

गोपियो से चाहे हजारो बाते कहे और भाति २ से समझाये परन्तु धन्य है वे ब्रज की नारियाँ कि उनकी तो बस एक ही टेक है कि कृष्ण एक बार दर्शन दे दे उसके बाद हम सब बाते मान लेगी अन्यथा नही। हे कृष्ण उन गोपिकाओ की इसे प्रेम रीति को देखकर मेरे हृदय मे प्रेम उमड़ आया और मै मथुरा की राजनीति तथा अपने निर्गुणब्रह्म के उपदेश के लिये खूब पछताया। सूरदास जी कहते है कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे है कि हे कृष्ण ! मै तो अपनी ही इस चर्चा से ऐसा चकित होकर रह गया जैसे कोई धोखे मे पड़ा हुआ मृग अपने को धोखे मे पडा हुआ समझ कर चौक पड़ता है।

३६७ उद्धवजी ब्रज से अपने उद्देश्य मे असफल लौट आये हैं। वे अब दुबारा वहाँ जाने को तैय्यार नहीं हैं। वे कृष्ण को सबोधित करके कह रहे है कि हे कृष्ण ! अब तो उन्हीं का (गोपियो का) ही कहना मान लिया जाय तो अच्छा है और मै अपनी चाल को अब अपने मन मे ही समझ बूझ कर रख लू तथा उनसे इस प्रकार भी समझदारी से इन चालो को छोड़ कर अलग हो जाऊँ वही अधिक अच्छा है। जिस मनुष्य को अपनी बात अवला नारियों से खूब अच्छी तरह से एक-एक कडी मे तोड-तोड़ कर अर्थात् बात मे हर रहस्य को खोलकर समझाना आता हो अब उस मनुष्य को वहा भेजिए, क्योकि जहा मैने उन्हे अनेक प्रकार से समझाया वहा उन्होंने मुझे बिना किसी बात का उत्तर दिए ही बहुत दिनो के लिए मुझे चुप रहने के लिए वापिस भेज दिया। हे कृष्ण तुमने मुझ जैसे अज्ञानी, पागल एव दुष्ट मनुष्य को जानबूझ कर वहाँ क्यो भेजा, क्योकि वहाँ तो किसी बड़े भारी विद्वान की आवश्यकता है। और मै तो यह कहूँगा कि तुम मुझसे यहाँ बहुत सी बातें पूछ रहे हो, मेरी आलोचना कर रहे हो, तो अच्छा यही हो कि तुम स्वय वहाँ चले जाओ तो तुम्हे पता चलेगा कि यह कार्य कितना दुष्कर है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि मै किसी प्रकार भी आपकी आज्ञा भग नहीं कर सकता था इसीलिए आपके बहुत ठेलने पर ब्रजयुवतियों का ज्ञान का उपदेश देने गया था। सूरदास जी कहते है कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हें तो मुझे ब्रज भेजने की ही अड़ हो गई थी ठीक उसी तरह से जैसे किसी हाथी को अपने मुँह की चीज को अपने पेट में ठेलने ही की धुन होती है।

३९८ उद्धव जी कृष्ण को सबोधित करके कह रहे है कि हे कृष्ण ! यदि आप दया के घर है तो आप अपने मन मे ओपियो के प्रति इतने कठोर क्यो हो रहे है जोकि मेरे हृदय को भी दुःखित करता है। हे कृष्ण! अब तुम अपने बड़प्पन की लाज की (दीनानाथ कहलाने की) रक्षा करो और उनकी ओर दया की दृष्टि करो। अरे कृष्ण ! मेरी इन बातो को सुनकर अब तुम मेरी ओर मुँह क्यो नहीं करते सिर झुकाकर पृथ्वी की ओर क्यो ताक रहे हो। वेद यह कहते है कि हे प्रभु तुम भक्ति से भक्त के वश मे हो जाया करते हो वह भक्ति भी उन बेचारी गोपिकाओ ने की है। सूरदासजी कहते है कि उद्धव कृष्ण से इतना कहते २ लम्बी-लम्बी साँस छोड़ने लगे, आँखो मे जल भर लाए तथा हाहा ब्रज ! कह कर विलाप करने लगे।

३९९ उद्धव जी के ब्रज से इस प्रकार असफल लौटने पर कृष्ण ने उन्हें फिर वहाँ जाने के लिये कहा तो उद्धव कृष्ण से इस प्रकार कहने लगे कि हे कृष्ण ! अब मुझे ही ब्रज में बार बार भेजकर क्यो दुःखी होते हो (क्योकि मै वहाँ जाता हूँ और असफल लौटता हूँ तो तुम्हें दुःख होता है) ! मेरी समझ में तो यह अधिक उत्तम होगा कि अब की किसी चतुर पुरुष को वहाँ भेजा जाये। तब तुम्हे ज्ञात होगा कि उसे वहाँ से वापिस लौटने मे मुझ से भी अधिक कम समय लगता है कि नहीं। अर्थात् मै तो वहा काफी टिक सका अन्य कोई तो थोड़ी ही देर मे वहा से चल देगा। मैने गोपिकाओ को हर प्रकार के स्वार्थ और परमार्थ की बातें समझाई लेकिन उन्हे हर बार क्रोध ही आया। अब तो मेरी समझ मे अक्रूर को ही क्यो न आप दुबारा भेजे जिसमे कि प्रसन्न होकर गोपिया उनका कहना मानेगी तथा आरती भी उतारेगी (अक्रूर के प्रति व्यंग्य है)। उद्धव जी की इतनी बात सुनकर कमल पुष्प के समान सुन्दर नेत्र वाले कृष्ण ने उन्हें अपने बाहो मे समेट लिया। सूरदास जी कहते है कि इस प्रकार कृष्ण ने अपने सखा उद्धव के हृदय की बात को अपने मन में समझ कर तथा उनके कर्म को समझ कर मुस्करा दिया।

इस पद मे वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है।

४०० कृष्ण उद्धव से ब्रज की सुन्दर स्मृति का उल्लेख करते हुए कह रहे हैं कि हे उद्धव ! मुझे ब्रज भूलता नहीं तथा उसकी याद मेरे हृदय से हटती नहीं

ब्रज में सूर्य की कन्या यमुना की सुन्दर कछारे है और घने-घने कुंजो की छाया भी है। ब्रज की वे गाये, वे बछड़े और दुहनियाँ! जब कि हम गोशाला मे (गायो के बधने का स्थान खरिक कहलाता है) दूध दुहाने जाते थे तथा मेरे साथी वे सभी ग्वाले जो गाते हुल्लड़ मचाते हुए हाथ मे हाथ डाल कर नाचते गाते थे, मुझे भूलते नहीं। हे उद्धव! यह मथुरा सोने की नगरी है और यहाँ मोती और मणियो की खान अवश्य है, परन्तु जब मुझे ब्रज मे भोगे हुए सुख का स्मरण होता है तो मेरा हृदय वहाँ पहुँचने के लिये वेताब हो उठता है और शरीर नहीं रह जाता अर्थात् उसकी सुधबुध भूल जाती है। मैने वहाँ अनेको प्रकार की लीलाये कीं थीं जिन्हें यशोदा और नन्द ने हस २ कर निभाया था। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण उद्धव से इतना कहते-कहते चुप होगये और ब्रज की याद कर-कर के पश्चात्ताप करने लगे।
